JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

नगरीय समाज में वृद्धजनों की प्रस्थिति : एक अध्ययन

श्वेता सोनकर
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ.राहुल गुप्ता
सह– आचार्य,समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांशिका–

समय के साथ–साथ मनुष्य विकास के मार्ग पर अग्रसर होता जा रहा है। ऐसा माना जाता है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है भारतीय समाज का परंपरागत एवं सरल समाज से आधुनिक अथवा जटिल सम्मान में प्रवेश करना परिवर्तन का ही परिणाम है। वर्तमान समय में नगरों का उद्‌भव एवं नगरीय जीवन शैली आधुनिकता का ही परिचायक है। नगरीयता मनुष्य के हर उम्र को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित कर रहा है। मनुष्य के जीवन काल की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था नगरी जीवन शैली से प्रमुख रूप से प्रभावित हो रही है। परंपरागत भारतीय समाजों में वृद्धजनों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें समाज में अनुभवी एवं प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के रूप में समाजिक धरोहर माना जाता था परंतु वर्तमान जटिल नगरी समाज में वृद्धजनों को अनुभवहीन ,आश्रित तथा समाज में सबसे निम्न स्थान दिया जा रहा है। इन्हें अनेक सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक ,स्वास्थ्य आदि समस्याओं का सामना करना हो रहा है। जिससे इनकी अस्मिता खतरे में जाती हुई प्रतीत हो रही है अतः हमें इनके लिए उपयुक्त कदम उठाने एवं इन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है। क्योंकि एक स्वस्थ एवं विकाशील समाज के लिए आवश्यक है कि वहां के सभी वर्ग समूह में समानता एवं विकास के उचित अवसर प्राप्त हो। जिस प्रकार किसी इमारत की नींव उस इमारत के अस्तित्व को गति प्रदान करते है उसी प्रकार हमारे समाज में वरिष्ठजन भी हमारे राष्ट्ररूपी इमारत को और भी सशक्त एवं गौरवान्वित करते हैं।

बीज शब्दः नगरीय समाज ,वृद्धावस्था ,वृद्धजन, समस्या, वर्ष।

प्रस्तावना

भारतीय समाज मे नगरों का आविर्भाव प्राचीन समय से ही दिखाई पड़ता है। ऐसे बहुत से साहित्य उपलब्ध है जो नगरों के ऊपर प्रकाश डालते है। भारत में षोंडस महाजनपद एवं गणराज्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। सैंधव कालीन सभ्यता में भी नगरों की उपस्थिति का विवरण प्राप्त होता है उन विवरणो से नगरों की समृद्धि व्यवस्था एवं रहन–सहन के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। वर्तमान समय में अलग–अलग विद्वानो ने नगरों के विभिन्न प्रकारों पर अपने विचार प्रकट किए है। समकालीन समय में नगर का अभिप्राय ऐसे स्थानों से है जहां की 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी जीविकोपार्जन के लिए गैर कृषि कार्य से जुड़े होते है। यहां जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है इसमें आर्थिक,सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक असमानता होती है। शहर न केवल निवास स्थान है बल्कि एक विशिष्ट वातावरण का सूचक भी है। शहरी जीवन जीने का अपना एक खास तरीका होता है। यहां सामुदायिक भावना का अभाव होता है क्योंकि यहां व्यक्तियों के द्वितीयक संबंध बड़ी मात्रा में पाए जाते है।

लुइस वर्थ– "नगरीयता एक जीवन शैली है।"

वृद्धावस्था को नगरीय समाज के संदर्भ मे समझने के लिए वृद्धावस्था को समझना आवश्यक है। मानव जीवन के विकास की अवस्थाओं के क्रम मे वृद्धावस्था उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। यह मानव जीवन की सार्वभौमिक एवं प्राकृतिक घटना है। जो विविध अनुभवों से युक्त जीवन का अमूल्य काल होता है। वृद्धावस्था का शाब्दिक अर्थ परिपक्व होता है ,जो व्यक्ति के ज्ञान का भंडार एवं अनुभव को इंगित करता है। जिसे वृद्ध, बुजुर्ग, बूढ़ा ,वरिष्ठ नागरिक इत्यादि शब्दों से सुशोभित करते हैं। **भारत की जनगणना 2011 के जनगणनात्मक तथ्यों एवं राष्ट्रीय बुजुर्ग नीति के आधार पर '60'वर्ष अथवा उससे अधिक के लोगो को वृद्ध माना गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 60 से 70 वर्ष की आयु वालो को बुजुर्ग के रुप में परिभाषित किया है ।** विश्व स्तर पर वृद्धावस्था को परिभाषित करने के लिए भिन्न–भिन्न आयु वर्ग को बताया गया है –अमेरिका में 62–67 वर्ष, ऑस्ट्रेलिया में 67 वर्ष, बांग्लादेश में 59 वर्ष, ब्राजील में 65 वर्ष पुरुष 62 वर्ष महिला, कनाडा में 60–65 वर्ष ,चीन में 60 वर्ष पुरुष 50–55 वर्ष महिला ,जर्मनी में 60–67 वर्ष ,जापान में 64 वर्ष पुरुष 62 वर्ष महिला, साउथ कोरिया में 60वर्ष ,नेपाल में 65वर्ष, श्रीलंका में 55 वर्ष इत्यादि।1980 में संयुक्त राष्ट्र ने जनसंख्या के बुजुर्ग वर्ग के लिए संक्रमण की आयु के रूप में 60 वर्ष के आगे के उम्र को निम्नानुसार वर्गीकृत किया है– 60 से 75 वर्ष **युवा वृद्ध** ,70 से 85 वर्ष **वृद्ध वृद्ध** ,85 वर्ष और उसे अधिक को **वयोवृद्ध** के रूप में है।

चार्ल्स बेकर के अनुसार– "वृद्धावस्था व्यक्ति के उन परिवर्तनों का द्योतक है जो समय के परागमन का परिणाम होता है यह परिवर्तन दैहिक, मनोवैज्ञानिक ,सामाजिक एवं आर्थिक हो सकता है।"

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य नगरों में निवासित वृद्धजनों की प्रस्थिति के विषय में अध्ययन करना है। यह शोध प्रपत्र मुख्य रूप से द्वितीय स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन के लिए मूल अध्ययन स्रोत शोध पत्र, शोध प्रबंध, सरकारी दस्तावेज, आचार्यो द्वारा संपादित पुस्तक ,पत्र पत्रिकायें तथा ई– माध्यम आदि का उपयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा–

ईशा (2009) में अपने लेख **"वृद्धाश्रम में जीवन की गुणवत्ता "** जो पंजाब राज्य पर आधारित है, जिसमें यह पता लगाने की कोशिश किया कि वृद्ध लोग वृद्धा आश्रम में क्यों रहते हैं जिसमें पता चला कि बुजुर्गों के साथ उनके बहू और बेटों का बहुत ही बुरा बर्ताव था। जिससे वह अपने ही घरों में उदास और असहज महसूस करते थे। दूसरी ओर परिवार के सदस्यों के विदेश में बस जाने से भी वृद्धों को वृद्धाश्रम में रहने को मजबूर कर दिया था क्योंकि उनका घर पर देखभाल करने वाला कोई भी नहीं था।

चौधरी (1992) में अपने अध्ययन **"एजिंग एंड द एजेड"** में पाया कि बुजुर्गों का ठीक से ध्यान नहीं रखा जा रहा था और उनके बच्चों द्वारा उनको उचित सम्मान नहीं दिया जा रहा था जो कि पहले दिया जा रहा था। जिससे वृद्धजनों में उपेक्षा की भावना आती है और वह खुद को दूसरों के संपर्क से दूर कर अलगाव बना लेते हैं जिससे उनमें तनाव अवसाद एवं अकेलापन जन्म ले लेता है और अंततः वे बीमार पड़ जाते हैं।

अग्रवाल गिरिराज शरण (2004) में बताया है कि **"वृद्धावस्था की कहानियां"** वृद्धावस्था में शरीर अशक्त हो जाने के कारण बीमारियां जल्दी पकड़ लेता है परंतु कार्यमुक्त होने के कारण अधिकतर बुजुर्गों के पास धन का अभाव होता है और बीमारियां बुढ़ापे की मुश्किलों का पर्याप्त कारण बन जाती हैं।

वापुली (2011) में अपने लेख **''परिवार में वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार एक अंतर्निहित अपराध"** में बताया कि परिवार की आधारभूत व्यवस्था विशेषकर वृद्धों की भूमिका में निश्चित तौर पर परिवर्तन हो रहे है। वृद्ध व्यक्तियों को अब परिवार के मुखिया या उपयोगी व्यक्ति के रूप में नहीं देखा जाता जिसके कारण उनके साथ दुर्व्यवहार की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

सोनेजा और त्यागी (1999) ने अपने अध्ययन **''परिवार और बुढ़ापाः परिवारों में रहने वाले वृद्धों को आवश्यक समर्थन के प्रकार तक पहुंचने के लिए एक अध्ययन''** में पाया कि युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण में बदलाव देखा गया है। बुजुर्गों को लगा कि उनका सम्मान तभी हो रहा है जब वह युवा पीढ़ी के जीवन में कम हस्तक्षेप कर रहे हैं।

जोशी (2011) में वृद्धो से संबंधित लेख **"देखभाल की समस्या और सरकारी प्रयास "** में वृद्धों के कल्याणार्थ विविध सुझाव दिए हैं। जिसमें मुख्यतः स्कूली स्तर से ही बच्चों को सेंसटाइज करें। ,गैर सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता देकर प्रेरित व प्रोत्साहित करें।, वृद्धों के संदर्भ में डे केयर सेंटर, नर्सिंग होम ,वृद्धावस्था पेंशन बीमा संचलन, चिकित्सा वाहन वृद्धों के अनुरूप भवनों एवं वाहनों के निर्माण, सरकारी अस्पतालों में वृद्धों की सस्ते इलाज आदि महत्वपूर्ण सुविधाओं को प्रदान किया जाना आवश्यक हैं।

वैदिक संस्कृति में वृद्धजनों को समाज एवं परिवार में केंद्रीय स्थान प्राप्त था इस समय आश्रम व्यवस्था तथा पुरुषार्थ व्यक्ति के जीवन को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। आश्रम व्यवस्था में व्यक्ति जीवन को 100 वर्ष का मानकर प्रत्येक 25 वर्ष के अनुसार आश्रम के चारों भागों में विभाजित किया था जिसके अंतर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा सन्यास आश्रम होता था। वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते ही व्यक्ति वृद्धावस्था की तैयारी करने लगता था जिसमें आहार व्यवहार में कमी लाना एवं त्याग में जीवन व्यतीत करने के लिए स्वयं को तैयार करना प्रमुख रूप से शामिल था व्यक्ति जीवन मूल्यों को नए स्वरूप में स्वीकार करता जो उनकी शारीरिक व मानसिक, क्षमताओं के अनुरूप हो। 75 वर्ष की आयु के पश्चात पूर्णतयाः सांसारिक जीवन का त्याग करके समाज के कल्याणकारी कार्यों में शामिल होना महत्वपूर्ण व्यवहार था। इसके प्रतिरूप में समाज से इन्हें मान–सम्मान एवं सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती थी। परंतु बदलते मूल्य, प्रतिमान एवं परंपरा के कारण वृद्धजनों की स्थिति बहुत हद तक समस्या ग्रस्त हो चुकी है। आज औद्योगिकरण, नगरीकरण ,व्यवसायीकरण तथा आधुनिक शिक्षा द्वारा विकास की गति तीव्र तो है लेकिन लोगों में भारतीय संस्कृतिक मूल्य मानदंड एवं प्रतिमान के स्वरूपों में भी परिवर्तन हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति आधुनिक सुख सुविधाओं से युक्त जीवन जीना चाहता है और अधिक से अधिक सुविधाओं को जुटाने की होड़ में वह स्वकेंद्रित होता जा रहा है। विश्व स्तर पर स्वास्थ सेवाओं के विस्तार तथा सभी क्षेत्रों में शिक्षा और संचार माध्यमों की पहुंच एवं जनचेतना में जागरूकता के कारण मृत्यु दर में कमी आई है और जीवन प्रत्याशा में भी वृद्धि हुई है फलस्वरूप वृद्धजनों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। जिसे निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है–

तालिका संख्या .1 : कुल जनसंख्या में वृद्ध लोगों का प्रतिशत

लिंग	कुल जनसंख्या में वृद्ध लोगों का प्रतिशत (जनगणना वर्ष)					
	1961	1971	1981	1991	2001	2011
पुरुष	5.8	6.0	6.6	6.8	7.8	9.0
महिला	5.5	3.9	6.4	6.7	7.1	8.2
कुल	5.6	6.0	6.5	6.8	7.4	8.6

स्रोत : भारत में बुजुर्ग प्रोफाइल और कार्यक्रम 2016 एम.ओ.एस.पी.आई. ,सी.एस.ओ.। भारत सरकार के सामाजिक सांख्यिकीय विभाग।

जीवन प्रत्याशा बढ़ने से अब वृद्धावस्था और भी प्रभावित हो रही है मनुष्य विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से भी ग्रसित होता जा रहा है। पहले के समय में संयुक्त परिवार जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक ,देखभाल संबंधी, मनोरंजन संबंधी आदि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का एक औपचारिक केंद्रीय स्थल रहता था वही आज के बदलते सामाजिक परिवेश में परिवार का स्वरूप एकाकी हो गया है जिसमें माता पिता और बच्चे होते हैं।यह माता–पिता जब वृद्ध हो जाते है तो यह वंशगत संयुक्त परिवार का रूप ले सकता है बच्चों के विवाह पश्चात विवाहित पुत्र अथवा पुत्री में से किसी एक के साथ वृद्ध पति पत्नी या स्वयं एक साथ रह सकते है। नगरी संरचना के अंतर्गत महिलाओं के कार्य सीमा में भी वृद्धि हुई है जिसके अंतर्गत पति पत्नी दोनों के ही कामकाजी होने के कारण इनका अधिक समय घर से बाहर ही बीतता है जिससे वृद्धजन की उचित देखरेख का अभाव तथा उनके साथ कम समय बिताने का मौका मिलता है। एक अध्ययन 'Happiness in Old Age: The Daughter Connection' के अनुसार पाया गया कि वृद्ध माता–पिता अपने बेटों की अपेक्षा बेटियों के साथ ज्यादा खुश रहते है और उन्ही के साथ रहना पसंद करते है क्योंकि यहां उनको उचित देखभाल ,अपनापन व सम्मान मिलता है। यद्यपि परंपरागत समाज में वृद्धजन की स्थिति अच्छी एवं उच्च थी उनका परिवार में देखरेख तथा समायोजन स्तर अच्छा था, परिवार का स्वरूप संयुक्त होने से वृद्धों के देखभाल की जिम्मेदारी किसी एक की नहीं होती थी जिसके कारण वृद्धजनों के लिए परिवार के सभी सदस्य अपने अपने स्तर पर उनका ख्याल रखने में सहयोग करते थे।

वृद्धावस्था में पहुंचते –पहुंचते शारीरिक एवं मानसिक क्षमता कमजोर होने लगती है। जिसके अंतर्गत मुख्य रुप से वृद्धजन जीर्ण बीमारियों से ग्रसित होते हैं जैसे –जोड़ों का दर्द, खासी ,स्वास्थ समस्या ,रक्तचाप ,हृदय रोग ,मूत्र समस्या, बावासीर मधुमेह और कुपोषण आदि। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में स्वास समस्या और जोड़ो के दर्द की समस्या ज्यादा होती है। ऐसे में वृद्धजनों को खास देखभाल की जरूरत होती है परंतु नगरीय समाज में परिवार की संरचना एवं कार्य में परिवर्तन होने के कारण वृद्धजनों के देखरेख के लिए इसका स्थान केंद्रीय संस्था के रूप में वृद्धाश्रम ने लिया है।

आधुनिकता के युग में मनुष्य आज अधिक से अधिक भौतिक सुख प्राप्त करने की चाह में लगा है। वृद्धजनों की ओर कोई ध्यान ही नहीं दे रहा है ,जबकि वृद्धावस्था में व्यक्ति की शारीरिक क्षमता कम या यू कहें कि थम सी जाती है जिससे उन्हें आर्थिक रूप से दूसरों पर आश्रित होना पड़ता है। इस कारण वृद्धजनों को एक बोझ के समान समझा जाने लगा है। उभरती अर्थव्यवस्था में जीविकोपार्जन के लिए व्यक्ति अपने निवास स्थान से रोजगार के लिए बाहर जाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ऐसे मामले में न केवल परिवार के छोटे सदस्य बड़े सदस्यों के आर्थिक सत्ता से मुक्त होते है बल्कि यह लोग बाहर जाकर अपनी गृहस्थी भी बसा लेते है। ऐसी परिस्थिति में वृद्ध व्यक्तियों को अपने निजी संसाधनों पर रहना पड़ता है यदि किसी वृद्धजन की आय पर्याप्त नहीं होती है तो वह दूसरों पर आश्रित हो जाता है। वृद्धावस्था में निर्भरता स्तर को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है–

तालिका संख्या . 2 : वृद्धावस्था में निर्भरता अनुपात

लिंग	कुल जनसंख्या में वृद्ध लोगों का प्रतिशत जनगणना वर्ष					
	1961	1971	1981	1991	2001	2011
पुरुष	10.9	11.6	12.2	12.2	13.8	14.9
महिला	10.9	11.4	11.8	12.2	12.5	13.6
कुल	10.9	11.5	12.0	12.2	13.1	14.2

स्रोत : भारत में बुजुर्ग प्रोफाइल और कार्यक्रम 2016 एम.ओ.एस.पी.आई., सी.एस.ओ.,। भारत सरकार के सामाजिक सांख्यिकीय विभाग

भारतवर्ष में सामान्यतः 0 से लेकर 14 वर्ष तक की आयु वर्ग वाले तथा 60 वर्ष की आयु से ऊपर वालों की निर्भरता कार्यशील आयु वर्ग वाले लोगों (15–59) पर रहती है। वरिष्ठजन जनसंख्या के द्वारा पड़ने वाले भार को युवा निर्भरता अनुपात कहते है। वृद्धजनों की जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण युवायों के निर्भरता अनुपात में भी वृद्धि हो रही है। ऐसे वृद्ध जो सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके है उन्हें तो वृद्धावस्था में आर्थिक सुरक्षा के रूप में पेंशन प्राप्त होता रहता है जिससे वो खुद का खर्च स्वयं वहन कर पाते हैं। परंतु अधिकांशतः मध्यम वर्गीय वरिष्ठजनों के लिए यह स्थिति और भी विपरित हो जाती है क्योंकि जो वरिष्ठ सदस्य आमतौर पर अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक अथवा असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं उन्हें पेंशन जैसी आर्थिक सुरक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है जिससे उन्हें परिवार पर आश्रित होना पड़ता है। परिवार में कई तरह के खर्चों के बीच इनकी दवाओं,देखरेख जैसी जरुरी आवश्यकताओं को नजर अंदाज कर दिया जाता है। सबसे कष्टकारी वृद्धावस्था निर्धन वर्ग के वरिष्ठजनों का होता है जिनको रोज कमाना और रोज खाना है। उनके पास अपनी कोई बचत राशि भी नहीं होती है उन्हें परिवार के सभी सदस्यों के साथ जीविकोपार्जन के लिए कठिन व शारीरिक श्रम करना पड़ता है। जो कि वृद्धावस्था में नहीं किया जा सकता है। परंतु परिस्थिति से मजबूर निर्धन वरिष्ठजन को तब तक कार्य करते रहना पड़ता है जब तक वह शारीरिक रुप से टूट नहीं जाते या भूख से मर नहीं जाते है। आर्थिक स्थिति के अनुसार बुजुर्गों का निर्भरता स्तर को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है–

तालिका संख्या . 3 : आर्थिक स्थिति के अनुसार बुजुर्गों का प्रतिशत वितरण

लिंग	आर्थिक स्थिति वाले वृद्ध व्यक्तियों का प्रतिशत					
	ग्रामीण			शहरी		
	दूसरों पर निर्भर नहीं है	आंशिक रूप से दूसरों पर निर्भर	पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर	दूसरों पर निर्भर नहीं है	आंशिक रूप से दूसरों पर निर्भर	पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर
पुरुष	42.6	23.9	33.5	51.5	18.5	30.0
महिला	11.3	19.1	69.6	12.9	15.3	71.8
कुल	26.6	21.5	51.9	31.9	16.9	51.2

स्रोत : भारत में स्वास्थ्य एन.एस.एस.ओ. रिपोर्ट संख्या 574 ।

वर्तमान समय में नगरों का तेजी से विकास होने के साथ व्यक्ति के संबंधों एवं स्थितियों में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। परंपरागत समाज में वृद्धजनों का समाज एवं परिवार में प्रमुख स्थान होता था लेकिन समाज में अब ऐसी प्रथा लुप्त हो गयी है। इन्हें समाज में उपेक्षित एवं निम्न स्थान दिया जाने लगा है। वृद्धावस्था में आते–आते व्यक्ति की समाज से क्रियाशीलता कम होने लगती हैं और वह समाज से पहले की तरह जुड़ाव नहीं महसूस कर पाता धीरे–धीरे समाज से अलगाव करने लगता है। इस अवस्था में व्यक्ति की भूमिकाएं या तो समाप्त हो जाती है या तो उसके उत्तरदायित्व और शक्तियों में कमी हो जाती है। अतः व्यक्ति के वृद्ध होने पर जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी समाज से सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता कम हो जाती है। वृद्धावस्था की सबसे मुख्य समस्या अलगाव या अकेलेपन की होती है। जिसमें व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि उसका जीवन पहले की

तरह सामान्य नहीं रह गया है। वह अपने आप को समाज से अलग कर अकेला रहना चाहता है जिसका प्रमुख कारण अपने सगे संबंधियों या अन्य व्यक्ति से सकारात्मक व्यवहार नहीं मिलना है इस व्यवहार का कारण वृद्धों की आश्रितता, शारीरिक अक्षमता या असमर्थता है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह स्थिति वृद्धों को असहज एवं असहाय करती है तथा उन्हे नकारात्मक स्थिति में ले जाती है। जिसके अंतर्गत वृद्धजन वृद्धावस्था को एक विकार के रूप में देखने लगतें है। इस अवस्था में पीढ़ीगत अंतराल भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है जिसमें युवा पीढ़ी और वृद्धों के बीच वैचारिक मतभेद ज्यादा हो जाते है जहॉ इन्हें पहले नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से जोड़ने वाला पुल समझा जाता था वही आज इनमें सामंजस्य भी स्थापित नहीं हो रहा है। परंपरागत समाज में जहां समाज और परिवार में वृद्धजनों को मुखिया के रूप में मान्यता प्राप्त थी तथा वे प्रत्येक कार्य में सर्वोपरि होते थे,उनकी बातों ,निर्णयों का मान रखा जाता था वहीं अब नगरीयता के अंतर्गत हर चीजों को तार्किकता से सोचने पर ज्यादा बल दिया जाने लगा है। सभी के अपने–अपने तर्क प्रस्तुत करने के पश्चात ही किसी निर्णय पर पहुंचते है। अब इसमें कोई बड़े या छोटे जैसे मान सम्मान की बात ही नहीं रह गई है जिससे घर या समाज में मुखिया के रूप में वृद्धजनों की सत्ता में भी गिरावट आयी है।

वर्तमान समाज में वृद्ध विधवा महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा दुखद है। इनमें विधुर वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा वृद्ध विधवा महिलाओं की दूसरो पर निर्भरता स्तर ज्यादा होती है क्योंकि आर्थिक सहयोग के लिए इन्हें पुरुषों पर ही आश्रित होना पड़ता है। पति की मृत्यु के बाद वृद्ध विधवा महिलाओं को परिवार पर आश्रित होना होता है। परंपरागत संयुक्त परिवार में वृद्धजनों का उचित देख रेख एवं अच्छा समायोंजन होता था परंतु वर्तमान समय में ये हिंसा, दुर्व्यवहार ,अमानवीय परिस्थितियों का सामना करने को मजबूर है।

शिक्षा वृद्धावस्था में समायोजन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। बदलती सामाजिक परिवेश में वृद्धजनों को नवीन भूमिकाओं को ग्रहण करने की जरुरत होती है। ऐसे वृद्ध जिनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि उच्च होती है उनके साथ समायोजन का स्तर काफी उच्च होता है जबकि निम्न शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले वृद्धों के समायोजन में अत्यधिक समस्याएं दृष्टिगोचर होती है।

वृद्धावस्था में वृद्धों का गिरता स्वास्थ्य स्तर एवं अपने दिन प्रतिदिन की सामाजिक ,आर्थिक एवं शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें दूसरों पर निर्भर होना होता है इसी निर्भरता के कारण वृद्धों को विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहार एवं उपेक्षाओं का सामना करना होता है। **U.N.F.P.I 2017** के अनुसार दुनिया भर में नियमित रूप से वृद्धजनों के साथ दुर्व्यवहार,उपेक्षा और शोषण किया जाता है इससे भारत भी अछूता नहीं है । अपराधी आमतौर पर परिवार के सदस्य,रिश्तेदार,दोस्त या भरोसेमंद देखभालकर्ता ही होते है। **हेल्प ऐज इंडिया (2015)** द्वारा किये गए सर्वेक्षण के अनुसार देश में लगभग आधी बुजुर्ग आबादी किसी न किसी रूप में दुर्व्यवहार का सामना करती है ,पुरुषों की तुलना में महिलाओं में मामले में यह अधिक है।

निष्कर्ष –

वर्तमान समय में वृद्धजनों की स्थिति संतोषजनक नहीं है उन्हें विशेष देखभाल एवं स्नेह की जरूरत है। परंपरागत समाज में वृद्धजनों को जहां अपनी आयु के कारण समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था वही आज वे अपनी आयु के कारण ही विभिन्न समस्याओं से घिरते जा रहे हैं। वृद्धों के प्रति यह गैर जिम्मेदाराना व्यवहार, उपेक्षा ,शोषण जैसी सामाजिक व्याधि से वृद्धजन पीड़ित हो रहे है। वृद्धों का समाज एवं परिवार में समायोजन का स्तर भी गिरता जा रहा है जिससे वो खुद को बोझा महसूस करते हैं एवं समाज से अलगाव करने पर विवश हो गए है। **संयुक्त राष्ट्र संघ ने 14 दिसंबर 1990 को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 1 अक्टूबर को अंतर्राष्ट्रीय वृद्धजन दिवस के रूप में मनाने का निर्णय किया**। इसका उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों और बुजुर्गों का सम्मान तथा उनके हितों पर चिंतन करना था ।वृद्धजनों से संबंधित समस्याओं के निवारण हेतु सरकार द्वारा प्रयास भी किए गए है जिसमें राष्ट्रीय वयोश्री योजना ,इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना ,प्रधानमंत्री वय वंदना योजना ,सतत विकास लक्ष्य ,सेज

पोर्टल इत्यादि। इसके इसके अतिरिक्त अनेक संवैधानिक प्रावधान जैसे हिन्दू दत्तक और भरण–पोषण कानून, 1950 (धारा 18–23), दंड प्रक्रिया संहिता (धारा 125), माता,पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण तथा कल्याण अधिनियम 2007 ,भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 की अनुसूची 3 एवं धारा 6 में वृद्ध लोगों के अधिकारों की चर्चा की गई है इसमें कार्य की दशाओं भविष्य निधि तथा वृद्धा पेंशन की चर्चा है इसके अतिरिक्त राज्य सूची में मद संख्या 9 एवं समवर्ती सूची की मध्य संख्या 20 ,23 तथा 24 में पेंशन सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा के अधिकार दिए गए है राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के अनुच्छेद 41 के अनुसार राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमाओं के भीतर वृद्धजनों के रोजगार शिक्षा,बीमारी,विकलांगता की स्थिति में सार्वजनिक सहायता के अधिकारों को सुरक्षित करेगा एवं इसके लिए कारगर प्रावधान बनाएगा। इत्यादि है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता है कि परिवार में बच्चों का सामाजीकरण ऐसा किया जाए कि वह वृद्धों के प्रति लगाव, सहानुभूति ,सम्मान जैसे नैतिक शिक्षा प्राप्त कर सकें। वृद्धजनों के साथ ऐसा सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है जिससे वृद्धजन अपने हठधर्मिता को छोड़कर नए सामाजिक मूल्यों से अवगत हो सकें और अपने उत्तरदायित्व को पहचानते हुए अपनी क्षमता के अनुसार सहयोग एवं अपने अनुभव को कार्यशील युवा के साथ साझां कर सकें। ताकि अनुभवी वृद्ध और नई युवा पीढ़ी एक नवीन समाज का निर्माण कर सकें अतः वृद्धजनों को समाज की मुख्यधारा से बांधे रहने की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि यह हमें नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी को अवगत कराने वाली सामाजिक धरोहर है।

सुझाव –

•वृद्धजनों का नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराकर उचित समय पर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराया जाए और वृद्धजनों के दैनिक क्रियाकलापों के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।

•चिकित्सालयों में जेरियाट्रिक वार्ड एवं ओपीडी तथा सस्ती दवाओं की स्वास्थ्य सुविधाएं प्रारंभ की जाए बुजुर्गों के स्वास्थ्य व सुरक्षा के बेहतर प्रबंध किए जाने की आवश्यकता है।

•सरकार गरीब व बेघर वृद्धजनों हेतु निःशुल्क देखभाल गृह एवं स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराएं।

•वृद्धावस्था पेंशन एवं अन्य सामाजिक सुविधाओं को सुदृढ़ एवं भ्रष्टाचार मुक्त बनाया जाए।

•बैंकों की मदद से वरिष्ठ नागरिकों को विशेष ऋण उपलब्ध कराया जाए ताकि छोटे व्यवसाय के माध्यम से वे आर्थिक रूप से स्वावलंबी तथा सुरक्षित हो सके।

•वृद्धों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए अर्थव्यवस्था में सक्रिय रूप से इनकी भागीदारी को शामिल करना होगा, उन्हें फिर से कुशलता प्रदान करने एवं नवीन तकनीकों से अवगत कराने की आवश्यकता होगी ।

•बुजुर्गों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए वृद्धावस्था पेंशन का दायरा बढ़ाया जाए।

•वृद्धों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाए।

•वरिष्ठ नागरिकों के लिए एक विशेष पुलिस इकाई की स्थापना की जानी चाहिए,इस इकाई का प्रमुख उप अधीक्षक या उससे उच्च पद का अधिकारी होना चाहिए।

•सामाजिक–आर्थिक उत्थान के संदर्भ में बुजुर्ग महिलाओं पर विशेष रुप से ध्यान दिया जाना चाहिए,क्योंकि महिलाओं की आयु पुरुषों की तुलना में अधिक होती है।सच ही कहा गया है कि अवसरों की अनुपलब्धता दूसरों पर निर्भर बना देती है भारतीय समाज मे महिलाए सदैव दूसरो पर निर्भर रही है अतः उनका अस्तित्व कई कमजोरियों का शिकार होता रहा है।

•कानून के साथ साथ वृद्धों के प्रति परिवार ,समुदाय तथा समाज के दायित्व को भी जागृत करने की आवश्यकता है।

•अपने परंपरागत सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों के प्रति लोगों को जागरूक बनाया जाना चाहिए।

•वृद्धों के मनोरंजन का पूरा ख्याल रखते हुए धार्मिक एवं मांगलिक कार्यक्रमों में उन्हें शामिल किया जाना चाहिए।

•पारिवारिक व अन्य मामलों में उनसे विचार विमर्श किया जाए साथ ही विभिन्न अवसरों पर उन्हें उचित स्थान,सम्मान एवं पहचान देना चाहिए।

•गैर सरकारी संगठनों को वृद्धों के कल्याण के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

•विविध विषयों में वृद्धावस्था से संबंधित पाठ्यक्रम लागू किया जाना चाहिए जिससे नवीन पीढ़ी के बच्चों को भी बुजुर्गों के प्रति व्यवहार की दृष्टि से संवेदनशील बनाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ–

- सिंह, जन्मेजय एवं सिंह वी.एन.(2015)नगरीय समाजशास्त्र ,रावत प्रकाशन
- अग्रवाल,गिरिराज शरण (2014),वृद्धावस्था की कहानियां, प्रभात प्रकाशन,दिल्ली
- राय ,सत्येंद्र नाथ (2016),वृद्धावस्था में सुखी जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- जोशी, शाची (2020),कोविड–19 एंड एल्डरली इन इंडियाः कंसर्न्स एंड चैलेंजेस, Men power journal . 4 जुलाई –दिसंबर
- कॉर सतवीर और रंधावा मनिंदर सिंह (2021), प्रॉब्लम्स फेसड बाय सीनियर सिटीजन ए लिटरेचर रिव्यू www.jetir.org
- यादव डॉ जय सिंह (2017),भारत में वृद्धों की सामाजिक समस्या कारण एवं निदान ,International journal of scientific and innovation research studies, volume 5 , 7 जुलाई
- अंजू (2017),वृद्धों की सामाजिक स्थिति एवं समस्याएं एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ,एंथोलॉजी द रिसर्च
- जोशी, अरविंद कुमार (2011),देखभाल की समस्या और सरकारी प्रयास योजना, नई दिल्ली
- कुमारी,. सुषमा (2020),भारतीय समाज में वृद्धों की समस्याओं के कारण एवं समाधान, नेशनल जनरल ऑफ अप्लाइड रिर्सच www. all research journal.com
- शेट्टार,शकुंतला.सी (2013), भारतीय परिदृश्य बदलनें से वृद्धों की समस्याएं, योजना,1अगस्त https://yojana-gov-in
- कुलकर्णी,सुमति(2017),वृद्धजनों को सहारा एवं योजना, जुलाई https://yojana-gov.in
- यादव,जयसिंह, भारत में वृद्धों की सामाजिक समस्याएंः कारण एवं निदान। https:www.csir.org.in
- शर्मा, आशा, भारतीय समाज में वृद्धजनों की स्थिति और उसको बेहतर बनाने के प्रयास https://www.sieallahabad.org
- राष्ट्रीय वृद्ध नीति राष्ट्रीय वृद्धजन शिक्षा संसाधन केंद्रीय इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली।
- Sukontamarn ,Pataporn et.al.(2023),Happiness in Old Age: The Daughter Connection , Journal of Happiness Studies. https://doi.org/10.1007/s10902-023-00655-1
- हेल्प एज इंडिया (2015),एल्डरली एब्यूज इन इंडिया, नई दिल्ली
- Elderly in India profile and programs (2016), MOSPI, CSO, Social Statistics Division Government of India.
- UNFPI caring for our elders elderly response India age report 2017 New Delhi.
- NSSO report number 574 Health In India Ministry Of Statics And Program Implementation ,Government.
- https://census in india.gov.in
- www.ncbi.nlm.nih.gov
- https://www.who.int
- https://social justice.nic.in
- https://www.everyday health.com
- https://www.//en Wikipedia org/wiki/retirement

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

अनुसूचित जाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति

कृष्णानन्द पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज आजमगढ़।

सारांश

किसी भी समाज को सशक्त बनाने का एकमात्र साधन शिक्षा है क्योंकि शिक्षा अज्ञानता को दूर करके ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करनें का एक बहुत ही प्रभावी साधन है। शिक्षा की तुलना अमृत से की गयी है। भारत में शिक्षा का स्तर बहुत ही दयनीय है और महिलाओं की शिक्षा का प्रतिशत और भी दयनीय है, ऐसे में अनुसूचित जाति जो कि समाज का अत्यन्त पिछड़ा वर्ग है। इस वर्ग की महिलाओं का शिक्षा का स्तर अत्यन्त दयनीय है और इन महिलाओं को शसक्त बनाने का एक मात्र साधन शिक्षा ही है।

क्योंकि जब एक नारी शिक्षित होती है तभी हमारा समाज आगे बढ़ सकता है। नेल्सन मंडेला ने कहा था कि ''दुनिया को बदलने के लिए शिक्षा ही सबसे बड़ा औजार है''। पहले के समय में महिलाओं को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा जाता था। उन्हें पढ़ने–लिखने के लिए स्कूल नहीं भेजा जाता था। इसी कारणवश दुनिया के कई देश विकास नहीं कर पाये क्योंकि उनकी आधी आबादी अशिक्षित रह गई। पहले के मुकाबले अब वक्त बदला है भारत जैसे देश में अब सिर्फ लड़कों को ही शिक्षा का अधिकार नहीं बल्कि लड़कियों को भी शिक्षा का अधिकार है और जिसके परिणामस्वरूप आज हमारे देश में लड़कियां भी लड़कों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है और हर क्षेत्र में परचम लहरा रही हैं।

देश की जनसंख्या का 20 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जातियों और जनजातियों का है। उनमें से अधिकांश लोग शिक्षित नहीं है तथा गरीब एवं पिछड़े हुये हैं और कई सामाजिक बुराईयों के शिकार हैं इनके परिवार की महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उन्हें अपने समाज एवं परिवार में उचित सम्मान एवं अधिकार नहीं प्राप्त है। जिस कारण उनकी स्थिति दिन–प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है और उनको समाज में उचित सम्मान दिलाने का एक मात्र साधन शिक्षा है। अनुसूचित जाति की महिलाओं का उत्थान किये बिना देश के विकास को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

शब्द कुन्जीः– शिक्षा, अनुसूचित जाति, महिलायें, सम्मान, स्थिति।

प्रस्तावना

भारत के संविधान के अनुसार शिक्षा भारत के प्रत्येक बच्चे का मूल अधिकार है लेकिन भारत में नारी क्षिशा की स्थिति अभी भी एक संघर्ष है। हांलाकि यह एक मौलिक अधिकार है। विश्व औसत महिला साक्षरता दर की तुलना में भारत में महिलाओं की समग्र साक्षरता दर बहुत कम है। वैदिक काल में भारत में महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच थी किन्तु उन्होंने यह अधिकार खो दिया, हांलाकि ब्रिटिश काल में भारत में महिलाओं की शिक्षा का पुनरूद्धार हुआ। इस अवधि के दौरान राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नेतृत्व में विभिन्न सामाजिक, धार्मिक आंदोलनों ने भारत में महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया। महात्मा ज्योतिबा फूले, पेरियार और बाबा साहेब अम्बेडकर भारत में दलित जातियों के नेता थे। जिन्होंने भारत की महिलाओं को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न पहल की। हाँलाकि 1947 में देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा मिला और सरकार ने सभी भारतीय महिलाओं को शिक्षा प्रदान करनें के लिए कई उपाय किये। परिणामस्वरूप तीन दशकों में महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानः–

संविधान का अनुच्छेद 46 प्रावधान करता है कि राज्य समाज के कमजोर वर्गों में शैक्षणिक और आर्थिक हितों विशेषतः अनुसूचित जातियों और जनजातियों का विशेष ध्यान रखेगा। शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण

का प्रावधान अनुच्छेद 15(4) में किया गया है। जबकि पदों में एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 16(4), 16(4क) और 16(4ख) में किया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों के हितों एवं अधिकारों को संरक्षण एवं उन्नत करनें के लिए संविधान में कुछ अन्य प्रावधान भी समाविष्ट किये गये हैं। जिससे कि वे राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ने में समर्थ हो सके।

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के शैक्षिक आधार को मजबूत करने के लिए कई कदम उठायें हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और हस्तक्षेप कार्यक्रम 1992 को प्राथमिक शिक्षा साहित्य और माध्यमिक और उच्च शिक्षा के विभाग में रोमांचक कार्यक्रम में विलय कर दिया गया। सभी राज्यों के विद्यालयों में अधिकतम मानक उपलब्ध कराना तथा शुल्क प्रतिपूर्ति करना जिसका पालन कर अधिकांश राज्यों ने उच्च माध्यमिक स्तर तक एस.सी. और एस.टी. छात्रों के ट्यूशन फीस खत्म कर दी है। इन छात्रों के लिए मुख्य पाठ्य पुस्तक, स्कूल ड्रेस, स्टेशनरी स्कूल बैग आदि जैसी वस्तुएं प्रोत्साहन स्वरूप दी जाती है। संविधान का 86वाँ संशोधन अधिनियम भी 6 से 14 वर्ष आयु के सभी बच्चों के लिए बुनियादी अधिकार रूप से मुफ्त (निःशुल्क) अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करता है।

सर्व शिक्षा अभियान (एस0एस0ए)

यह देश की प्राथमिक विद्यालय प्रणाली के आकार को बदलने की योजना बना रहा है और 2010 में 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मूल्यवान और विश्वसनीय प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने का इरादा रखता है। कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं हैं–

(1) बच्चों विशेषकर एससी/एसटी और अल्पसंख्यक के आबादी पर विशेष ध्यान।
(2) स्कूल से बाहर की लड़कियों के लिए स्कूल परिसर में वापसी।
(3) बालिकाओं को निःशुल्क पाठ्य–पुस्तकें।
(4) बालिकाओं के लिए रचनात्मक शिक्षा पर विशेष जोर।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमः–

यह योजना अनुसूचित जातियों की कामकाजी महिलाओं, बच्चों, शहरी–गरीब बच्चों, विकलांग बच्चों आदि जैसे कमजोर समुदायों पर केन्द्रित है और अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए विशेष रणनीति है और इसके लिए लक्ष्य भी निर्धारित किये जाते हैं। यह योजना उन क्षेत्रों में शुरू की जाती है जहाँ महिला आबादी राष्ट्रीय औसत से कम है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयः–

यह विद्यालय उन स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं जहाँ महिलाओं को विद्यालय पहुँचने में समस्या होती है। इस विद्यालय में मुख्य रूप से अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय है। यह विद्यालय उन्हीं स्थानों पर खोला जाता है जहाँ 2001 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण महिला साक्षरता राष्ट्रीय औसत से नीचे है और लैंगिक असमानताएं राष्ट्रीय औसत से अधिक है। इन ब्लाकों में आदिवासी, शहरी आबादी, महिलाओं की साक्षरता और बड़ी संख्या में स्कूल छोड़ चुकी लड़कियों के लिए स्कूलों का विकास किया जा सकता है। इस प्रकार भारत सरकार अनुसूचित जाति, जनजाति की महिलाओं के लिए कई विशेष प्रावधान किये हैं, जिससे उनकी शिक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा में आने वाली समस्यायेंः–

(1) अनुसूचित जाति की महिलायें घरेलू कार्यों में संलग्न होती है और इन्हें बीच में ही विद्यालय छोड़ना पड़ता है।

(2) विद्यालय का दूर होना, छोटे भाई–बहनों की देखरेख आर्थिक व सामाजिक समस्यायें ऐसे कारण है जो अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा में बाधक रही हैं।

(3) ग्रामीण क्षेत्रों में दलित बस्तियों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। इनके परिवारों के पास पूँजी एवं परि सम्पत्तियों के अभाव के चलते अनुसूचित जाति की बालिकायें बालश्रम करनें को मजबूर हैं। शैक्षिक विकास के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त बाल्य अवस्था एवं किशोरावस्था श्रम के बोझ के नीचे दबकर रह जाती है।

(4) पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली निर्धनता उनकी शिक्षा एवं कौशल विकास के लिए सबसे बड़ा अवरोधक है।

(5) सबसे बड़ी समस्या परिवार के सदस्यों का अशिक्षित होना है। जो शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पाते हैं और अपने बच्चों को अशिक्षित ही रहने देते हैं।

(6) विद्यालयों के अन्दर छुआ–छूत जैसी सामाजिक बुराइयां भी इस वर्ग की महिलाओं की शिक्षा में बाधा रही है।

(7) विद्यालयों में नियुक्त शिक्षक भी इनके साथ दोहरा व्यवहार करते हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा में सहभागिता के लिए सुझावः–

(1) विद्यालयी शिक्षा में सामाजिक, सांस्कृतिक बाधाओं को कम करनें का प्रयास किया जाये।

(2) अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा पर केन्द्रित शैक्षिक दृष्टिकोण।

(3) अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा शोषण मुक्त हो एवं उनके अधिकारों एवं लाभों का वे अधिकतम उपयोग कर सकें इसके लिए जमीनी स्तर पर योजनाओं का क्रियान्वयन होना चाहिए।

(4) अनुसूचित जाति के परिवारों को शिक्षा का महत्व बताया जाये और घर की महिलाओं को शिक्षा के लिए अभिप्रेरित किया जाये।

(5) इनके अन्दर प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत की जानी चाहिए।

(6) इनके उच्च शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी शासन को लेनी चाहिए।

(7) विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में अनुसूचित जाति की महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए तहसील या गाँव स्तर पर स्पेशल कोचिंग एवं आर्थिक सहायता उन्हें मिलनी चाहिए।

निष्कर्ष

समाज की आधी आबादी महिलाओं की है और जिस देश ने महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया उस देश की आधी आबादी अशिक्षित रह जाती है और वह देश विकास में पीछे रह जाता है, यदि सामाजिक दृष्टि से देखें तो यदि एक पुरूष शिक्षित होता है तो वह अपने तक ही सीमित रह जाता है किन्तु जब एक महिला शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है इस प्रकार महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है, स्वतन्त्रता के पश्चात भारत सरकार ने महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया और उसका सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हुआ।

समाज का एक अत्यन्त पिछड़ा वर्ग जिसे संविधान में अनुसूचित जाति से सम्बोधित किया जाता है, इस वर्ग की महिलाओं की शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, इसके लिए कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक कारक जिम्मेदार थे, किन्तु देश के आजाद होने के पश्चात भारत सरकार ने इनके हित में कई प्रावधान किये और परिणाम स्वरूप इनके शैक्षिक स्तर का उत्तरोत्तर विकास होता गया और ये आज समाज की अन्य महिलाओं के समान स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) राम अहूजा (1995) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
(2) भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन–एस.एल. दोषी, पीसी जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर–05 तृतीय संस्करण, 2005 पृष्ठ 98
(3) शशिरानी अग्रवाल (2005–2006), समाजशास्त्र विभाग, स्त्री वर्तमान सन्दर्भ में, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी।
(4) राम गोपाल सिंह, सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और जाति व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
(5) कुसुम यदुलाल (2008) दलित शिक्षा का परिदृश्य, कल्पना पब्लिकेशन नई दिल्ली।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार की भूमिका

डॉ0 अजय कुमार सोनकर
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज आजमगढ़

सारांश

मनुष्य के अस्तित्व में आने के साथ ही उसे संचार की आवश्यकता का अनुभव हो गया होगा क्योंकि अभिव्यक्ति मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। बात–चीत या संचार प्रक्रिया अभिव्यक्ति का माध्यम है। सामाजिक प्राणी होने के नाते संचार करना मनुष्य की प्रकृति है और प्रत्येक व्यक्ति कुछ समझना तथा समझाना चाहता है। इस प्रकार संदेशों को भेजना और ग्रहण करना एक अनिवार्य प्रक्रिया हो जाती है। सामान्यतः लोग समूह संचार को जनसंचार मान लेते हैं क्योंकि जन समूह या भीड़ दोनो ही प्रकार के संचारों में होता है। वास्तव में समूह संचार एवं जनसंचार में मुख्य भेद यही है कि जब संचार की प्रक्रिया दो–तीन या उससे कुछ अधिक संख्या में उपस्थित लोगों के बीच होती है तो वह समूह–संचार कहा जाता है किन्तु जब किसी यंत्र का प्रयोग करके बहुत बड़े मिश्रित जनसमूह को सम्बोधित किया जाता है तब उसे जनसंचार प्रौद्योगिकी कहा जाता है। यह उपकरण के माध्यम से एक बहुत बड़े जनसमूह को संदेश भेजने की प्रणाली है। मुद्रण यंत्र के आविष्कार के साथ ही जनसंचार युग का प्रारम्भ हो गया था। बीसवीं सदी की शुरूआत में रेडियो, टेलीविजन, इलेक्ट्रानिक माध्यम के प्रचलन के साथ ही जनसंचार सामाजिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक उपग्रह प्रणाली, कम्प्यूटर, इन्टरनेट इत्यादि पर आधारित जनसंचार माध्यमों ने विश्व को सूचना क्रान्ति के युग में पहुँचा दिया। इस प्रकार समाज की दिशा और दशा दोनो को जनसंचार माध्यमों ने प्रभावित कियां इसलिए सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन करना आवश्यक हो गया।

शब्द कुंजीः– जनसंचार, इन्टरनेट, मुद्रण, बेवसाइट्स, संदेश।

प्रस्तावना

शाब्दिक दृष्टि से संचार के लिए अंग्रेजी मैं ''कम्यूनिकेशन'' शब्द का प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के शब्द ''कम्यूनिश'' (Communis) से बना है जिसका अभिप्राय है, ''मन के किसी विचार या भाव को दूसरे के साथ बाँटना'' निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संचार अपने भावों एवं विचारों को दूसरों से बाँटनें की महत्वपूर्ण एवं सार्थक प्रक्रिया है।

जनसंचार की यदि हम बात करते हैं तो जनसंचार को ''मास कम्यूनिकेशन'' भी कहते हैं। इसके द्वारा अनेक वर्गो, जातियों, समुदायों और विचारधाराओं के लोगों के साथ संचार या बातचीत की जा सकती है। इसके अन्तर्गत मुद्रण माध्यम (समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पैम्पलेट आदि) श्रव्य एवं दृश्य–श्रव्य माध्यम (रेडियो, ऑडियो, फिल्म, टेलीविजन, वीडियो, कैसेट, सीडी, डी0वी0डी0) तथा नव इलेक्ट्रानिक माध्यम (उपग्रह एवं कम्प्यूटर प्रणाली अर्थात् इनटरनेट से जुड़े माध्यम) आते हैं।

आजकल तेजी से प्रचलन में आई सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स जैसे–फेसबुक, वाट्सएप, ट्विटर आदि को भी जनसंचार के माध्यम के अन्तर्गत रखा गया है।

जनसंचार की विशेषताएंः–

(1) जनसंचार प्रक्रिया में विशाल क्षेत्र में बिखरे हुए प्रापकों तक शीघ्रता से सम्पर्क हो जाता है। बिखरे प्रापकों से तात्पर्य यह है कि प्रापक एक स्थान पर सीमित नहीं होते हैं बल्कि दूर–दूर तक फैले होते हैं। उनकी पृष्ठभूमि भी अलग–अलग होती है।

(2) जनसंचार किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति विशेष के लिए कार्य नहीं करता। जनसंचार द्वारा प्रेषित सूचना समस्त जनता के लिए सामान्य रूप से खुली होती है।

(3) जनसंचार की प्रक्रिया सुस्पष्ट होती है तथा उसका ढ़ांचा भी स्पष्ट होता है।

(4) प्रतिपुष्टि (Feedback) जनसंचार प्रक्रिया को प्रभावी बनाती है। जनसंचार माध्यम से मिली सूचनाओं पर प्रापक की क्या प्रतिक्रिया है और सूचनाओं पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, आदि की जानकारी प्रतिपुष्टि के द्वारा हो जाती है।

(5) जनसंचार में सदेश चूँकि मिश्रित जनसमूह को लक्ष्य करके भेजा जाता है, परन्तु जनसमूह की स्थितियाँ एवं रूचियाँ विभिन्न प्रकार की होती है। अतः संचार की विष्यवस्तु का चुनाव एवं विवेचन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसी कारण जनसंचार की एक महतवपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें व्यक्ति उस संदेश का चयन करता है, जो उसकी मान्यताओं एवं विशेषताओं के अनुकूल होता है।

(8) जनसंचार के विकास ने भौगोलिक एवं समय की सीमाओं को तोड़ दिया है। जनसंचार के कारण ही आज ग्लोबल विलेज की परिकल्पना साकार हो रही है।

जनसंचार के साधनः– जनसंचार के विभिन्न साधनों का काम देश के अलग–अलग हिस्सों में घटित होने वाली घटनाओं, राजनीतिक गतिविधियों, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, तरह–तरह की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं, विकास कार्यक्रमों और विभिन्न वर्गों की भूमिकाओं की जानकारी देने के साथ जन साधारण को मनोरंजन की सुविधाएँ देना है। विभिन्न समाचार पत्र और पत्रिकाएं लोगों में अपने कैरियर, स्वास्थ्य और सामाजिक जीवन के प्रति चेतना भी पैदा करते हैं। रेडियो और टेलीविजन द्वारा ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिसमें जीवन की नीरसता को कम किया जा सके। इन सभी साधनों का वास्तविक उद्देश्य समाज में उपयोगी परिवर्तन लाना होता है।

1– परम्परागत माध्यम।

2– आधुनिक एवं विशिष्ट माध्यम।

परम्परागत माध्यमः– परम्परागत माध्यम को लोक माध्यम भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कथाएं, वार्ता, लोकगीत, नाटक, मेले, उत्सव (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी आदि) शिलालेख, लोककलाएं, मूर्तिकला (अजन्ता, एलोरा) वास्तुकला, ललित कलाएं, विशेष संदेश प्रेक्षक पक्षी (कबूतर) आदि आते हैं। ये माध्यम लोक संचार अथवा जनसंचार के माध्यम के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होते रहे हैं। इन माध्यमों ने भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित कर उसे आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। समय परिवर्तन के साथ इनके स्वरूप एवं महत्व में परिवर्तन हुये हैं परन्तु इनकी प्रासंगिकता पूरी तरह समाप्त नहीं हुयी है। इसका कारण यह भी है कि इसका सीधा जुड़ाव सामान्य जनजीवन से है।

आधुनिक एवं विशिष्ट माध्यमः–

(1) **प्रिन्ट या मुद्रण माध्यमः–** इसके अन्तर्गत समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, हैंडबिल, पैम्पलेट इत्यादि।

(2) **इलेक्ट्रानिक माध्यमः–** संचार प्रक्रिया का यह ऐसा माध्यम है, जिसमें विद्युत उपकरणों द्वारा संदेश पहुंचाया जाता है। जैसे–रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, इन्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल फोन, ट्रांसमीटर, फैक्स, पेजर, टेलीप्रिंटर आदि।

सामाजिक परिवर्तन एवं जनसंचारः– सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों और समाज के ढ़ाँचे में होने वाले सभी तरह के परिवर्तनों से होता है संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को हम सांस्कृतिक परिवर्तन कहते हैं संचार के लिए हम जिन प्रौद्योगिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं वे हमारी संस्कृति के विभिन्न पक्ष हैं। इनमें से किसी भी पक्ष में जब कोई बदलाव आता है तो इसी दशा को हम सांस्कृतिक परिवर्तन कहते हैं उदाहरण के लिए सामाजिक सीख के तरीके, लोगों के विचार और मनोवृत्तियाँ संस्कृति से सम्बन्धित व्यवहार के विभिन्न ढंग, नैतिक मूल्य, धार्मिक विश्वास, विभिन्न प्रकार की कलाएँ तार्किक ज्ञान और बहुत से

प्रौद्योगिक उपकरण संस्कृति के विभिन्न पक्ष हैं। सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान समाज आकार में इतने बड़े और जटिल हैं कि सभी लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क करके उनके जीवन में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। इस दशा में जनसंचार के विभिन्न साधन सभी लोगों के विचारों मनोवृत्तियों और व्यवहार करनें के तरीकों में परिवर्तन ला कर एक नये समाज का निर्माण करनें में योगदान करते हैं आज जनसंचार ने हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा किये हैं। जिसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

विचारों और मनोवृत्तियों में परिवर्तनः– जनसंचार माध्यमों से हमारे विचारों और मनोवृत्तियों में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए जब हम टेलीविजन और रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों या फिल्मों के कथनांक द्वारा परम्परागत, अंधविश्वासों और दुर्बल वर्गों के शोषण से समबन्धित दुष्परिणामों को देखते हैं तो धीरे–धीरे हमारे विचार अपने आप बदलने लगते हैं। आज भारतीय समाज में बेकार की रूढ़ियों, कर्मकांडों और जाति व्यवस्था के असामान्यताकारी, नियमों तरह–तरह की कुप्रथाओं और समाज में स्त्रियों की परिस्थितियों के बारे में हमारे विचार बदल रहे हैं वे किसी न किसी रूप में जनसंचार के साधनों से ही प्रभावित हैं।

आधुनिकीकरण को प्रोत्साहनः– आज दुनिया के सभी समाज आर्थिक और सामाजिक विकास के द्वारा आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। जनसंचार के साधन लोगों को यह बताते हैं कि वर्तमान युग में किस तरह के व्यवहार अधिक उपयोगी हैं उदाहरण के लिए बच्चे अपने जीवन के आरम्भ से ही जब बड़े–बड़े अभिनेताओं, खिलाड़ियों और कलाकारों को कुछ विशेष ढंग से व्यवहार करते हुए देखते हैं तो वे उन व्यवहारों से सम्बन्धित मूल्यों और मनोवृत्तियों को जल्दी ही ग्रहण कर लेते हैं।

सामाजिक सामानता में वृद्धिः– समाज का विकास तभी सम्भव है जब समाज में सभी तरह के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विभेदों को कम से कम किया जा सके। समाचार–पत्र और पत्रिकाओं के लेख एक ऐसी तर्कवृद्धि विकसित करते हैं जिनमें मानवतावाद का अधिक महत्व होता है। फिल्मों में यह दिखाया जाता है कि सामंतवादी तरीके किस तरह हमारी प्रगति में बाधक है विभिन्न वर्गों से उत्पीड़न को देखकर हम स्वयं यह समझने लगते हैं कि हमारे अपने व्यवहारों में किस तरह का परिवर्तन लाना चाहिए। उत्पादकों और मजदूरों के बीच सहयोग बढ़ाने में जनसंचार के साधन उपयोगी भूमिका निभाते हैं।

समाज सुधार में योगदानः– सामाजिक समस्याओं के समाधान में जनसंचार के साधन उपयोगी भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में तरह–तरह की कुरीतियाँ, अंधविश्वास और पारिवारिक विघटन से सम्बन्धित बहुत ही समस्यायें थी जनसंचार के साधनों के द्वारा लोगों को इन समस्याओं के दुष्परिणामों से परिचित कराया गया, जिसके फलस्वरूप लोगों के मनोवृत्तियों में परिवर्तन होने लगा और इन समस्याओं का समाधान करना सम्भव हो सका।

नियोजित परिवर्तन का आधारः– अशिक्षा और परम्परागत जीवन के कारण समान्य लोग किसी भी परिवर्तन को संदेह की दृष्टि से देखते हें। इस दशा में जनसंचार के साधन ही व्यवहार के नये ढंगो की उपयोगिता को स्पष्ट करके विकास कार्यक्रमों में लोगों के सहभाग को बढ़ाने में मदद करते हैं। भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम और सामाजिक कानूनों को भी जनसंचार के द्वारा ही अधिक प्रभावपूर्ण बनाना सम्भव हो सका।

लोकतांत्रिक व्यवस्था का दृढ़ीकरणः– लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाने में जनसंचार के साधन बहुत उपयोगी होते हैं। इन साधनों के द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों के व्यवहारों से इस तरह परिवर्तन लाया जाता है कि जिससे वे सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति अधिक जागरूक रह सकें। जनसंचार के साधन राजनैतिक दलों के दोषों को जनता के सामने लाकर उनके व्यवहारों पर नियंत्रण रखते हैं। साथ ही सरकार को जनता से किये गये वायदों को याद दिलाते रहते हैं। जनसंचार के द्वारा समय–समय पर

विभिन्न राजनीतिक दलों की लोकप्रियता में होने वाली वृद्धि अथवा कमी को भी स्पष्ट किया जा सकता है। इससे सरकार और विपक्षी दलों के बीच शक्ति का संतुलन बना रहता है। एक लोकताांत्रिक समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के लिए यह सभी दशाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इसी कारण मीडिया को ''लोकतंत्र का पहरेदार'' (Wathdog of Democracy) भी कहा जाता है।

विश्व समुदाय का विकासः– जनसंचार के साधनों ने बाहरी दुनिया के लोगों को जानकारी देकर पूरे विश्व को एक समुदाय के रूप में विकसित किया है। जहाँ समाज में अधिकांश लोगों के सम्बन्ध अपने पड़ोस, गाँव, जाति और क्षेत्र तक ही सीमित थे वहीं अब पूरा विश्व एक समुदाय बन गया है। यही दृष्टिकोण वैश्विककरण की वर्तमान प्रक्रिया का आधार है।

मनोरंजन द्वारा परिवर्तनः– आज समाचार–पत्रों, रेडियों, टेलीविजन तथा फिल्मों को मनोरंजन के साधन के रूप में देखा जाता है। वास्तविकता यह है कि संचार के यह साधन लोगों को मनोरंजन देने के साथ ही इस तरह के कार्यक्रम प्रयोजित करते हैं जिससे समाज में परिवर्तन के लिए एक उपर्युक्त वातावरण बन सके। परिवर्तन के बिना न तो संस्कृति का विकास सम्भव होता है और न ही समाज में उपयोगी व्यवहार प्रभावपूर्ण बन पाते हैं। अब विभिन्न समाचार–पत्रों में समाचारों के अलावां मनोरंजन सम्बन्धी सामग्री भी प्रकाशित की जाने लगी है जिससे सूचना के साथ मनोरंजन का मिश्रण होने से इनमें सभी तरह के पाठकों की रूचि बनी रहे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि संस्कृति का सम्बन्ध जिन सीखे हुये व्यवहारों से है उन सभी व्यवहारों में परिवर्तन लाने में जनसंचार के साधन एक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। जनसंचार के साधनों द्वारा लाया जाने वाला परिवर्तन नियोजित प्रकृति का होता है नियोजन एक उपयोगी प्रक्रिया होने के साथ ही वर्तमान समाजों की प्रमुख आवश्यकता है, यही कारण है कि सभी सरकारें जनसंचार के साधनों को व्यवस्थित रूप देकर इन्हें प्रभावपूर्ण बनाने की कोशिश करती हैं। इस प्रकार जनसंचार माध्यमों का सामाजिक परिवर्तन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समाजशास्त्र डॉ0 जी.के. अग्रवाल, विवेक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–354
2. भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन–एस.एल. दोषी, पीसी जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर–05 तृतीय संस्करण, वर्ष–2005, पृष्ट–98
3. कुरूक्षेत्र, 2015, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार।
4. शर्मा, कुमुद (2003), भूमंडलीकरण और मीडिया ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली।
5. रावत, हरिकृष्ण (2006), उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
6. शर्मा, डॉ0 राकेश (2000) संचार एवं सामाजिक परिवर्तन, आदित्य पब्लिशर्स बीना (मध्य प्रदेश)

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

मानव का पारिस्थितिकीय पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अमित मालवीय
पूर्व शोध–छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश–

प्रकृति अथवा पर्यावरण के सभी घटक (जल, वायु मृदा, खनिज, पेड़ पौधे जीव जन्तु व मानव) अपने प्राकृतिक क्रियाकलापों से वातावरण को स्वच्छ रखने का प्रयास रखते है, पर्यावरण के प्रत्येक घटक के अन्दर भी उसके अलग–अलग तत्व होते है। पर्यावरण के ये घटक अथवा उनके तत्व अपना प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने हेतु मानव के लिए स्वच्छ, स्वस्थ वसतुलित वातावरण प्रदान करते है किन्तु जब मानव की विकासात्मक क्रियाओं के परिणाम स्वरुप प्रकृतिक के घटकों अथवा उनके तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है तो उससे सम्पूर्ण पर्यावरण में ही उथल बल हो जाता है तब कहा जाता है कि पर्यावरण में असंतुलन तथा प्रदूषण बढ़ रहा है। इस असंतुलन से प्रकृति की क्रियाओं में अवरोध उत्पन्न होने लगता है और प्रकृति क्रोधित हो उठती है। पर्यावरण प्रदूषण मानवीय क्रियाओं से जल, वायु एवं मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य पौधों अन्य जन्तुओं तथा उनके वातावरण आदि को न केवल हानी पहुंचाता है, बल्कि उनके अस्तित्व को भी संकट में डाल देता है, पर्यावरण मानव की सभी क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। इस लिए कहा जाता है कि मनुष्य अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों की उपज है, मनुष्य का भोजन वस्त्र मकान आदि सब प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार ही होते है किन्तु दूसरी और मनुष्य भी अपनी क्रियाओं से वातावरण को प्रभावित करता है। उदाहरण के रूप में हम कह सकते है कि मनुष्य मे नदियों पर बांध बनाकर बिजली पैदा की सिंचाई द्वारा मरुस्थल में भी खेती की, वनों को साफ कर नगर दसाये अपनी सुझ बुझ से सीढ़ीदार खेत बनाकर उसके पहाड़ी पर भी खेती कर दिखाई, उसने तीव्र गर्मी को कुलर द्वारा ठण्ड और तीव्र ठण्ड को हीटर द्वारा गर्मी में बदल दिया, किन्तु जब मानव सीमा अतिक्रमण करता है। और पर्यावरण के संसाधन की कमी होने के बावजूद उसकी स्थिति व संतुलन का ध्यान न रखते हुए उसका दोहन जारी रखता है तो इससे पर्यावरण के उस घटक का हास होने लगता है और उसकी क्रियाशीलता घट जाती है तथा पर्यावरण असंतुलित हो जाता है, एक और उदाहरण से हम स्थिति को इस प्रकार व्यक्त कर सकते है कि यदि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मानव मिट्टी का असंतुलित उपयोग बढाता चला जाये और उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अनियन्त्रित प्रयोग करता रहे तो एक दिन स्थिति यह आ सकती है कि मिट्टी का कस ही निकल जाये उसकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता घट जाये तथा वह बाझ व उसर हो जाये।

मुख्य शब्द– मानव, कियाओं, जल, पर्यावरण, प्रभाव।

मानवीय क्रियाओं का अधिक दबाद पढ़ने के कारण पर्यावरण के घटकों का हास होने लगता है। उसकी क्रियाशीलता घट जाती है जिससे मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी बाधा पड़ जाती है। इस सम्बन्ध में मार्क्स का कहना था कि प्रकृति के प्रति मानवता के शत्रुतापूर्ण व्यवहार से ही पर्यावरण का हास होता है, यदि पर्यावरण के साथ सहयोग एवं संयम का व्यवहार किया जाये तो छोटी मोटी छति को प्रकृति स्वयं ही पूरा कर लेगी। इसी सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने कहा था कि प्रकृति हमारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है किन्तु हमारे लालच को नहीं। पर्यावरण जितनी स्वच्छ और निर्मल होंगे उतना ही हमारा शरीर तथ्था मन स्वच्छ व स्वस्थ होगा, इसलिए हमारे ऋषि मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व

कहा था कि प्रकृति हमारी मा है जो सभी कुछ अपने बच्चों को अर्पण कर देती है। इसी सम्बन्ध में चाणक्य ने कहा था कि राज्य की स्थिरता पर्यावरण की स्वच्छता पर निर्भर करती है औषधी विज्ञान के आदि गुरु चरक में कड़ा था कि स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु, जल तथा मिट्टी आवश्यक कारक है। महा कवि कालीदास में अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा मेघदूत जैसे अमर काव्यों में मन पर पर्यावरण के प्रभाव को दर्शाया है लेगार्क तथा डार्विन जैसे सुविख्यात वैज्ञानिकों ने भी पर्यावरण को जीवों के विकास में महत्वपूर्ण कारक माना है।

यदि प्राकृतिक वातावरण दूषित होता है तो उसका प्रतिकूल प्रभाव जीव जगत पर अवश्य ही पड़ेगा आज की भौतिक विचारधारा के कारण अपनी सुख सुविधा के साधनों अधिकाधिक वृद्धि के लालसा में मनुष्य मानव प्राकृतिक सम्पदाओं की लूट पर उतर आया है। इसी बेदर्द और अविवेकपूर्ण लूट का परिणाम है पर्यावरण प्रदूषण आज मनुष्य खुद अपने बुने जाल में फस गया है। अपने एसो आराम के लिए विकास की सीढ़ियां धड़ल्ले से चढ़ता गया, कुदरत का पैरों तले रौंदते हुए नतीजा यह हुआ कि आज उसे जिन्दगी के लिए साफ हवा और पानी भी दुगर है। पर्यावरण प्रदूषण विज्ञान और औद्योगिकी की देन है, महानगरी जीवन की सौगात है, विशाल उद्योगों की समृद्धि का बोनस है मानय की मृत्यु के मुंह में धकेलने की अनचाही चेष्टा है, रोगों को शरीर में प्रवेश करने का मौन निमन्त्रण है और प्राणिमात्र के अमंगल की अप्रत्यक्ष कामना है आक्सीजन जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि श्वसन के लिए सभी जीवों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है, किन्तु पर्यावरण प्रदूषण के कारण पिछले 100 वर्षों में लगभग 24 लाख टन आक्सीजन वायु मण्डल से समाप्त हो चुकी है उसकी जगह 36 लाख टन कार्बनडाई आक्साईड गैस ले चुकी है जिसके कारण तापमान बढ़ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से मौसम का बदलाव अत्यधिक गर्मी, सुखा पानी की कमी बर्फीली चोटियों का पिघलना समुद्र का जल स्तर उंचा उठना जिससे समुद्र तट के पास बसे शहरों में बाढ़ आना आदि खतरे उत्पन्न होंगे जिनका प्रभाव फसलों पर बुरा होगा तथा शारीरिक विकार व रोगों में वृद्धि होगी कीर यह मानव जीवन की विनाश लीला का प्रारम्भ होगा। सत्य भी है यदि सांस लेने को शुद्ध हवा न मिले पीने को स्वच्छ जल न मिले उसका भोजन ही प्रदूषित हो जाये तो सारा आर्थिक विकास और औद्योगिक प्रगति किस काम की।

जल जीव मात्र का जीवन है, जल में विद्यमान लवण खनिज, व जैविक तत्वों के बीच जब तक उचित संतुलन बना रहता है, तब तक जल स्वच्छ बना रहता है। किन्तु खनिज, लवण, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ अम्ल, संयंत्रों से निकले अवशिष्ट मल मूत्र जन्तु कूड़ा करकट आदि बाहरी तत्व आवश्यकता से अधिक जल में मिलकर उसके वास्तविक स्वरूप को नष्ट कर उसे दूषित व गन्दा कर देते है। जिसका मानव तथा अन्य जीवों पर घातक प्रभाव पड़ता है जल का इस प्रकार दूषित या गंदा होना ही जल प्रदूषण है। कागज, चीनी वनस्पति घी, शराब, पेट्रोलियम चमडा आदि के कारखानों से निकला व्यय पदार्थों का कचड़ा नदियों व जलाशयों में गिराया जाता है जो जल को प्रदूषित करता है मानव शरीर में ही 100 प्रकार के वायरस होते है, पोलियों, पीलिया, दश्त व कैंसर उत्पन्न करने वाले चायरस मानव मल के साथ बहते हुए नदियों के जल में पहुंच जाते है और नदियों के जल को प्रदूषित करके बीमारियां फैलाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के नीसीसिपी– मिसौरी नदी तथा यूरोप की राईन नदी विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियां है, इन नदियों में स्नान करना मौत को निमन्त्रण देना है। यही स्थिति हमारे देश की पवित्र गंगा की होने वाली है। पतितपावनी गंगा गंगोत्री से लेकर ऋषिकेश तक ए श्रेणी का जल है जो पीने योग्य है, ऋषिकेश से पटना तक बी श्रेणी का जल है जो केवल नहाने लायक है। पटना से आगे गंगा का जल इतना प्रदूषित है जिन तो पीने योग्य है, न नहाने योग्य है और न ही खेती योग्य है, जिस गंगा जल में स्नान करने से चर्मरोग ठीक हो जाते थे, जिस गंगा का जल बोतल में भरने पर भी छः माह तक सड़तानहीं

था, जिस गंगा के जलपान को अमृत पान कहा जाता था. सम्राट अशोक से लेकर सम्राट अकबर और जहांगीर तक जिसका गुणगान करते नहीं थकते थे, हिन्दु जिस गंगा को माँ मानकर पूजा करते हैं, यही गंगा माँ आज प्रदूषण के जानलेवा रोग से पीड़ित है करोड़ो अरबों रुपये खर्च करने के बाद भी गंगा की प्रदूषण की स्थिति में कोई सुधार नही हुआ, इधर जल को संयंत्रों द्वारा शुद्ध किया जाता है उधर नदियों उद्योगों का कचरा व शहरों का मल मूत्र गिरना जारी है, वाह रे औद्योगीकरण तेरा अभिशाप, पहले गन्दा करो फिर सफाई करो और करोड़ो रुपये पानी की तरह बहाओ। वायु प्रदूषण के अन्तर्गत सल्फरडाई आक्साईड गैस सबसे अधिक हानिकारक होती है। क्योंकि यह वायुमण्डल में जलवाष्प या वर्षा के जल के साथ क्रिया करके सल्फ्यूरिक अम्ल बनाती है जो तेजाबी वर्षा के रूप में फसलों तथा मानव को अत्यधिक हानि पहुंचाता है, इससे मानव को दमा, खांसी तथा फेफड़ों की बीमारियां अधिक होती है औद्योगिक संयंत्रों, वाहनों घरेलू चूल्हों तथा मानव के मुख से निकलने वाले सिगरेट के धुएं से कार्बन मोनोअक्साइड, कार्बन डाई आक्साई वायु में मिल जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होती है। इससे मानव को क्षय रोग, फेफड़ों का कैंसर तथा दमा आदि रोग बहुतायत से होते है। घरों व ईमारतों में इस्तेमाल होने वाला प्लास्टिक रंग रोगन, रसायन, दिवारों पर पुते हुए सिन्थेटिक डिस्टेम्प फर्नीचर के पेन्ट तथा रसायन भोजन, घर की हवा में सूक्ष्य प्रदूषण लगातार छोड़ते रहे है। वातानुकूलित कमरे तथा फीज से रेजेन नामक रेडियो सक्रिय गैस सूक्ष्म रूप से निकलती है जो धूल कड़ों में चिपककर हमारे फेफड़ों में जमा होकर कैंसर को जन्म देती है।

मानव शरीर के विभिन्न अंग जिस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर रहते है, उसी प्रकार पर्यावरण के विभिन्न अंग जैसे जीव जन्तु पेड़ पौधे आदि एक दूसरे पर निर्भर रहते है। इसकी एक–एक कडी के संतुलित गुंथन से यह बहुरंगी प्रकृतिक बनी है, उदाहरण के रूप में हम कह सकते है कि छोड़ो मारिशस के उस विलुप्त पक्षी का नाम है, जिससे मांशाहारी यूरोपीय लोगों ने शिकार करके नष्ट कर दिया, इसकी नस्ल समाप्त हो जाने के बाद धीरे–धीरे वहाँ के केल्वारिया मेजर नाम का वृक्ष उगना बन्द हो गया इसका कारण था कि इस वृक्ष के बीज के उपर छिलका अत्यधिक कडा होने के कारण यह उग नहीं पाता था, मगर डोडो पक्षी इस वृक्ष के बीज खाकर पेट में विद्यमान अम्ल की सहायता से यह बीज बाहर आकर मिट्टी च नमी के संयोग से अंकुरित होता था. लाल क्लोवर एक प्रोटीन युक्त पौधा होता है जिसे खाकर ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया के मवेशी अत्यधिक स्वस्थ रहते है। जिनका मांश अंग्रेजो का मुख्य भोजन है किन्तु यह पौधा तभी उगता है, जब कि उसके निकट मधुमक्खियों का छत्ता लगाया जाये, कारण लाल क्लोवर फुल में पराग अधिक अन्दर होने के कारण इसका परागण केवल मधुमक्खियां की कर सकती है। आज मनुष्य ही पर्यावरण की संतुलन को सर्वाधिक क्षति पहुंचा रहा है। कृषि और उद्योग के विकास की अन्धी दौड़ के कारण वनों के सफाये के साथ ही जीव जन्तुओं की अनेक जातियां भी विलुप्त होती जा रही है, खेद की बात है कि पर्यावरण के पांच अंगो (पृथ्वी जल अग्नि, वायु एवं वनस्पति) में से जल तथा वायु बुरी तरीके से प्रदूषित हो चुके है। वनस्पति तेजी से नष्ट होकर पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ रही है, बनों को मित्र, वृक्षों को पूज्य और नदियों को मां मानना हमारी संस्कृति है. किन्तु हमें अफसोस है कि औद्योगिक प्रगति की दौड़ में हम इस कदर अन्धे हो गये है कि वनों की वृक्ष रूपी वस्त्र उतार उतार कर (काट–काट कर हमने धरती को नंगा कर दिया है, जल और वायु का संतुलित उपयोग करने के बजाए उन्हें प्रदूषित करके मानो हमने प्रकृति मां के इन बेटों के साथ जघन अपराध ही कर डाला। भारतीय संस्कृति में कहा है कि प्रकृति और मानव के बीच अटूट रिश्ता है, और दोनों एक दूसरे की प्रभावित करते है, तथा दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते है। पर्यावरण के तत्वों का प्रभाव मानव के भोजन, मस्त्र, मकान, पेय जल तथा व्यवसायों आदि पर पड़ता है, मानव के शरीर की रचना प्रकृति के पांच तत्वों (पृथ्वी, जल वायु, अग्नि, वनस्पति) से मिलकर हुई

है। इन पांचों तत्वों के बल पर ही हम जीते है। और जब मरते है तो हमारा यह शरीर पुनः इन तत्वों में विलीन हो जाता है, क्योंकि मरने पर यह शरीर कम में दफन होता है तो पृथ्वी में मिल जाता है, और दाह संस्कार होने पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति में मिल जाता है। इस प्रकार प्रकृति से ही हमारा जन्म होता है और मरने पर प्रकृति ही हमें सदा के लिए अपने गोद में सुला लेती है इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रकृति हमारी मा है जो सभी कुछ अपने बच्चे को अर्पण कर देती है।

किसी प्रदेश विशेष में मानव जीवन आज कैसा है? वह वहाँ के पर्यावरण का प्रतिफल होता है। यही कारण है कि धरातल पर विभिन्न प्रकार के मानव, मानव समुदाय, उनका रहन–सहन एवं विकास देखने को मिलते हैं क्योंकि सर्वत्र धरातल पर वातावरण की शक्तियाँ समान नहीं है। यथा टुण्ड्रा प्रदेश के निवासियों के विचार और जीवन–यापन, भूमध्य रेखीय (उष्ण कटिबन्धीय) निवासियों के विचार और जीवन प्रणाली से भिन्न होते हैं। मध्येशिया के निवासी खिरगीज पशुओं के साथ घुमक्कड़ (खानाबदोश) जीवन व्यतीत करते हैं जबकि गंगा–सिन्धु मैदान के निवासी पशुओं के सहयोग से कृषि करके स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं। घुमक्कड़ जातियाँ स्वभावतः वीर एवं योद्धा होती है लेकिन कृषक बहुधा दयालु एवं उनकी तुलना में कमजोर होते हैं। भारत में राजस्थान निवासी बहुधा योद्धा एंव बलवान होते हैं जबकि चावल प्रमुख प्रदेश के निवासी प्रायः मोटे कमजोर एवं भीरू प्रकृति के होते हैं। कश्मीर के निवासी गोरे एवं तमिलनाडु के निवासी श्यामवर्ण के होते हैं। भारत में उत्तरी मैदान के पूर्वी भाग में स्थित मकान अपने बनावट, आकार–प्रकार, प्रयुक्त सामग्री और छतों के प्रकार में देश के अन्य किसी भी भाग के मकानों से भिन्न हैं। इन विभिन्नताओं को मूर्त रूप देने में एक ऐसी शक्ति है जो प्रदेश विशेष के निवासियों को एक निश्चित प्रकार की सभ्यता विकसित करने को आदेश देती रहती है। वही आदेश देने वाली शक्ति ष्प्राकृतिक वातावरणष् या भौगोलिक परिवेश है जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्नता पायी जाती है।

पर्यावरण का प्रभाव मानव के मात्र प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही नहीं अपितु विचार, धर्म कला, साहित, दर्शन आदि अत्युच्च विचारों पर भी पड़ा है। भारत में मानसून पर पूरा आर्थिक ढाँचा आधारित होने के कारण ही भारतीय जलदेवता (इन्द्र, वरुण) की पूजा करते हैं। मछली पर अधिक आश्रित होने के कारण, जापनी श्मत्स्य देवता की पूजा करते है। ठण्डे प्रदेशों में अग्नि की महिमा अपार मानी जाती है क्योंकि अग्नि से ताप (शक्ति) प्राप्त किया जाता है जहाँ सूर्य अपने प्रचण्ड ताप से लोगों को परेशान करता रहता है, वहाँ उसके महानता की पूजा होती है, जैसे– दक्षिणी अमेरिका के एण्डीज पर्वतीय प्रदेशों में। साहित्य पर भी पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। संस्कृत के महान कवि कालीदास की रचनाओं में पर्वतों का वर्णन अधिक है। भारत में गंगा नदी पर साहित्य की कभी नहीं है) भारतीय कवि यदि धन–धान्य पूर्ण वनस्थली में रमते हैं. ब्रज के करील की कुन्जों, यमुना के तट पर घने झुरमुटों की शीतल छावों एवं वृन्दावन की अमराइयों से प्रेरणा पाते हैं तो अरबी शायर निर्जन, स्वच्छन्द आकाश में स्थित यन्त्र–तन्त्र सिर उठाये छाया विहीन ताड एवं खजूर के वृक्षों में उड़ाने भरते है। त्यौहार एवं पर्व भी पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। दीपावली, होली, दशहरा आदि भारतीय हिन्दुओं के त्यौहार निश्चित महीने में केवल इसीलिये रखे गये हैं। इन त्योहारों का अस्तित्व भारतवासियों की कृषि उपजों से सम्बन्धित है। कठोर शीत से मुक्ति के पश्चात् बसन्तोत्सव का त्यौहार मनाया जाता है। गाने और स्थानीय क्षेत्रीय गीतों में भी प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। चइता बैशाखी, मल्हार कजली, फगुवा के अतिरिक्त मध्य गंगा घाटी में प्रचलित चौमासा एवं बारहमासा तो स्वदेशी महीनों के वर्णन से पर्यावरण का ही गुणगान करते हैं। पर्यावरण मानव के विचारों और उद्देश्यों को भी प्रभावित करता है। शिकारी। स्वभाव से हिंसक होता है। उसका उद्देश्य एवं धर्म हिंसा करना होता है। चरवाहा प्रकृति से ही पालक होता है। उसका उद्देश्य भी पोषण युक्त होता है। सम्पन्न क्षेत्र का कृषक शान्ति पूजक

होता है। पर्यावरण की अनुकूलता के कारण ही भारतीयों का सिद्धान्त आदि काल से ही श्वसुधैव कुटुम्बकम् रहा है। सत्यमेव जयतेश उसके रोम–रोम की आवाज है। जीवों पर दया करना दूसरों को कष्ट न पहुँचाना, अतिथि सत्कार और कृतज्ञ होना भारतीय अपना कर्तव्य समझते हैं। ईश्वर में विश्वास एवं आपत्तिकाल में उसकी सहायता । की आशा सभी भारतीयों में पूर्ण रूपेण पायी जाती है।

आदि काल से वर्तमान युग तक पृथ्वी धरातल पर विभिन्न क्षेत्रों में मानव समुदाय का उत्तरोत्तर बसाव एवं विकास कई प्रकार के तथ्यों से प्रभावित होकर अस्तित्व में आया जिस पर पर्यावरण की अमिटछाप रही है। प्रदेश विशेष के मनुष्यों का जीवन कैसा है वह भविष्य में कैसा हो सकता है आदि का प्रतिबिम्ब पर्यावरण रूपी दर्पण में एक निश्चित सीमा तक देखा जा सकता है, क्योंकि पर्यावरण ही मानव जीवन को सजाती, संवारती एवं निर्धारित करती है। यही कारण है कि मानव को भूतल की उपज या पर्यावरण की सन्तान कहा जाता है। वास्तव में मानव एक मोम का पुतला है और पर्यावरण के निर्देशों का इतना बड़ा पुजारी है कि अपनी जीवन प्रणाली को वातावरण के अनुसार ही ढाल लेता है। वह जिस मिट्टीपर जन्म पाता है, जिसे जोतता एवं उपज खाता है, जहाँ के जीवों एवं वनस्पतियों को मित्र एवं शत्रु बनाताहै. जहाँ की जलवायु का सेवन करता है, उनके सम्मिलित प्रभावों का उल्लघन करने में असमर्थ हो जाता है। यही कारण है कि मानव अपनी परिस्थितियों (पर्यावरण) का प्राणी माना जाता है। मानव धरातल का मात्र बच्चा ही नहीं है. उसकी धूल का मात्र कण ही नहीं है बल्कि धरातल ने उसका पालन–पोषण किया है. उसको खिला–पिलाकर जीवित रखा है. उसको क्रियाशील एवं विचारशील बनाया है, उसमें हाव–भाव उत्पन्न किया है, कतिपय कठिनाईयाँ उपस्थित कर शारीरिक एवं मानसिक विकास का अवसर प्रदान किया है और जटिल समस्याओं के समाधान निदान को भी उसके कर्णकुहरों में फुसफुसाया है। इस प्रकार भूतल (पर्यावरण) मानव के हड्डियों, स्नायुओं, मस्तिष्क, आत्मा एवं रोम–रोम में व्याप्त रहता है।

सन्दर्भ सूची : –

1 बंसल डॉ. सुरेश चन्द्र 2017–18, नगरीय भूगोल मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ पृष्ठ संख्या 156,57.58.63।
2 तिवारी श्रीमती शारदा 2007, नगरीय समाजशास्त्र अर्जुन पब्लिशिग हाऊस पृष्ठ संख्या 182,185।
3 जैन, शशी 2012 नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर पृष्ठ संख्या 150.151।
4 खत्री,रीया भारत में नगरीय समाजशास्त्र 2018 कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 260 263।
5. तिवारी,आर.सी. अधिवास भूगोल 2017 प्रवालिका पब्लिकेशन्स इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 319।
6. शेखावत, डॉ० प्रदीप सिंह नगर नियोजन एवं विकास 2019 अखण्ड पब्लिशिंग दिल्ली पृष्ठ संख्य 152, 153।
7 सिंह, डॉ० वी० एन० नगरीय समाजशास्त्र 2011 विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली पृष्ठ संख्या 173,175
8 पाटिल डॉ० अशोक डी. ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र 2013 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या 216 217।
9. सैनी डॉ० रामेश्वर लाल नगरीय समाजशास्त्र 2003 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर पृष्ठ संख्या 77।
10 शर्मा, डॉ० राजेन्द्र कुमार नगरीय समाजशास्त्र 1996 एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृष्ठ संख्या 145।
11 अग्रवाल, डॉ० जी के ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र 2014–15 एस० बी० पी० डी० पब्लिशिग हाऊस पृष्ठ संख्या 213।
12 खत्री, हरीश कुमार नगरीय भूगोल 2018 कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 277।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में रोजगार उन्मुख प्राचीन भारतीय शिक्षा की पुनःकल्पना

डॉ० सुनीता गुप्ता
प्राचार्य
डॉ० एस० राधाकृष्णन् शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
सुकरीगढ़ा, लारी, रामगढ़

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्त्वि को विकसित करने की एक प्रक्रिया है और यही प्रक्रिया उसे समाज में एक व्यस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा में आचरण और तकनीकी दक्षता, शिक्षण और विद्या आदि समाविष्ट है। एक पीढ़ी द्वारा उपने निचले पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास ही शिक्षा है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में काम करती है, जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। अतः शिक्षा का मुख्य प्रयोजन और उद्देश्य व्यक्ति में अंतर्निहित शक्तियों अथवा योग्यता को उत्पन्न करके उसे सभी प्रकार से योग्य बनाना है। परन्तु भारत में प्रचलित आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को रोजगारपरक नहीं बनाया जा सका है। आमतौर पर स्कूल, कॉलेजों की वर्तमान शिक्षा रोजगार पाने में सहायक नहीं होती जबकि हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में प्रत्येक बालक को किसी हस्तउद्योग, हस्तकला या घरेलू व्यवसाय से बचपन से ही जोड़ दिया जाता था तथा वह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को हस्तांतरित की जाती थी परिणाम यह होता था कि वयस्क होने के पश्चात् किसी को भी रोजगार के लिए भटकना नहीं पड़ता था। महात्मा गांधी ने भी बेसिक शिक्षा योजना में प्रत्येक बच्चे को कम से कम एक हस्तकला या उद्योग की शिक्षा देने की बात कही थी।

आधुनिक समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों में कुछ रोजगारोन्मुख विषय पढ़ाए जाते हैं, इनके बल पर रोजगार के कुछ अवसर उपलब्ध हो जाते हैं। साइंस के विद्यार्थी इंजीनियरिंग और मेडिकल आदि के क्षेत्रों में अपनी शिक्षा को नया रूप देकर रोजगार के अवसर पा जाते हैं और कई तरह के तकनीकी शिक्षा जैस पॉलिटेक्निक, आई. टी. आई. जैसी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रहीं हैं। इसे प्राप्त कर व्यक्ति स्व – रोजगार योजना भी चला सकता है और विभिन्न प्रतिष्ठानों में अच्छे रोजगार के अवसर भी प्राप्त कर सकता है। परंतु भारत की विशाल जनसंख्या में से कुछ प्रतिशत लोग ही इस प्रकार से रोजगार प्राप्त कर पाते हैं, अधिकांश लोग सिर्फ डिग्री लेकर बेरोजगार घूम रहे हैं। घिसी पिटी शिक्षा प्रणाली देश काल की आवश्यकता को पूर्ण कर पाने में समर्थ नहीं रह गई है। अतः आवश्यकता है शिक्षा और रोजगार को एक साथ जोड़ कर एक ऐसी शिक्षा पद्धति का निर्माण हो जिसमें हर एक व्यक्ति शिक्षण – संस्थानों से निकलकर भीड़ बनने के स्थान पर अपनी योग्यता से राष्ट्र निर्माण में सहायक बन सकें। इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए तथा हमारी प्राचीन रोजगार उन्मुख शिक्षा व्यवस्था को आधार बनाते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को 29 जुलाई 2020 से पूरे भारत में लागू करते हुए शिक्षा को रोजगारपरक बनाने का प्रावधान लाया गया है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक संबोधन में कहा था – ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति गरीबी से लड़ने और 21वीं सदी की जरूरतों को पूरा करने का एक माध्यम हैं।'' 34 वर्षों के बाद जुलाई 2020 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य देश की बढ़ती विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करना है। नई शिक्षा नीति में 21वीं सदी की शिक्षा की आवश्यकताओं के अनुरूप नई व्यवस्था के लिये इसके विनियमन और संचालन सहित शिक्षा संरचना के सभी पहलुओं में संशोधन और सुधान का प्रस्ताव है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सकें कि आज के युवा स्वंय को उन कौशलों से युक्त कर सकें जो तेजी से बदलती अर्थव्यवस्था में उन्हें रोजगार योग्य बनाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के स्वीकृत प्रारूप के परिचय पाठ के पंक्ति 4 में लिखा है रोजगार और वैश्विक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चों को जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखे ही और साथ ही वे सतत् सीखते रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषयवस्तु को पढ़ाने की जगह जोर इस बात पर अधिक होने की जरूरत है कि बच्चे समस्या समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखे, विविध विषयों के अंतसंबंधों को देख पायें, कुछ नया सोच पायें और बदलती परिस्थियों या क्षेत्रों में उपयोग में ला पायें। आवश्यकता है कि शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो। जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित हो, लचीली हो और समग्रता और समन्वित रूप से देखने – समझने में सक्षम बनाने वाली और अवश्य ही रूचिपूर्ण हो। शिक्षा, शिक्षार्थियों के जीवन कें सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास कर इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और स्वास्थ्य, भाषाओं आदि का अवश्य की समावेश किया जाये। शिक्षा से चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करूण और संवेदनशीलता विकसित करनी चाहिए और साथ ही रोजगार के लिए सक्षम बनाना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 4.9 में शिक्षा को रोजगारपरक बनाने हेतु कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से छात्रों को सशक्त बनाना है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों को विशेष रूप से माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन करने के लिए अधिक लचीलापन और विषयों के चुनाव के विकल्प दिए जाऐंगें – इनमें शारीरिक शिक्षा, कला और शिल्प तथा व्यवसायिक विषय भी शामिल होंगें ताकि विद्यार्थी अध्ययन और जीवन की योजना के अपने रास्ते तैयार करने के लिए स्वतंत्र हो सके। विज्ञान, मानविकी और गणित के अलावा भौतिक शिक्षा, कला और शिल्प और व्यवसायिक कौशल जैसे विषयों को यह विचार करते हुए उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर विद्यार्थियों के लिए क्या रूचिपूर्ण और सुरक्षित है और क्या नहीं, स्कूल के पूरे पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। राज्यों को कला, विज्ञान, मानविकी, भाषा, खेल और व्यवसायिक विषयों सहित व्यापक श्रेणी के विषयों को अधिक से अधिक लचीलेपन और आनन्द के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अभिनय तरीकों पर ध्यान देने का उल्लेख किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 16 में व्यवसायिक शिक्षा का नवीन आकलन में यह उल्लेख किया गया है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012 – 2017) के अनुमान के अनुसार 19–24 आयुवर्ग के भारतीय कार्यबल के अत्यंत ही कम प्रतिशत (5% से कम) लोगों ने औपचारिक व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त की, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में 52% जर्मनी में 75% और दक्षिण कोरिया में अत्यंत अधिक 96% पर यह संख्या काफी अधिक है। यह संख्या भारत में व्यवसायिक शिक्षा के प्रसार में तेजी लाने की आवश्यकता को पूरी स्पष्टता से रेखांकित करता है। व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की कम संख्या होने के पीछे एक प्रमुख कारण व्यवसायिक विषयों के साथ 11वीं, 12वीं पास करने वाले विद्यार्थियों के पास अक्सर उच्चतर शिक्षा में अपने चुने हुए व्यवसाय क्षेत्र में आगे बढ़ने का स्पष्ट मार्ग नहीं होता है तथा सामान्य उच्चतर शिक्षा के लिए प्रवेश मानदंड भी व्यवसायिक शिक्षा की योग्यता वाले विद्यार्थियों के लिए अवसरों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रारूप नहीं तैयार किए गए थे। इसने व्यवसायिक शिक्षा के विषयों से संबंधित विद्यार्थियों के लिए शिक्षा में सीधे – सीधे आगे बढ़ने के रास्तों को पूरी तरह से बन्द कर दिया है। व्यवसायिक शिक्षा को मुख्यधारा की शिक्षा से कम महत्व की शिक्षा माना जाता है। नयी शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य व्यवसायिक शिक्षा से जुड़ी सामाजिक पदानुक्रम की स्थिति को दूर करना है और इसके लिए आवश्यक है कि समस्त शिक्षण संस्थान जैसे – विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय चरणबद्ध तरीके से व्यवसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों को मुख्यधारा की शिक्षा में एकीकृत करें, और इसकी शुरूआत उच्चतर प्राथमिक, माध्यमिक कक्षाओं से होते हुए उच्चतर शिक्षा तक जाए। इस तरह व्यवसायिक शिक्षा को एकीकृत करना यह सुनिश्चित करेगा कि प्रत्येक बच्चा

कम से कम एक व्यवसाय से जुड़े कौशलों को सीखे परिणामस्वरूप प्रत्येक बच्चा श्रम की महत्ता और भारतीय कलाओं और कारीगरी सहित अन्य विभिन्न व्यवसायों के महत्व से परिचित होगा जिसके माध्यम से देश की अगली पीढ़ी को रोजगारउन्मुख बनाना है।

योजना यह है कि वर्ष 2025 तक स्कूल और उच्चतर शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम से कम 50% विद्यार्थियों को व्यवसायिक शिक्षा का अनुभव प्रदान किया जाएगा जिसके लिए लक्ष्य और समय सीमा के साथ एक स्पष्ट कार्य योजना विकसित की जाएगी। अगले दशक में चरणबद्ध तरीके से सभी माध्यमिक स्कूलों के शैक्षणिक विषयों में व्यवसायिक शिक्षा को एकीकृत किया जाएगा इसके लिए माध्यमिक विद्यालय, आई.टी.आई., पॉलिटेक्निक और स्थानीय उद्योगों आदि से संपर्क और सहयोग करेंगें। स्कूलों में हब केन्द्र एवं एपोक मॉडल में कौशल प्रयोगशालाएं भी स्थापित और सृजित की जाएगी। उच्चतर शिक्षण संस्थान स्वयं ही या उद्योगों और गैर सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी में व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करेंगें। उच्चतर शिक्षण संस्थानों को सॉफ्ट स्किल्स सहित विभिन्न कौशलों में सीमित अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स करने की भी अनुमति होगी। 'लोकविद्या' अर्थात् भारत में विकसित महत्वपूर्ण व्यवसायिक ज्ञान से जुड़े विषयों को व्यवसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों में एकीकरण के माध्यम से छात्रों के लिए सुलभ बनाया जाएगा। अगले दशक में व्यवसायिक शिक्षा को चरणबद्ध तरीके से सभी स्कूल और उच्चतर शिक्षा संस्थानों में एकीकृत किया जाएगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय इस पहल की देख रेख के लिए उद्योगों के सहयोग से, व्यवसायिक शिक्षा के विशेषज्ञों और व्यवसायिक मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर एक राष्ट्रीय समिति 'नेशनल कमेटी फॉर द इंटीग्रेशन ऑफ वोकेशनल एजुकेशन (एन.सी.आई.वी.ई.) का गठन करेगा। NCIVE द्वारा स्थापित तंत्र के माध्यम से उच्च संस्थानों को साझा करना है जिससे व्यवसायिक शिक्षा की पहुँच को विस्तार देने में सहायता मिल सके। उद्योगों के साथ साझेदारी के तहत उच्चतर शिक्षा संस्थानों में इन्क्यूबेशन केन्द्र स्थापित किए जाएंगें। राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क (NSQF) को प्रत्येक विषय व्यवसाय/रोजगार के लिए अधिक विस्तारपूर्वक निर्मित किया जाएगा। इसके अलावा भारतीय मानकों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा बनाए व्यवसायों के अंतर्राष्ट्रीय मानक वर्गीकरण के साथ जोड़ा जाएगा। यह फ्रेमवर्क के लिए आधार प्रदान करेगा। इसके माध्यम से ड्रॉपआउट हो चुके बच्चों के व्यवहारिक अनुभव को फ्रेमवर्क के प्रासंगिक स्तर के साथ जोड़कर उन्हें पुनः औपचारिक प्रणाली से जोड़ा जाएगा। क्रेडिट आधारित यह फ्रेमवर्क, छात्रों को सामान्य शिक्षा से व्यवसायिक शिक्षा तक जाने को सुगम बनाएगा। इस प्रकार यह शिक्षा नीति व्यवसायिक शिक्षा के फ्रेमवर्क में छात्रों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करके रोजगार उन्मुख भारतीय शिक्षा की पुनःकल्पना प्रस्तुत करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार व्यवसायिक शिक्षा के मुख्य बिन्दुः

- अगले दशक में व्यवसायिक शिक्षा को चरणबद्ध तरीके से सभी स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में एकीकृत किया जाएगा। प्रत्येक छात्र को कक्षा 6 से कम्प्यूटर कोडिंग और व्यवसायिक अध्ययन के साथ एक नया व्यवसायिक पाठ्यक्रम शुरू किया जाएगा।
- उच्च शिक्षा संस्थान या तो स्वंय या उद्योग और गैर–सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी में व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करेंगें।
- 2025 तक, विद्यालय और उच्च शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम से कम 50% शिक्षार्थियों को व्यवसायिक शिक्षा का अनुभव होगा, जिसके लिए लक्ष्य और समय सीमा के साथ एक स्पष्ट कार्य योजना विकसित की जाएगी।
- कौशल अंतराल विश्लेषण और स्थानीय अवसरों के मानचित्रण के आधार पर व्यवसायिक शिक्षा के लिए फोकस क्षेत्रों का चयन किया जाएगा।

- उच्च शिक्षा संस्थानों को सॉफ्ट स्किल सहित विभिन्न कौशलों में अल्पकालिक प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम संचालित करने की अनुमति दी जाएगी।
- भारत में विकसित व्यवसायिक ज्ञान – 'लोक विद्या' व्यवसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों में एकीकरण के माध्यम से छात्रों के लिए सुलभ बनाया जाएगा।
- 2013 में शुरू की गई बैचलर ऑफ वोकेशन (B.Voc.) डिग्री मौजूद रहेगी, लेकिन व्यवसायिक पाठ्यक्रम 4 साल के बहु – विषयक स्नातक कार्यक्रमों सहित अन्य सभी स्नातक डिग्री कार्यक्रमों में नामांकित छात्रों के लिए उपलब्ध होंगें। शिक्षा मंत्रालय व्यवसायिक शिक्षा के एकीकरण के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन करेगा, जिसमें व्यवसायिक शिक्षा के विशेषज्ञ और उद्योग से सहयोग से मंत्रालयों के प्रतिनिधि शामिल होंगें, जो इस प्रयास की देखरेख करेंगें।
- प्रत्येक विद्यार्थी को कक्षा 6 से 8 के दौरान राज्यों और स्थानीय समुदायों द्वारा तय किए गए स्थानीय कुशल आवश्यकताओं द्वारा एक आनंददायी कोर्स कराया जाएगा जिसमें व्यवसायिक शिल्प जैसे कि बढ़ईगीरी, बिजली का काम, धातु का काम, बागवानी, मिट्टी के बर्तन निर्माण आदि कामों को अपने हाथों से करने का अनुभव प्रदान करेगा। कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों के लिए एक अभ्यास आधारित पाठ्यक्रम को NCFSE 2020-21 को तैयार करते हुए NCERT द्वारा उचित रूप से डिजाइन किया जाएगा। कक्षा 6 से 8 तक पढ़ाई के दौरान विद्यार्थी 10 दिन तक स्थानीय व्यवसायिक विशेषज्ञों जैसे बढ़ई, माली, कुम्हार, फलाकार आदि के साथ प्रशिक्षु के रूप में काम करेंगें।
- छुट्टियों के दौरान भी कक्षा 6 से 12 तक के बच्चों को विभिन्न व्यवसायिक विषय समझने के लिए अवसर उपलब्ध कराये जाएंगें।
- ऑनलाइन माध्यम से भी विभिन्न व्यवसायिक कोर्स उपलब्ध कराये जा सकते हैं।
- कक्षा 6 से ही बच्चों को विभिन्न व्यवसायों को इन्टर्नशिप के माध्यम से सिखाया जाएगा तथा कम्प्यूटर कोडिंग सहित विभिन्न ज्ञानों के माध्यम से छात्रों में व्यवसायिक रूचि और ज्ञान उपलब्ध कराया जाएगा जिससे छात्र आगे चलकर अपने रूचि के व्यवसायिक शिक्षा को चुनने में मद्द मिले और भविष्य में उसे रोजगार के लिए इधर उधर भटकना न पड़े अर्थात् अब जो शिक्षा दिया जाय वह बच्चों के रूचि और प्रतिभा को निखारते हुए रोजगारपरक और रोजगारउन्मुख बन सकें।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेन्द्र प्रधान ने कहा है कि नई शिक्षा नीति में रोजगारोन्मुख, उद्यमिता उन्मुख या क्रेडिट फ्रेमवर्क आधारित शैक्षिक पाठ्यक्रमों को प्र्याप्त लचीला बनाया गया है। आई.आई.टी. मद्रास में इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम में चार साल की अवधि के बैचलर ऑफ साइंस पाठ्यक्रम की शुरूआत करते हुए शिक्षामंत्री श्री धर्मेन्द प्रधान ने कहा कि भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शैक्षिक कार्यक्रमों में कई स्तर पर प्रवेश और निकास की सुविधा प्रदान की गई है। शिक्षामंत्री ने कहा कि बी०एस० कार्यक्रम का उद्देश्य देश में इलेक्ट्रॉनिक्स और एम्बेडेड विनिर्माण क्षेत्र में कुशल स्नातकों की बढ़ती मांग को पूरा करना है। उन्होनें कहा कि कार्यक्रम में छात्र बुनियादी स्तर का प्रमाणपत्र, डिप्लोमा या बी०एस० डिग्री प्राप्त कर सकते हैं। इसमें स्नातक करने वाले विद्यार्थियों को आटोमोटिक सेमीकंडक्टर और रक्षा जैसे उद्योगों में रोजगार के अवसर मिलेंगें। बैचलर ऑफ साइंस कार्यक्रम के द्वारा देश के इलेक्ट्रानिक्स निर्माण और डिजाइन तैयार करने का एक वैश्विक केन्द्र बनाने का उद्देश्य है। शिक्षा विभाग के अधिकारियों के अनुसार

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक शिक्षा की शुरूआत करने का उद्देश्य छात्र – छात्राओं में कौशल एवं दक्षता का विकास कर उन्हें रोजगारोन्मुख बनाना है। साथ ही विभिन्न आर्थिक एवं उत्पादक क्षेत्र की गतिविधियों के लिए प्रशिक्षित कर कौशलयुक्त कर्मी उपलब्ध कराना है।

भारत जैसे विकासशील देश में शिक्षा और रोजगार योग्यता के बीच संबंध महत्वपूर्ण है, प्रति वर्ष हजारों विद्यार्थी स्नातक होकर निकलते है लेकिन उन्हें अपने कौशल से मेल खाने वाला रोजगार पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, यहां तक की इंजीनियरिंग स्नातकों के साथ भी ऐसा ही है, क्योंकि उनके पास आवश्यक कौशल न होने के कारण उद्योग जगत उनमें से एक बड़े वर्ग को रोजगार के योग्य नहीं समझता है, इसलिए उन्हें उत्पादक बनाने के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। भारतीय उद्योग जगत के दिग्गजों ने बार – बार उद्योग अकादमी अंतर की ओर इशारा किया है क्योंकि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को जो पढ़ाया जाता रहा है, वह उद्योग की जरूरत के अनुरूप नहीं होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस दृष्टि से परिवर्तनकारी साबित हो सकती है क्योंकि इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यापक बदलाव लाना है, जो भारत की अगली पीढ़ी को न केवल नौकरी के योग्य बनाने में मद्द कर सकें बल्कि उन्हें नौकरी देने वाला भी बना सकें और देश के कार्यबल के लाभ के सही महत्व का अनुभव करा सकें, बल्कि उन्हें नौकरी देने वाला और उच्च शिक्षा दोनों के लिए एक व्यापक दृष्टि और व्यापक ढ़ांचा प्रदान करती है चूँकि शिक्षा एक समवर्ती सूची का विषय है, इसलिए राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों की सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, यदि इस नीति को प्रभावी ढंग से लागू किया गया तो यह भारत के कार्यबल के भविष्य को नया रूप देने में सहायक हो सकती है और नौकरी चाहने वालों की अगली पीढ़ी को अधिक रोजगार योग्य बनाने में मद्द कर सकती है। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सभी प्रावधान रोजगारउन्मुख प्राचीन भारतीय शिक्षा की पुनःकल्पना है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. चौबे; डॉ० सरयू प्रसाद : तुलनात्मक शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2, 2009 पृ० सं० 439 – 443, 331 – 342,
2. पाण्डेय; रामशक्ल : भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2 पृ०सं० 219 – 222, 266–296, 59–61
3. पाठक; पी० डी० : समसामयिक भारतीय शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2018
4. पृ०सं० 154, 267, 268
5- राय; अश्विनी : शिक्षा और रोजगार, अंतस के आरेख, wordpress.com
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार अध्याय 16,20 पृ० सं० 70, 71,81,82

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत व्यावसायिक शिक्षा की भूमिका

रंजु वंदना होरो
सहायक प्राध्यापक
डॉ. एस. राधाकृष्णन् शिक्षक
प्रशिक्षण महाविद्यालय, लारी, रामगढ।

प्रस्तावना

व्यावसायिक शिक्षा – व्यक्ति को किसी कार्य या व्यवसाय से सम्बंधित प्राविधिक प्रशिक्षण प्रदान करती है ताकि वह उस व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें। व्यावसायिक शिक्षा दो शब्दों के संयोग से निर्गत है जिसमें पहला शब्द व्यवसाय एवं दूसरा शब्द शिक्षा है। व्यवसाय शब्द जीविकोपार्जन के लिए अपनाये जाने वाले कारोबार के अर्थ में है तथा शिक्षा संबंधित व्यवसाय के प्रशिक्षण युक्त सीखने से है। इसका तात्पर्य – व्यवसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जो व्यवसाय संचालन संबंधी जानकारी प्रदान करती है।

सरल शब्दों में व्यावसायिक शिक्षा औपचारिक या गैर–औपचारिक कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षार्थियों में शिक्षा और कौशल के बारे में बात करती है। व्यावसायिक शिक्षा को शैक्षिक प्रशिक्षण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें ज्ञान कौशल, संरचनात्मक गतिविधियों, योग्यताओं, क्षमताओं और अन्य किसी संरचनात्मक अनुभवों को सम्मिलित किया जाता है जिसे औपचारिक माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा की परिभाषाएं

1. सामाजिक विज्ञान के विश्वकोश के अनुसार–

   ''व्यापक रूप में व्यावसायिक शिक्षा के अंतर्गत उस सब प्रकार की शिक्षा को सम्मिलित किया जा सकता है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है।

2. जॉन डी. वी. के अनुसार –

   ''व्यवसाय परक शिक्षा व्यक्तियों को एक विशिष्ट कार्य के योग्य बनाती है जिससे अपनी विशिष्ट सेवाओं के द्वारा समाज में विशिष्ट क्षमता का प्रदर्शन करता है।''

3. राबर्ट यूलिच के अनुसार–

   ''स्कूलों और महाविद्यालयों में अधिक से अधिक नवीन विषयों को समाविष्ट किया जा रहा है और प्राचीन मानवशास्त्रों तथा नवीन वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक विषयों में सामंजस्य स्थापित किया जा रहा है।''

   12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) के अनुमान के अनुसार 19–24 आयु वर्ग में आने वाले भारतीय कार्यबल के अत्यंत ही कम प्रतिशत (5प्रतिशत से कम) लोगों ने औपचारिक व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की। जबकि U.S.A 52% जर्मनी 75 % और दक्षिण कोरिया में सबसे अधिक 96% पर है।

व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की कम संख्या होने के पीछे एक प्रमुख कारण यह तथ्य है कि अतीत में व्यावसायिक शिक्षा मुख्य रूप से कक्षा 11–12 और कक्षा 8 और उससे ऊपर की कक्षा के ड्रॉपआउट पर केन्द्रित थी।

व्यावसायिक विषयों के साथ 11वीं – 12वीं पास करने वाले विद्यार्थियों के पास अकसर उच्चतर शिक्षा में अपने चुने हुए व्यवसाय क्षेत्र में आगे बढ़ने का स्पष्ट मार्ग नहीं होता है यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे अभी वर्ष 2013 में राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क की घोषणा के माध्यम से संबोधित करने का प्रयास किया गया है।

व्यावसायिक शिक्षा की विशेषता

1. यह छात्रों को समाज से जोडने और सामाजिक कार्यों में योगदान देने हेतु तैयार करती है।
2. यह छात्रों को जीविकोपार्जन बनाने हेतु उनमें व्यावसायिक कौशल की प्रवृति का विकास करती है।
3. इसके द्वारा छात्रों को विद्यालयों में क्रियाशील रखा जाता है और इससे उनका शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है।
4. इससे वह अपने सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों से परिचित हो जाते हैं।
5. व्यावसायिक शिक्षा द्वारा शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य

1. छात्रों को व्यवसायपरक बनाना जिससे वह समाज में सम्मानपूर्वक रहने योग्य बन सकें।
2. छात्रों में जीविकापार्जन करने की दक्षता का विकास करना जिससे वह अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों का भली–भांति निर्वहन कर सकें।
3. राष्ट्र का विकास करना और सामाजिक परिवर्तनों को सही दिशा प्रदान करना।
4. राष्ट्रीय आर्थिक संरचना को मजबूती प्रदान करना और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना।
5. शिक्षा के विस्तार को बढ़ावा देना।

व्यावसायिक शिक्षा भविष्य के लिए प्रशिक्षण

1. आज का युग विज्ञान व तकनीकी का युग है। प्रत्येक क्षेत्र में नवीन तकनीकी का विकास तेजी से हो रहा है।
2. शिक्षा चिकित्सा व्यापार उद्योग तथा कृषि आदि विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान की नवीन शाखाओं का विस्तार होगा और उन सभी के लिए विशिष्ट योग्यता सम्पन्न प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी।
3. सूचना तकनीकी ने आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है अतः इसका स्वंय लाभ उठाने व इससे समाज को लाभ पहुंचाने के लिए नागरिकों का इसमें प्रशिक्षित होना भी आवश्यक है।
4. विद्यार्थियों को भविष्य के लिए प्रशिक्षित करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करना आवश्यक है।
5. व्यावसायीकरण शिक्षा संस्थानों को भविष्य की मांग को ध्यान में रखते हुए नये आधुनिकतम व्यावसायिक कोर्स आरंभ करने चाहिए।
6. व्यावसायिक कौशल को अधिक उपयोगी बनाने के लिए स्थानीय सामुदायिक साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

7. युवाओं के शिक्षा के व्यावसायीकरण द्वारा भविष्य के लिए प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को परस्पर सहयोग से कार्य करना चाहिए।
8. आज सूचना सम्प्रेषण व तकनीकी युग है भविष्य में भी इस क्षेत्र में व्यापक सम्भावनाएं है अतः आवश्यक है कि शिक्षा के किसी भी प्रकार के व्यावसायीकरण के कार्यक्रम में सूचना सम्प्रेषण व तकनीकी को अवश्य स्थान दिया जाए।

नई शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 16 में निम्न अनुशंसा की गई है

- इस नीति का उद्देश्य व्यावसायिक शिक्षा से जुडी सामाजिक पदानुक्रम की स्थिति को दूर करना है और इसके लिए आवश्यक होगा कि समस्त शिक्षण संस्थान जैसे स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालय चरणबद्ध तरीके से व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों को मुख्यधारा की शिक्षा में एकीकृत करें। इस तरह से प्रत्येक बच्चा कम से कम एक व्यवसाय से जुडे कौशलों को सीखे और अन्य कई व्यवसायों से इस प्रकार परिचित हो। ऐसा करने से परिणामस्वरूप वो श्रम की महत्व और भारती कलाओं और कारीगरी सहित अन्य विभिन्न व्यवसायों के महत्व से परिचित होगा।
- वर्ष 2025 तक स्कूल और उच्चतर शिक्षा प्रणाली के माध्यम से कम से कम 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा का अनुभव प्रदान किया जाएगा जिसके लिए लक्ष्य और समयसीमा से साथ एक स्पष्ट कार्य योजना विकसित की जाएगी।
- अगले दशक में व्यावसायिक शिक्षा को चरणबद्ध तरीके से सभी स्कूल और उच्चतर शिक्षा संस्थानों में एकीकृत किया जाएगा। व्यावसायिक शिक्षा के फोकस एरिया का चुनाव कौशल अंतर विश्लेषण और स्थानीय अवसरों के आधार पर किया जाएगा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय इस पहल की देखरेख के लिए उद्योगों के सहयोग से व्यावसायिक शिक्षा के विशेषज्ञों और व्यावसायिक मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर एक राष्ट्रीय समिति नेशनल कमेटी फॉर द इंटीग्रेशन ऑफ वोकेशनल एजुकेशन का गठन करेगा।
- व्यावसायिक शिक्षा और अप्रेंटिसशिप प्रदान करने वाले विभिन्न मॉडलों को उच्चतर शिक्षा संस्थानों द्वारा भी प्रयोग में लाया जाएगा। उद्योगों के साथ साझेदारी के तहत उच्चतर शिक्षा संस्थानों में इन्वयूबेशन केन्द्र स्थापित किये जाएगें।
- राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क को प्रत्येक विषय व्यवसाय/रोजगार के लिए अधिक विस्तारपूर्वक निर्मित किया जाएगा। इसके अलावा भारतीय मानकों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा बनाए गए व्यवसायों के अंतर्राष्ट्रीय मानक वर्गीकरण के साथ जोड़ा जाएगा। यह फ्रेमवर्क पूर्ववर्ती शिक्षा की आवश्यकता के लिए आधार प्रदान करेगा।
- नवाचार के माध्यम से ऐसे मॉडल और प्रणालियों की खोज करें जो कि सफल हो और फिर उन्हें NCIV द्वारा स्थापित तंत्र के माध्यम से अन्य संस्थानों के साथ साझा करें ताकि व्यावसायिक शिक्षा की पहुंच को विस्तार देने में सहायता मिल सकें।

निष्कर्षः–

व्यावसायिक शिक्षा छात्रों को व्यवसाय चुनने में ही सहायक नहीं है अपितु इसके द्वारा छात्रों का सर्वांगीण विकास भी किया जाता है। आधुनिक युग में बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि शिक्षा को छात्रों के अनुरूप बनाया जाए जिससे वह अपने वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकें।

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत व्यावसायिक शिक्षा में शिक्षा छात्रों के व्यवसाय चुनने में ही सहायक नहीं है अपितु इसके द्वारा छात्रों का सर्वांगीण विकास भी किया जाता है। आधुनिक युग में बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि शिक्षा को छात्रों के अनुरूप बनाया जाए जिससे वह अपने वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकें।

यदि शिक्षा का व्यावसायीकरण करते समय उपरोक्त सभी बातों पर ध्यान दिया जाए तो विद्यार्थियों का आने वाले भविष्य उज्जवल हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. नई शिक्षा नीति 2020 : मानव संसाधन विकास मंत्रालय पृ० 70–72
2. पाठक, पी.डी. : भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, श्री विनो पुस्तक मंदिर
3. शर्मा : डॉ० आर० ए०/चतुर्वेदी, डॉ० शिखा : अध्यापक शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ
4. त्यागी, गुरसरनदास/पाठक, पी०डी० : आधुनिक भारत एवं शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5- www.google.com

THE IMPORTANCE OF FINE ARTS EDUCATION AN OVERVIEW

Mr. Sonam Sinha
Assistant Professor
Dr. S. Radhakrishnan Teachers'
Training College, Sukrigarha, Lari

ABSTRACT

Arts Education refers to education in the discipline of music, dance, theater and visual arts. Study in the arts is integral to our society. They are a part of the Cultural heritage of every human being. The arts are what makes us more human. most Complete as people. The ultimate aim of Education is all round development of an individual where are education helps to realise this Lefty aim of education. In the present content of authors focused on the research studies depicting the importance of art education in human personality development. What recommendations. given by national education policies and education. Committees for flowerishing Art education in India since independence. The paper also through light on present status of arts education in our Country and has given several suggestams for effective implementation in order to realise our Aims and objectives through art education/

Keyword :- Art education, dignity of labor motor skills Creativily, cognition, conation.

INTRODUCTION

Education is the arts is an integral part of the development of each human being. Those who have studied learning processes throughout the ages, beginning with Chats have emphasized the importance of the arts in the education process. Art education refers to education in the disciplines of music, dance, theater and visual arts. study in the arts is integral to our society. They are a pass of cultural heritage of every Indian. The arts are what makes us most human, most complete as people. culture is defined as the beliefs, customs and arts upheld in a group within society. Access to an arts education is crucial to a child's development as it develops the child earlier Notions of Culture. There are Iton ways that arts can help to understand what cullare is and the fundamental skills that come with an arts education

1. **Creativity :-**

   Though arts, children can express themselves in whichever way they want! In many art programmes, instructions may are their student to do different variations of a piece of art. that may already exis. This could be in the form of laking a painting from the Renaissance such as the Leonardo da Vinci's Mona lisa and painting. it in an expressionist manner, or taking a musical composition.

2. **Cultural Awareness :-**

   Experiences that take place through the arts boost Critical thinking and engages children to be careful and through about how to observe the world.

3. **Imbrond. Academic Performance :-**

The arts interent Creativity and with that Children learn an essential skill set for sucess.

4. **Motor skills.:-**

Arts in many forms in hands-on. There are lots of physical inations involved in a creative process such as holding a paint brush, scribbling with a crayon, and holding an instrument, which are all examples of a child developing their moter skills.

5. **Visual learning :-**

Through processes of drawing, reading a script, and looking at a sheet of music, children Can develepvisualspatial skills.

6. **Problem solving :-**

Creative and Critical thinking go hand in hand in hand in all forms of the arts. Both sides of the brain are engaged, which happens. When having to deal with a problem. Exercising both sides helps children understand that problems can have more than one solution and questions. might have more than one answer.

7. **Decisions Making :-**we've already learned that are strengthens problemsolving and critical thinking skills, which are both a part of decision making. As artists, children have the freedom to make any choices they want when it comes to their artwork

8. **Berseverance. :-**

Taking up and „mastering" anything will be a time. consuming process. Many people have the misconception that it can't be very hard to draw paint, act, play an instrument", etc. That Mis- Conception is tested when the concept of "pratice makes perfect" "Comes into the equation.

9. **Collaboration :** -

The arts heavily rely on collaboration to make great things happen. In groups such as theatre, chair, or band, Children are required to constantly work together. They are also required to share the responsibility for the work and compromise Certain elements to meet a common goal among all members.

10.**Accountability :-**

Accountability is a huge factor in the arts especially if the work is to be completed as a group. When a child is accountable for their own part or contribution within a group they learn about responsibility and dependency. if they choose to not to participate with a performance / project, they often realize how impactful it can be bo let others. clown and what it feels like to take ownership of such outcomes Perhaps the most fundamental element to education one should consider is the manner in which we perceive and make sense of the world in which we live. An effective education in the fine arts helps students to see what they look at hear what they listen to, and feet what they louch. Engagements in the fine arts helps students to stretch their minds beyond the boundaries of the printed text or the rules of what is provable. The arts free the mind from rigid certainty. Imagine

the benefits of seeking, finding and developing multiple Solution to the myriad of problem facing our society today!

II Recommedation of Education Committes and Education policies. Regarding Art education in India.

There is a lack of meditation and creativity. everywhere, especially in schools. The arts are missing from our lives and we are giving way to kidence.

Since Independence various fedlicies document of the government have mentioned art education as an area of immense importance for the overall development of students. If eve say in Benzimen Blooms classification for the development of Cognitive. Affective and esychomotor domains

Art education plays important rde. As early as 1952-53, thereper of then Education Commission emphasized the

"release J Creative. energy. among the studnets so that they may be able to appreciate cultural heritage and cultivate rich interest, which they Can pursue in their leisure and later in life. "This has been decided as one of the main functions of secondary education, which recommends that subjects as a art, craft, music, dance etc should be provided in the place of honor in the curriculum.

It was futher recommended that every high school Student should take one Craft, which is considered to be necessary at this age; every student should dende some time to work with the hands and attain a resonably high standard proficiency in one particular Craft so that if necessary they may support themselves by pursuing it.

The koltari commission report of 1964-66 emphasised that in an age which value discovery and invention education for creative expression acquires added significance. "Adequate facilities for to training of teacher in music and the visual arts in education improvises the educational process and lead to a decline of aesthetic tastes and values."

The National policy of education 1986 emphasized fastering among students an understanding of the diverse cultural and social systems of the people living different parts of the country as an important objective of school education. All the previous National Curriculum Framework. of 1975, 1988 and 2000 emphasized art education by defining its aims and objective in the school

It was not only India where this problem of art education exists. There is a worldwide phenomenon which was taken up by UNESCO in the year 2000 with an appeal by the Director General for prometion of art education and creativity at school levd as part of development of a culture of peace.

III STATUS OF TEACHING - LEARNING AND EVALUATION OF ART EDUCATION

There are several reason in for the present status of art education. An ongoing study of NCERT, an in depth study of Teaching - Learning pratices and evaluation procedure in Art education , observes that all children enjoy Creativity in their earlier stage of education but by the time they started losing interest in art education.

One of the main reason why art education has been a neglected area in the mayority of schools is placing too much emphasis on the Core subjects, which have a formalised procedure for

assessment throughout the year including tests and exams. Since the assessment of art education is not reftected in the marks secured by students. Neither the teacher nor students. And not even school authority take it seriously.

Another major problem is the lack of trained teachers for teaching art education subjects. Art education teaches who have undergone training in various visual and performing arts in art colleges for four to sin years have very little to do with art education in school, let alone methods of teaching art in schools. They are trained in their Own discipline but not as educator.

The teacher being the vehicles of children's education There is a real need for the teacher to understand Children's psychology to be aware of the pedagogy and teaching methodology for art education. Art, education is an activity based, subject, which does not require a text book and this makes the role of teacher all the more important. Key have to be more alert, innovative and creative than any other teacher.

IV SUGGESTIONS

Suggestions for improvements in the status of art Education

- An art education is an enjoyable learning process for free expression of children Ample opportunities should be provided for their creative expressions.
- More Awareness needs to be created regarding art education among different beneficiaries and stake holders.
- But education should be made compulsory up be secondary school certificate level.
- School and Colleges should provide time, space and resources for art education activities within and outside the schod. The authorities should view this seriously otherwise the recognition of school Colleges should be cancelled.
- Though Non-examination based process oriented evalution is going on in several states like Telengana.

  Telengana and Andhra pradesh. But strict implementation is not done. The teacher themselves not having proper Comprehension of continuous comprehensive evaluation Hence need base training should be given in assessment procedures.
- Though several handbooks designed as per National curriculum Framework -2005 pertaining 6 arts education still much to be done Teacher education and Orientation of differev levels-needs a drastic change.
- Trough subject like Art education, Yoga, physical and health education, work experiences introduced in the schools and also place in time table given. The recruitment of teachers not yet done. Hence Trained and specialized. teachers should take. arts education Classes from upper primary stage on wards.

V CONCLUSION :-

Art education should not be used by the schools merely as a showcase activity on different occasions such as annual function, inspection day etc. Art education should be applied in

activities such as arrangement of classrooms, galleries, halls, Corridors. etc and designing of schools diaries, cards, bags etc since this is an activity based experimental subjects, it gives scope for observation, imagination and visualization in the process of creativity. Every individual child has all types of emotion, which need be Come out of the child's inner self. thusaut education help them in this process. Hence responsbilility relies on stareholders to implenent the Art education effectively at grassroot level.

REFERENCE

1. National curriculamframwork for schools education 1975.
2. National policy of Education 1986.
3. Dr. Mohd. MuzaffarHussain khan, ShaikLiyakhath Ali (2016). “The improtace of fine arts in education” PP : 67-70
4. National curriculum framework for school education 1988
5. https://www.katyisd.org
6. https://ncert.nic.in
7. https://www.nios.ac.in
8. https://www.lawinsider.com
9. National curriculum framework for school education 2000.

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

कृषि के विकास में डिजिटल तकनीकी की भूमिका

कु0 मधुबाला
असि0प्रोफेसर, समाजशास्त्र
महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बहराइच
प्रोफेसर सूर्यभान रावत
समाजशास्त्र विभाग
किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय बहराइच उ0प्र0

हमारे देश की मूल अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है और ग्रामीण जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग कृषि ही मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाये हुए है। किसी भी देश या समाज की प्रगति का सूचक वहां के लोगों का व्यवसाय ही होता है। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में हिस्सेदारी होने के कारण इसके विकास और परिवर्तन पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है हालांकि पिछले पांच दशकों मे खेती में नित नये बदलाव लाये जा रहे है। जिस प्रकार से हरित क्रान्ति ने कृषि उत्पादन में वृद्धि की थी और खेती करने के तरीकों में व्यापक परिवर्तन लाया था या यूँ कहे उस समय कृषि क्षेत्र में क्रान्ति ला दी थी। इसी प्रकार से डिजिटल तकनीकी ने भी वर्तमान में कृषि क्षेत्र में खेती किसानी की दशा व्यापक रूप से परिवर्तित कर दी है। देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए इस अनुपात में उत्पादन क्षमता को बढ़ाने की दिशा में डिजिटल कृषि की भूमिका पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। सुरक्षित, पौष्टिक और किफायती भोजन उपलब्ध कराने के साथ ही खेती को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से लाभदायक और टिकाऊ बनाने हेतु सूचना प्राप्त करना ही डिजिटल तकनीकी कहलाता है।

डिजिटल तकनीक फसलों की पैदावार बढ़ाने खेती को सक्षम व लाभदायक बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों और सेवाओं को उपयोग में लाया है। किसान अब खेती से जुड़ी अपनी समस्याओं से निपटने, नई कृषि विधियां सीखने और दुनिया भर में हो रहे कृषि प्रयोगों के बारे में जानने के लिए इसकी सहायता ले रहे है। और कृषि क्षेत्र में अपने भावी जीवन को सुरक्षित रख रहे है।

कृषि में डिजिटल तकनीक का महत्व :–

कृषि क्षेत्र में डिजिटल तकनीक को अपनाकर किसान कम लागत के साथ कृषि उत्पादकता वृद्धि कर सकता है। परम्परागत खेती के स्थान पर नई तकनीकी को अपनाने से किसान सभी प्रकार नई जानकारी प्राप्त कर पाता है जिससे वह समय से मौसम का पूर्वानुमान लगाकर फसलों को बचा सकता है। आंधी–तूफान बेमौसम वर्षा होने और ओले पढ़ने से रबी फसलों की कटाई के समय जैसे गेहूं, सरसों, चना, मटर और आम की उपज को काफी नुकसान पहुंचता था। इससे पहले भी कई परेशानियों का सामना कर रहे किसानों की मुश्किले और बढ़ जाती है। मौसम की इस चाल से रबी फसलों को काफी नुकसान पहुंचता है। पहले भी कभी सूखा और कभी बेमौसम वर्षा से फसलों को बड़े पैमाने पर नुकसान होता रहता है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) देश के 660 जिलों में सभी 6500 ब्लॉक में स्थानीय मौसम पूर्वानुमान जारी करने के तेज गति से काम कर रहा है। आई0एम0डी0 के पास मौसम आधारित सलाह के लिए जिला स्तर पर 130 एग्रोमेट फील्ड इकाइयों का यह एक नेटवर्क है। देश

के 530 जिलों के कृषि विज्ञान केन्द्रों (केवीके) में ग्रामीण कृषि सेवा केन्द्र के अन्तर्गत ऐसी इकाइयों की स्थापना किया जा रहा है। अब तक 4 करोड़ किसान एसएमएस और एम किसान पोर्टल के माध्यम से जिला स्तरीय मौसम पूर्वानुमान प्राप्त कर रहे है। मौसम पूर्वानुमान से किसान भविष्य में आने वाले जोखिमों को काफी हद तक कम कर सकते है।

मौसम पूर्वानुमान के अतिरिक्त किसान डिजिटल तकनीक के रूप में विगत कुछ वर्षों से यूट्यूब के द्वारा खेती करने की नई–नई तकनीकी सीख रहे है। आज गांव में प्रायः सबके पास स्मार्टफोन है जिसमें खेती–किसानी से सम्बन्धित वीडियों के द्वारा विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त कर किसान खेती करने के नई तरीकों से परिचित हो रहे है। डिजिटल तकनीक कृषि गतिविधियों को आधुनिक बनाने और व्यवस्थित करने में एक परिवर्तनकारी भूमिका निभाने को तैयार है। योजनाओं की सफलता के लिए बिग डाटा एनालिटिक्स, ब्लॉक चेन, टेक्नोलोजी और इण्टरनेट जैसी तकनीकों की तैनाती महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है । मौसम बाजार, पौध सुरक्षा, इनपुट, कृषि मशीनरी और मृदा स्वास्थ्य जैसें महत्वपूर्ण मापदंडों के बारे में किसानों को मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से बताया जा रहा है। आज देश में 713 कृषि विज्ञान केन्द्र इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इसके अलावा किसानों को केन्द्रित प्रचार अभियानों, किसान कॉल सेंटरों कृषि क्लीनिक और उद्यमियों के कृषि व्यवसाय केन्द्रों, कृषि मेंलों प्रदर्शनियों और किसान एस0एम0एस0 पोर्टल के माध्यम से कृषि से संबंधित विभिन्न जानकारी प्रदान की रही है।

विविध जानकारी प्राप्त कर और अनेक प्रकार की परेशानियों का सामना करने के बाद जब किसान अच्छा उत्पादन प्राप्त कर लेता है। तब अपनी उपज को कम मूल्य पर ही आस–पास के बिचौलियों व व्यापारियों के हाथों में बेचने की बारी आती है तो कभी–कभी किसान अपनी उपज की लागत भी नहीं निकाल पाता और उसे आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इस समस्या के समाधान हेतु ई–नाम योजना शुरू की गई है। जिससे किसान अपने फसल उत्पादों को देश के किसी भी बाजार में उचित व अधिक मूल्य पर बेच सकता है। इससे किसानों को अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त कर पाता है।

भारत में डिजिटल कृषि का भविष्य : –

डिजिटल परिवर्तन अब लगभग एक दशक से कृषि –खाद्य क्षेत्र में हलचल पैदा कर रहा है इसमे निजी और सरकारी संस्थाओं को प्रक्रियाओं को सुधारने और नये व्यापार मॉडल की पहचान करने के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी में नवाचारों को लागू करने में सक्षम बनाया है। भारत में भविष्य में डिजिटल कृषि को अपनाने से सार्वजानिक निजी भागीदारी (पीपीपी) मोड के तहत विकसित कर उपयोग किया जायेगा। डिजिटल टेक्नोलोजी सुदूर संवेदन मृदा संवेदकों, मानव रहित हवाई सर्वेक्षण और बाजार अतंर्दृष्टि आदि पर आधारित तकनीकी हस्तक्षेप, किसानों को सुविधाजनक तरीके से उत्पादन लागत को कम करने उत्पादन के विभिन्न चरणों में फसल और मिट्टी के स्वास्थ्य के आंकड़ों को इकट्ठा करने अनुमान करने और मूल्यांकन करने की सुविधा उपलब्ध कराती है। डिजिटल तकनीकें संभावित चुनौतियों की पहचान करने के लिए प्रारम्भिक संकेतक के रूप में कार्य कर सकती है और समय बद्ध तरीके से उनसे निपटने के विकल्प प्रदान करती है। आर्टीफिशियल इंटेल्जिेंस मशीन लर्निंग (एआईएम) एल्गोदिरम फसल की उपज में सुधार, कीटों को नियन्त्रित करने, मिट्टी की जांच में सहायता करने किसानों के लिए कार्यवाही योग्य डेटा प्रदान करने और उनके कार्यभार को कम करने में मदद करने के लिए वास्तविक समय पर कार्य करने योग्य अंर्तदृष्टि प्रदान करती है।

निष्कर्ष :–

विगत कुछ वर्षों में जिस प्रकार से हमारे देश की जनसंख्या में वृद्धि हुई है उस अनुपात में खाद्य पदार्थों की आपूर्ति करना एक जटिल कार्य बन गया। कृषि क्षेत्र में उत्पादन क्षमता को बढ़ाने एवं

हर व्यक्ति को आहार मुहैया कराने और ग्रामीण आजीविका का मुख्य स्त्रोत कृषि को बढ़ावा देने हेतु डिजिटल कृषि की भूमिका पर ध्यान देना बहुत आवश्यक हो गया है। सुरक्षित, पौष्टिक और किफायती भोजन उपलब्ध कराने के साथ ही खेती को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से लाभदायक और टिकाऊ बनाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी यानि आईटी का उपयोग पर ध्यान देना अति आवश्यक हो गया है।

खेती को अधिक सक्षम व लाभदायक बनाने के लिए आधुनिक तकनीको और सेवाओं का इस्तेमाल करना आवश्यक है ।इसका उचित उपयोग कर किसान अब खेती से जुड़ी अपनी समस्याओं से निपटने के लिए नई कृषि विधियां सीखने और दुनिया भर में हो रहे कृषि प्रयोगों के बारे में जानने के लिए फेसबुक, व्हॉटसऐप, यूट्यूब, टीवी पर प्रसारित होने वाला कृषि दर्शन कार्यक्रम जैसे साधनों से जुड़कर खेती को बेहतर बनाने की सूचना प्राप्त कर रहे हैं। आज भी ज्यादातर खेती मौसम के हालत पर टिकी है जिसमें ज्यादा जोखिम है, लेकिन किसान घर बैठे कृषि वैज्ञानिकों के बताए गए तरीकों को अपनाकर समस्याओं को दूर कर रहे है। कृषि को अधिक लाभकारी और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए केन्द्र सरकार भी 2022–2023 बजट में डिजिटल कृषि को प्रोत्साहन देने का प्रावधान किया गया है। वित मंत्री के घोषणा के अनुसार इसके अन्तर्गत डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास किया जाएगा, जो सभी हितधारकों के लिए सहज–सुलभ होगा ताकि इसका लाभ किसानों से लेकर सभी सम्बन्धित क्षेत्र उठा सके और भारत सरकार किसने की आय दुगनी करने का लक्ष्य शीघ्र ही प्राप्त कर सकें।

सन्दर्भ

- कुरुक्षेत्र, सितंबर अंक(2019) कृषि का विकास एवं किसानों की समृद्धि, डॉ वीरेंद्र कुमार ,प्रकाशन विभाग सूचना भवन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 14 –16।
- योजना, मार्च अंक (2023) कृषि का समावेशी विकास और आधुनिकीकरण, डॉ0 जगदीप सक्सेना, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन ,नई दिल्ली ,पृष्ठ संख्या – 29–31।
- कुरूक्षेत्र, सितम्बर अंक (2019) ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान और तकनीकी की नई पहल,डॉ मनीष मोहन गोरे, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, नई दिल्ली पृष्ठ सं. 25–26।

https://w-w-w-drishtiias-com

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

वैश्वीकरण का समाज पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. मनोज कुमार,
व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग
सिल्ली कॉलेज, सिल्ली

सारांश

वैश्वीकरण एक मिश्रित, बहुआयामी तथा जटिल प्रक्रिया है, जो उदारीकरण और निजीकरण का प्रतिफल है। इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आयाम हैं यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो संपूर्ण विश्व को एक वैश्विक गांव का रूप प्रदान करती है। ''वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिए आधुनिकीकरण,राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबंधन निर्माण के साथ ही उत्पन्न हो रही है। इसे सूचना तकनीकी एवं जैव प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों से गति मिलती हैं इसमें प्रतियोगिता दक्षता बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिकी तरक्की के जरिए प्रगति की भी संभावना हैं इसमें वैश्विक अंतर्संबद्धता का तीव्रीकरण, आंदोलनों तथा मिश्रण से परिपूर्ण विश्व की दलील, संबंध और संपर्क, चिरस्थाई सांस्कृतिक अंतर्क्रियाएं ओर विनिमय पर बल दिया जाता है। वैष्वीकरण कोई नई प्रक्रिया नहीं है। उपनिवेशवाद के आरंभ हेाने के साथ ही साथ वैश्वीकरण की प्रक्रिया भी आरंभ हो गयी। दुनिया में सत्रहवीं शताब्दी में साम्राज्यवाद की एक नीति के रूप में उपनिवेशवाद आरंभ हो गया था। इंग्लैंड, फ्रांस, पुर्तगीज जैसे अनेक देशों ने यूरोप तथा एशिया सहित दुनिया के तमाम देशों को अपनी कॉलोनी बना लिया था। उपनिवेशवाद के अधीन देशों से कच्चा माल उपनिवेशवादी देशों में जाया करता था। इससे औद्योगिक उत्पादन होता था। उत्पादित माल पुनः खपत हेतु उन्हीं कॉलोनियों में आया करते थे। इस प्रक्रिया में विश्व के बाजारों के एकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। दुनिया के विभिन्न देश निकट आये। विश्व अर्थव्यवस्था का एकीकरण आरंभ हुआ। यद्यपि इसमें एकीकरण की प्रकृति कुछ भिन्न थी। इस प्रकार से उपनिवेषवाद के आरंभ के साथ साथ वैश्वीकरण का भी आरंभ हो गया। इस शोध पत्र के माध्यम से समाज पर वैष्वीकरण के प्रभावों को विश्लेषित कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिंदुः वैश्वीकरण, समाज, संस्कृति, तकनीकी, व्यापार, उद्योग।

संयुक्त सोवियत संघ के विघटन के बाद से एक ऐसे अनियंत्रित पूंजीवाद का विकास हुआ जिसे कोई चुनौती देने वाला नहीं रहा। परिणामस्वरूप एक आयामी विश्व प्रभावी हो गया। पुंजीवाद ने विश्व के मानचित्र पर अभूतपूर्व सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रस्तुत किया। इस नवीन परिवर्तित व्यवस्था के साथ अपने को पुनर्समायोजित करने का दुनिया ने प्रयास किया। 1980 के दशक में अमेरिका ने उदारीकरण तथा मुक्त बाजार व्यवस्था की नीति लागू की। नयी आर्थिक नीति तथा उदारीकरण कार्यक्रमों का परिचय देने वाला चतुर्थ संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम किया गया। इस दौरान सूचना प्रौद्योगिकी विशेष रूप से बढ़ा। बेहतर संभावना की तलाश में लोग उत्प्रवासित होने लगे। इसके परिणामस्वरूप एक नवीन आर्थिक और राजनीतिक बुनियादी पुनर्संरचना के निर्माण की वैश्विक परिस्थिति उत्पन्न हुई। औद्योगिक क्रांति के समय से ही एक प्रकार के वैश्वीक एकीकरण का विकास चला आ रहा है। यह विकास राष्ट्र राज्य की सीमाओं को लांघकर हुआ है। इस प्रकार से वैश्वीकरण एक बहुआयामी एवं जटिल नवीन प्रक्रिया हैं। इसके अंतर्गत बाजारों, वित और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण हो रहा हैं विश्व का ऐसा संकुचनन हो रहा है। जिसके प्रत्येक कोने में हम इतनी जल्दी और सस्ते में पहुंच जाएं। जिनमें पहले

कभी संभव नहीं था। पूर्व की सभी अंतराष्ट्रीय व्यवस्थाओं की भांति यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीति, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी संबंधों को स्वरूप प्रदान कर रहा है। वैश्वीकरण के आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि विविध आयाम हैं। ये सभी आपस में अंतर्संबंधित तथा परस्पर निर्भर हैं। इनमें से किसी एक आयाम का स्वतंत्र मूल्यांकन मात्र आंशिक अथवा एकांकी पक्ष को उदघाटित करता हैं इसका सम्यक मूल्यांकन समग्रता तथा सभी आयामों का समावेश करने की वकालत करता है। तथापि आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वैश्वीकरण के अर्थ को स्पष्ट करना समाजविज्ञान की मांग है।

भारत में नई आर्थिक नीति 1991 में तत्कालिन प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिम्हा राव के नेतृत्व में लागू की गइै। पिछले एक दशक में खुली बाजार प्रणाली के कारण देश में निजिकरण की बढ़ोतरी, बड़ी मात्रा में मजदूरों की बढ़ोतरी, भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी जैसे कारकों पर परिचर्चा आरंभ हो चुकी है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जिस विकास की उम्मिद की जा रही थी और गरीबों को इसका लाभ मिलने की जो आशा थी, वह पूरी नहीं हो सकी। गरीबों और अमीरों के बीच पहले से विद्यमान खाई और अधिक चौड़ी हो चुकी है। जिसके परिणामस्वरूप परिवार में बिखराव और पारंपरिक जीवन में तनाव व्याप्त हो पाया है। इसके माध्यम से भारतीय परंपरा व संस्कृति पर काफी विरोधाभासी प्रभाव पड़ रहा है।[1] यद्यपी भारत की 40 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे निवास करती है। जिनके पास अपने दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के भी संसाधन भी उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा वैश्वीकरण की प्रक्रिया के लागू होने के बाद अधिकांश घरों में महंगाई के बजट बढ़ते जा रहे हैं। भारत सरकार विदेशों से लिये गये लोन को चुकाने के लिए प्रत्येक वर्ष अपनी आमदनी का 27 प्रतिषत भुगतान करती है। जिससे यहां की आय का लगभग एक चौथाई भाग सिर्फ ब्याज की रकम में ही खर्च हो जाता है।

नये शताब्दी वर्ष में आने के बाद भारत की स्थिति ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील होती जा रही है। स्वतंत्रता के 50 वर्षों ने कुछ परिवर्तन अवश्य लाये हैं, परंतु इसका लाभ परिधीय और गरीब जनता को नहीं मिल सका है। राजनीतिक रूप से यहां की स्थिति काफी असंतुलित हो चुकी है। जिसके कारण देश की जनसंख्या के बड़े भाग में यह विश्वास घर कर गया हैं कि वर्तमान राजनीति परिस्थितियां उनकी समस्याओं के समाधान नहीं कर सकती है। भ्रष्टाचार और एकता की कमी ने राष्ट्रीय नेताओं और सामान्य जन को उनकी राजनीतिक भूमिकाओं के संदर्भ में काफी विचलित सा कर दिया है। समाजवाद के नये स्वरूप में स्थापना के बाद राष्ट्रीय एकता को तो खतरा हुआ ही है साथ ही साथ क्षेत्रियता और भाषायी पर आधारित समस्यायें उत्पन्न होती जा रही है। परंतु आधुनिक विकासवादियों का मानना है कि विकास के लिए नये नये डैम का बनाया जाना जरूरी हैं और इसी के आधार पर संतुलन स्थापित किया जा सकता है। इसी को भारत के विकास का महत्वपूर्ण मुददा माना गया है। और सरकार की संपूर्ण नीति इसी के इर्द गिर्द घूम रही है।[2]

यहां पर व्यापक पैमाने में आर्थिक असुरक्षा की भावना बनती जा रही है। जिसके कारकों में व्यापार, आर्थिक और तकनीकों का विस्तार है। वैश्वीकरण के परिदृष्य में गरीबी ने एक नये प्रकार का दिशा निर्धारित कर लिया है। बाजार के वर्तमान परिदृश्य में गरीब और मार्जिनलाइज्ड जिनके पास न तो आय के साधन हैं न ही जमीन है और न सामाजिक सुरक्षा व रोजगार है। उनको वैधानिक और तार्किकता के आधार पर भी बाजार से दूर रखा जा रहा है। अर्थात मुक्त बाजारी अर्थव्यवस्था में उनकी कोई भूमिका महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती है।

अंतराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित प्रतिस्पर्धा ने भारत में विद्यमान प्राकृतिक संसाधनों के प्रचुरता से दोहन की प्रवृति उत्पन्न कर रहा है। इन क्षेंत्रों से प्राकृतिक संसाधनों के प्राथमिकता पर आधारित दोहन और इनके संग्रहन की दूसरी व्यवस्था से संसाधन दूसरे देषों में जा रहे हैं। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले समूहों में छोटे किसान, दलित, आदिवासी और अन्य समूहों के निर्बल वर्ग सम्मिलित हैं। वैश्वीकरण की वर्तमान प्रक्रिया के अंतर्गत कृषि उत्पादन और कृषि में प्रयुक्त की जाने वाली प्रणालीायें में भी कारपोरेट घरानों के द्वारा बनाये गये नियम ही चलन में आ गये हैं। कृषि करने के पारंपरिक विधियों का पूर्णतया परित्याग किया जा रहा हैं और नई कारपोरेट खेती के अंतर्गत समन्वित कृषि के विकास की संभावनाएं जताई जा रही हैं। राज्य के द्वारा कल्याण और जन सेवाओं से अपने आपको अलग करने के कारण वर्तमान में वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव कमजोर वर्गों पर पड़ा है। उनकी खाद्य सुरक्षा नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है। इसके अलावे स्वास्थ्य सुविधायें, शिक्षा और रोजगार की भी समुचित व्यवस्था कमजोर वर्गों के लिये नहीं की जा रही है। निवास स्थान और परिवहन के संसाधनों से वे अपने आपकों दूर पाते है। उदारीकरण की प्रक्रिया के कारण आर्थिक विकास तो तीव्र से तीव्रतर होता गया है।

आर रॉबर्टसन[3] के अनुसार वैश्वीकरण प्रक्रिया की जटिलता को देखते हुए वे मानते हैं कि वैश्वीकरण लादने का दबाव तेजी से बढ़ा हैं किंतु इसने अंतरात्मक शक्ति प्रदान किया।

प्रो आनंद कुमार[4] के अनुसार वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो चारों ओर आकार ग्रहण कर रही है। इसके आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक, सांस्कृतिक तत्व है। जो विष्व के विभिन्न भागों में असमान रूप से विकसित हुए हैं।

रवि प्रकाश पाण्डेय[5] के अनुसार वैश्वीकरण अंतर्वेशन और बहिष्करण की एक जटिल प्रक्रिया हैं इसमें विश्व बाजार, विभिन्न आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं, मल्टीमिडिया, प्रोद्योगिकी तथा संस्कृति आदि के एकीकरण का अंतर्वेशन हो रहा है। जबकि राष्ट्र राज्य की प्रभुसत्ता और स्वेदशियता आदि का बहिष्करण हो रहा है।

फूकोयामा[6] (1999) के अनुसार वैश्वीकरण का एक सूत्र पाश्चात्य विचारों का विश्व स्तर पर प्रवाह के रूप में भी रहा है। नारीवादी विचार विश्व की जैण्डर व्यवस्था के विरूद्ध थे। अतः यदि नारीवादी विचार विश्वव्यापी बने तो उसके पीछे सहमति केवल पाश्चात्य ही नहीं अधिक विश्वव्यापी थी। मानव अधिकारों में नारी अधिकारों के पीछे सारी सहमति विश्वव्यापी थी।

थॉमस फ्राइडमैन[7]के अनुसार–वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, अर्थव्यवस्थाओं और प्रौद्योगिकीयों का एकीकरण है। इसमें विश्व के माध्यम से छोटे रूप में ऐसा संकुचन हो रहा है, जिससे हम सभी दुनिया के हर कोने में इतनी जल्दी और सस्ते में पहुँच जाये जितने में पहले कभी सम्भव नहीं था पूर्व की सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं की भाँति यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीतियों, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी सम्बन्धों को स्वरूप प्रदान कर रहा है।

इण्डा और रोसाल्डो[8] के अनुसार–वैश्वीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के माध्यम से विश्व अत्याधिक अन्तर्सम्बन्धित हो रहा है। इसमें वैश्विक अन्तर्सम्बद्धता का तीव्रीकरण, आन्दोलन तथा मिश्रण से परिपूर्ण विश्व सम्बन्ध और सम्पर्क, चिरस्थायी सांस्कृतिक अन्तक्रियाएँ और विनिमय पर बल दिया जाता है।

स्टुअर्ट हाल[9] के अनुसार–नये स्थान और समय में संस्कृतियों और समुदायों के एकीकरण और उसे जोड़ने वाले तथा दुनिया को एक वास्तविकता और अधिकाधिक अन्तर्सम्बन्धित बनाने वाले अर्थ में वैश्वीकरण को देखा जा सकता है।

अब प्रौद्योगिकी ही इस प्रकार विकसित हुई है, जो किसी एक देश की सीमाओं में नहीं रह सकती, उसका विस्तार ही उसकी व्यापारिक सफलता की कुंजी है। यह किसी भी प्रकार के नियम–कायदे, आर्थिक मान्यताओं यहां तक की सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताओं को भी आधुनिक प्रौद्योगिकी के मार्ग में बनने वाली बाधाओं को स्वीकार नहीं करता। कभी–कभी तो सामाजिक रचना को भी बदलने की आवश्यक्ता रही है, इसलिए यह नहीं मानना चाहिए की जब हम नई प्रौद्योगिकी के पंखों पर वैश्वीकरण का वरण करते हैं, तो नई प्रौद्योगिकी और नये उपकरणों को ही अपनाते हैं, बल्कि एक नई और पूरी संस्कृति को भी स्वीकार करते हैं।

वैश्वीकरण का समाज पर प्रभाव

परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया हैं समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। विचलन का अर्थ यहां खराब या असामाजिक नहीं है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वयं प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। परिवर्तन या तो समाज के समस्त ढांचे में आ सकता है अथवा समाज के किसी विशेष पक्ष तक ही सीमित हो सकता है। परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है। यह किसी न किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है। सामुदायिक परिवर्तन ही वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन है। इस कथन का मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है। सामाजिक परिवर्तन के विविध स्वरूप होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग, समायोजन, संघर्ष या प्रतियोगिता की प्रक्रियाएं चलती रहती है। जिनसे सामाजिक परिवर्तन विविध रूपों में प्रकट होता है। परिवर्तन कभी एक रेखीय तो कभी बहुरेखीय होता है। उसी तरह परिवर्तन कभी समस्यामूलक होता है तो कभी कल्याणकारी। परिवर्तन कभी चक्रिय होता है तो कभी उद्‌विकासीय। सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा सापेक्षिक होती है। समाज की विविध इकाइयों के बीच परिवर्तन की गति समान नहीं होती है। सामाजिक संरचना के कुछ तत्वों में परिवर्तन की गति समान नहीं हेाती है। सामाजिक संरचना में समाज के सभी अंग समान रूप से गतिशील नहीं हेाते हे। इसकी कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती हैं इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक आकस्मिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं। ऐन्थनी गिडेन्स का कहना है कि लगभग 18वीं शताब्दी से सामाजिक परिवर्तन की गति मानव के इतिहास में सापेक्षिक रूप से सबसे तेज रही है और 20वीं सदी के उतरार्द्ध में सामाजिक परिवर्तन की गति कुछ और भी ज्यादा तेज हो गयी। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की तरक्की ने सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज ने पश्चिमी समाज तथा संस्कृतियों के कुछ बातों को आत्मसात् किया है, जैसे– महिलाओं की स्वतंत्रता हेतु पहल, रूढ़िवादी तत्त्वों का विरोध। शिक्षा की अधिक–से–अधिक लोगों तक पहुँच सुनिश्चित हुई है। शहरीकरण, जनजागरूकता, संसाधनों की पहुँच में वृद्धि हुई है।वैश्वीकरण के भारतीय समाज पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों को निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है[10]–

- वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज ने पश्चिमी समाज तथा संस्कृतियों के कुछ बातों को आत्मसात् किया है, जैसे– महिलाओं की स्वतंत्रता हेतु पहल, रूढ़िवादी तत्त्वों का विरोध।
- शिक्षा की अधिक–से–अधिक लोगों तक पहुँच सुनिश्चित हुई है।
- शहरीकरण, जनजागरूकता, संसाधनों की पहुँच में वृद्धि हुई है।
- हमारे खान–पान, रहन–सहन तथा पहनावे में विविधता आई है, वैश्वीकरण ने हमारे सामने विकल्पों की उपलब्धता को बढ़ावा दिया है।
- भारतीय समाज में आधुनिकतम तकनीकों का आगमन हुआ। लेपटॉप, एयर कंडीशनर, आदि आज आम बात हो गई है।
- वैश्वीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में मध्यम वर्ग का उदय हुआ।
- इसके अलावा डिजिटल लेन–देन, सोशल मीडिया, ई–कॉमर्स आदि कई क्षेत्रों में प्रगति हुई है। हालाँकि वैश्वीकरण का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की भी सीमाएँ हैं, जैसे– शिक्षा बाजार केंद्रित हो गई है और आज पढ़ाई का उद्देश्य मात्र पैसे कमाने तक सीमित रह गया है।
- लोक कल्याणकारी राज्य की जगह बाजार, आर्थिक तथा सामाजिक प्राथमिकताओं के प्रमुख निर्धारक हो गए हैं।
- वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक समरूपता की दिशा में कार्य किया है जिसकी वजह से स्थानीय संस्कृतियों को खतरा पहुँचा है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ, टेलीविजन की पहुंच शहरी आबादी के 20 प्रतिशत (1991) से बढ़कर शहरी आबादी के 90 प्रतिशत (2009) तक पहुँच गई है। यहां तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपग्रह टेलीविजन का बड़ा बाजार है। शहरों में, इंटरनेट की सुविधा हर जगह है और ग्रामीण क्षेत्रों तक भी इंटरनेट सुविधाओं का विस्तार है। भारत के शहरी क्षेत्रों में वैश्विक खाद्य श्रृंखला रेस्तरां की वृद्धि हुई है। हर शहर में अत्यधिक मल्टीप्लेक्स मूवी हॉल, बड़े शॉपिंग मॉल और उच्च वृद्धि वाले आवासीय देखे जाते हैं। भारत में मनोरंजन क्षेत्र का एक वैश्विक बाजार है। आर्थिक उदारीकरण के बाद, बॉलीवुड ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया और वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख उपस्थिति दिखाई।[11] उद्योग ने अधिक वैश्विक और आधुनिक बनने के नए तरीके तलाशने शुरू किए। भारत में, पश्चिम के साथ आधुनिकता देखी जाती है। इसलिए, पश्चिमी दर्शन को बॉलीवुड फिल्मों में शामिल किया जाने लगा। जैसे–जैसे ये नए सांस्कृतिक संदेश भारतीय आबादी तक पहुंचने लगे, भारतीय फिल्मकारों को अपनी पारंपरिक भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के पुनर्मूल्यांकन के लिए प्रेरित किया गया। बॉलीवुड फिल्में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वितरित और स्वीकृत की जाती हैं। बड़ी अंतरराष्ट्रीय कंपनियां (वॉल्ट डिजनी, 20 वीं शताब्दी फॉक्स और कोलंबिया पिक्चर्स) इस क्षेत्र में निवेश कर रही हैं। अरमानी, गुच्ची, नाइकी और ओमेगा जैसे प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय ब्रांड भी भारतीयों के फैशन स्टेटमेंट के बदलते हुए भारतीय बाजार में निवेश कर रहे हैं।

वैश्वीकरण के कुछ नकारात्मक प्रभाव हैं जैसे कि इस प्रक्रिया ने ग्रामीण और शहरी भारतीय बेरोजगारी, झुग्गी राजधानियों के विकास और आतंकवादी गतिविधियों के खतरे के बीच असमानता बनाई। वैश्वीकरण ने विदेशी कंपनियों और घरेलू कंपनियों के बीच भारतीय बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ाई। विदेशी सामान भारतीय सामान से बेहतर होने के कारण, उपभोक्ता विदेशी सामान खरीदना पसंद करते थे। इससे भारतीय उद्योग कंपनियों के लाभ की मात्रा कम हो गई। यह मुख्य रूप से दवा, विनिर्माण, रसायन और

इस्पात उद्योगों में हुआ। भारतीय उद्योग पर वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव यह हैं कि प्रौद्योगिकी के आने से आवश्यक श्रम की संख्या कम हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप विशेष रूप से दवा, रसायन, विनिर्माण और सीमेंट उद्योगों के क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ रही है। भारत में कुछ लोग जो गरीब हैं उन्हें वैश्वीकरण का लाभ नहीं मिलता है। अमीर और गरीब के बीच एक बढ़ती हुई खाई है जो कुछ आपराधिक गतिविधियों को जन्म देती है। व्यवसाय की नैतिक जिम्मेदारी कम हो गई है। भारत में वैश्वीकरण का एक और बड़ा नकारात्मक प्रभाव यह है कि भारत के युवा अपनी पढ़ाई को बहुत जल्दी छोड़ देते हैं और कॉल सेंटर से जुड़कर नीरस काम करने के बाद अपने सामाजिक जीवन को कम करने के लिए तेजी से पैसा कमाते हैं। प्रत्येक दैनिक उपयोग योग्य वस्तुओं की वृद्धि हुई है। इससे सांस्कृतिक पहलू पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विवाह की संस्था तेज दर से टूट रही है। वैवाहिक जीवन को बनाए रखने के बजाय अधिक लोग तलाक की अदालतों में आ रहे हैं। वैश्वीकरण का भारत की धार्मिक स्थिति पर काफी प्रभाव है। वैश्वीकरण ने एक ऐसी आबादी को खड़ा किया है जो अज्ञेयवादी और नास्तिक है। पूजा स्थलों पर जाने वाले लोग समय के साथ कम होते जा रहे हैं। वैश्वीकरण ने देश में राष्ट्रवाद और देशभक्ति को कम कर दिया है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वैश्विक लोगों के औद्योगिक पैटर्न के सामाजिक जीवन को बदल दिया है और इसका भारतीय व्यापार प्रणाली पर काफी प्रभाव है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं का वैश्वीकरण सभी युगों में हुआ। पहले, प्रक्रिया की गति धीमी थी। आज सूचना प्रौद्योगिकी की शुरुआत के साथ, संचार के नए तरीकों ने दुनिया को बहुत छोटी जगह बना दी है। इस प्रक्रिया के साथ, एक बड़ा बाजार स्थान है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप माल की एक श्रृंखला के उत्पादन में वृद्धि हुई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पूरी दुनिया में विनिर्माण संयंत्र स्थापित किए हैं। इसके सकारात्मक प्रभाव हैं और भारत कई बाधाओं को दूर करेगा और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार का विस्तार करने के लिए वैश्विक नीतियों को अपनाएगा। भारत आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त कर रहा है और मजबूत हो रहा है।

संदर्भ सूची–

1. झा अविनाश (2005), बैकग्राउंड टू ग्लोबलाइजेशन, आइ एम आर प्रकाशन, नई दिल्ली पृ संख्या 213।
2. बेजामीन डिजराइली, 1986, ए स्टडीज इन ग्लोबलाइजेशनः इंटरनल एण्ड इंटरनेशनल माईग्रेसन इन इंडिया, दिल्ली मनोहर पब्लिकेसन पृ संख्या 23।
3. रोर्बटसन आर (1998)ः गोलोब्लाईजेशन सोसल थियूरी एण्ड गोलोबल कल्चरः सेज पब्लीकेशन लंदन, पृष्ठ–8।
4. आनंद कुमार उद्धृत श्रीवास्तव, राजीव कुमार (2012)ः वैश्वीकरण एवं समाज, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ० सं० 64।
5. पाण्डेय, रवि प्रकाश (2004),कोन्सीकवेन्स सिनोपसीस ऑफ इन्टरनेशनल सेमिनार ऑन गोलोबलाईजेशन एण्ड पॉभ्रटी, हेल्ड ऑन 4–6 दिसम्बर, ऑर्गनाईस बाई एम० जी० काशी विद्यापीठ वाराणसी, 2001, पृष्ठ–1।
6. फूकोयामा उद्धत खेतान, प्रभा (2010)ः भूमंडलीकरण एवं ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 228।

7. फ्रेडमैन, थोमस (1999): ग्लोब्लाईजेशन द लेकयुस एण्ड द ऑलीभ ट्री न्यूयार्क फेरास एस्ट्रेस ग्रीयुस, पुष्ठ–110।
8. इन्डा, जोनथन जेवियर एण्ड रेनाटो रोसल्डो (2002): एन्थ्रोपोलोजी ऑफ गोलोब्लाईजेसनः ए रीडर, ऑक्सफोर्डः ब्लैक वेल पब्लीसर, पृ० 33।
9. हाल स्टुवर्ट, कबैश्चन ऑफ कलच ईडेन्टीटी इन मोर्डरनीटी (1996): एन अनटुरूडकसन टु मोर्डन सोसाईटीस, स्टुर्वट हॉल, डेविड हेल्ड डॉन हेब्रर्ट एण्ड केन्थ थोम्पसन इडस कम्ब्रईड, बैल्कवेल पब्लीसर, पृष्ठ नं0–619।
10. मेलकॉल्म, वार्टसः ग्लोब्लाईजेशन, ट्रेड लिब्रलाइजेशन एण्ड हायर एजूकेशन इन नॉर्थ अमेरिका, द इमरजेंस ऑफ ए न्यू मार्केट अंडर नाफटा वाल्यूम 4 ऑफ हायर एजुकेशन डायनामिक्स स्प्रींगर साइंस एण्ड बिजनेस मिडिया 2012।
11. गीडिन्स ए (1990): द कोनिसिकवेन्स ऑफ मोर्डनीटी ऐस्टेनफ्रॉटः ऐस्टेनफ्रॉट युनिर्वसिटि प्रेस, पृष्ठ–64।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

जनजातीय विकास योजनाओं का लोहरा जनजाति पर प्रभावः

(गुमला जिला के पालकोट प्रखण्ड के उमड़ा एवं बघिमा पंचायत के विशेष संदर्भ में)

वीणा कुमारी,
शोध छात्रा, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

जनजातीय सघनता वाले क्षेत्रों के विकास की रणनीति के रूप में जनजातीय उप–योजना 1974–75 में अस्तित्व में आई। योजना और गैर–योजना के विलय के बाद, वित्त मंत्रालय द्वारा इसका नाम बदलकर अनुसूचित जनजाति घटक योजना कर दिया गया। एसटीसी के निर्धारण के लिए 41 केंद्रीय मंत्रालयों–विभागों की पहचान की गई है। इसके अलावा, राज्य सरकारों को कुल राज्य योजना के संबंध में राज्य में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (जनगणना 2011) के अनुपात में टीएसपी निधियां निर्धारित करनी होती हैं। टीएसपी योजना की निगरानी 2017–18 तक तत्कालीन योजना आयोग द्वारा की जा रही थी, वित्त वर्ष 2018–19 में ही एसटीसी योजना की निगरानी जनजातीय मामलों के मंत्रालय को दी गई थी। सरकार अनुसूचित जनजातियों को लक्षित वित्तीय और भौतिक लाभों के लिए मंत्रालयों–विभागों में विभिन्न योजनाओं–कार्यक्रमों के लिए धन आवंटित करती है। जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने 2018 में एक ऑनलाइन पोर्टल–अनुसूचित जनजाति घटक प्रबंधन सूचना प्रणालीलॉन्च किया। यह पोर्टल केंद्रीय बजट में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवंटितजारी की गई धनराशि की निगरानी करता है। अनुसूचित जनजाति घटक का मूल उद्देश्य निगरानी करना है। केंद्रीय मंत्रालयों–विभागों में अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए कम से कम उनकी आबादी के अनुपात में सामान्य क्षेत्रों से परिव्यय और लाभ का प्रवाहनिर्धारित किया जाता है। नियोजन प्रक्रिया की शुरुआत के बाद से, यह सुनिश्चित करने के प्रयास किए गए हैं कि जनजातीय लोगों को विकास प्रक्रिया में शामिल किया जाए। हालाँकि, प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के साथ रणनीति बदल गई क्योंकि विभिन्न विकासात्मक प्रयासों से नए सबक सीखे गए। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने एक स्पष्ट आदिवासी विकास रणनीति विकसित करने के बजाय आदिवासी लोगों की समस्याओं को दूर करने के लिए सामुदायिक विकास दृष्टिकोण के माध्यम से अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों के प्रावधान पर जोर दिया। इस षोध पत्र के माध्यम से लोहरा जनजाति पर विकास योजनाओं के प्रभावों को विश्लेषित कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिंदुः लोहरा जनजाति, कल्याणकारी योजनायें, जनजाति उप योजना, षिक्षा परियोजनायें, आर्थिक विकास योजनायें।

वर्तमान जनजातीय उप योजना (टी० एस० पी०) की रणनीति शुरू में जनजातीय लोगों के तेजी से सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए प्रो० एस० सी० दुबे की अध्यक्षता में 1972 में शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा गठित एक विशेषज्ञ समिति द्वारा विकसित की गई थी और इसे इसके पांचवी पंचवर्षीय योजना में पहली बार टी० एस० पी० रणनीति, कुछ संशोधनों के साथ, आज तक जारी है और राज्यों के लिए टी० एस० पी०के संबंध में मुख्य विशेषताएं नीचे दी गई हैं:[1]

1. राज्य की जनजातीय उप योजना के तहत प्रदान की जाने वाली धनराशि कम से कम प्रत्येक राज्य या केंद्र शासित प्रदेश की अनुसूचित जनजाति की आबादी के अनुपात में होनी चाहिए।
2. किसी राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के जनजातीय और जनजातीय क्षेत्रों को टीएसपी के तहत लाभ दिया जाता है, इसके अलावा राज्यध्केंद्र शासित प्रदेश की समग्र योजना से क्या लाभ मिलता है।

3. उप–योजना होनी चाहिए।
4. जनजातीय लोगों की समस्याओं और आवश्यकता तथा उनके विकास में गंभीर अंतराल की पहचान करना।
5. टी० एस० पी० के लिए सभी उपलब्ध संसाधनों की पहचान।
6. विकास के लिए व्यापक नीतिगत ढांचा तैयार करना।
7. एक विस्तृत विभागवार योजना तैयार करें।
8. इसके कार्यान्वयन के लिए एक उपयुक्त प्रशासनिक रणनीति को परिभाषित करें।
9. निगरानी और मूल्यांकन के लिए तंत्र निर्दिष्ट करें।

केंद्रीय मंत्रालयों–विभागों के टी० एस० पी० घटक

केंद्रीय मंत्रालयों–विभागों में भी टी० एस० पी०रणनीति का पालन किया जाता है ताकि केंद्रीय मंत्रालया–विभागों में धन का पर्याप्त प्रवाह सुनिश्चित किया जा सके। मंत्रालयों–विभागों ने परियोजनाओं की अविभाज्यता, अनुसूचित जातिया–अनुसूचित जनजातियों सहित सभी समुदायों पर लागू होने वाली परियोजनाओं का हवाला देते हुए पहले टी० एस० पी०को लागू करने में कठिनाई की सूचना दी थी।

जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने इसे ध्यान में रखते हुए टी० एस० पी०पर केंद्रीय मंत्रालयों के लिए एक अलग रणनीति तैयार करने के लिए योजना आयोग से संपर्क किया था। योजना आयोग ने जून, 2010 में डॉ० नरेंद्र जाधव, सदस्य, योजना आयोग की अध्यक्षता में एक टास्क फोर्स का गठन किया। इसने टी० एस० पी०के लिए योजना परिव्यय के निर्धारण के संबंध में उनके दायित्वों के अनुसार मंत्रालयोंधविभागों की विशिष्ट सूची के वर्गीकरण की सिफारिश की।[2]

आदिवासी उप–योजना के लिए विशेष केंद्रीय सहायता (एस०सी०ए०):

यह मंत्रालय द्वारा प्रशासित एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसके तहत योजना आयोग द्वारा किए गए वार्षिक आवंटन के आधार पर राज्य सरकारों को अनुदान प्रदान किया जाता है। इसे उन क्षेत्रों के लिए राज्य योजना में एक योज्य के रूप में माना जाता है, जहां जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए राज्य योजना के प्रावधान आम तौर पर उपलब्ध नहीं होते हैं। यह कार्यक्रम 1974–75 के दौरान शुरू किया गया था और पंचवर्षीय योजना के अंत तक, परिवार–आधारित आय–अर्जक गतिविधियों में महत्वपूर्ण अंतराल को भरना था। दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि से, एस० सी० ए० से टी० एस० पी० के उद्देश्य और दायरे का विस्तार रोजगार–सह–आय सृजन गतिविधियों और उससे संबंधित बुनियादी ढांचे को कवर करने के लिए किया गया था।[3] परिवार आधारित गतिविधियों के अलावा, स्वयं सहायता समूहों (एस० एच० जी०)समुदाय द्वारा संचालित अन्य गतिविधियों को भी शुरू किया जाना है। एस० सी० ए०को टी० एस० पी० तक विस्तारित करने का अंतिम उद्देश्य मांग आधारित आय सृजन कार्यक्रमों को बढ़ावा देना है और इस प्रकार आदिवासियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाना है। राज्यों द्वारा कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देशों को मई, 2003 में संशोधित किया गया था, और जनवरी 2008 में इसे और संशोधित किया गया था। हाल ही में मार्च 2014 में, जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने जनजातीय उप–योजना और अनुदान के निर्माण, कार्यान्वयन और निगरानी के लिए परिचालन दिशानिर्देश जारी किए हैं। अनुच्छेद 275(1) जिसने इन विशेष क्षेत्र कार्यक्रमों के जोर में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं, साथ ही कुछ प्रक्रियात्मक परिवर्तन भी किए हैं। मंत्रालय योजना आयोग द्वारा इस उद्देश्य के लिए मंत्रालय को उपलब्ध कराई गई एस० सी० ए० निधियों से राज्य सरकारों को 100 प्रतिशत सहायता अनुदान प्रदान करता है। जनजातीय उपयोजना (एस० सी० ए० से टी० एस० पी०) के लिए विशेष केंद्रीय सहायता के विस्तार के रूप में वन गांवों के विकास के लिए कार्यक्रम के तहत प्रति गांव 15.00 लाख रुपये भी प्रदान किए गए। उन सभी वन गांवों को 15.00

लाख रुपये प्रदान किए जाएंगे, जिन्होंने दसवीं योजना के दौरान पहले चरण के वित्त पोषण का लाभ उठाया है।[4]

केंद्र प्रायोजित योजनाएंः

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए वर्तमान में जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा निम्नलिखित केंद्र प्रायोजित योजनाएं चलाई जा रही हैं।[5]

1. एसटी–बुक बैंक के लिए पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति।
2. अनुसूचित जनजाति के छात्रों की योग्यता का उन्नयन।
3. अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए प्री मैट्रिक छात्रवृत्ति।
4. गर्ल्स हॉस्टल।
5. लड़कों के छात्रावास।
6. आश्रम विद्यालयों की स्थापना।
7. अनुसंधान और प्रशिक्षण।
8. सूचना और मास मीडिया।
9. राष्ट्रीय जनजातीय कार्य पुरस्कार।
10. उत्कृष्टता केंद्र।
11. अनुसूचित जनजातियों के लिए अखिल भारतीय प्रकृति या अंतर–राज्य प्रकृति की सहायक परियोजनाएँ।
12. जनजातीय उत्सव का आयोजन।
13. आदिवासियों द्वारा यात्राओं का आदान–प्रदान।
14. निगरानी और मूल्यांकन।
15. सूचना प्रौद्योगिकी।
16. एन० ई० के लिए एकमुश्त प्रावधान।

झारखण्ड की लोहरा जनजाति

लोहरा झारखण्ड में पायी जाने वाली जनजाति है। वे परंपरागत रूप से लोहे के गलाने के काम से जुड़े हुए हैं। इतिहासकारों को पता नहीं है कि छोटानागपुर पठार में लोहरा किस काल से रह रहे हैं। लोहरा की उत्पत्ति के बारे में कोई मौखिक या लोककथा भी नहीं है। 1400 से 800 ईसा पूर्व के दौरान छोटानागपुर क्षेत्र में फैले लोहे के उपकरण और मिट्टी के बर्तनों का उपयोग लोहे के लावा, दरांती और पहिया से बने मिट्टी के बर्तनों के कार्बन डेटिंग के अनुसार सिंहभूम के बरुडीह में पाया गया था। जिला। वे मुख्य रूप से झारखंड राज्य में रांची, सिमडेगा, गुमला, लोहरदगा, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामू, धनबाद, बोकारो, गिरिडीह जिले में वितरित किए जाते हैं। झारखंड में जनसंख्या 2,16,226 है। लोहारों को दो उपसमूहों में बांटा गया है, यानी कनुजिया लोहरा, जो बिहार से प्रवासी हैं, और स्वदेशी कोल लोहरा या नागपुरिया लोहरा। नागपुरिया लोहरा को आगे दो समूहों में बांटा गया है, सद कमर और लोहरा। सद कमर ने अपना पेशा छोड़ दिया है और खेती करते हैं। उदास कमर आज भी मुंदरी बोलता है और मुर्गी और बकरी ही खाता है। लोहरा खाद्य पदार्थों पर बहुत कम प्रतिबंधों का पालन करता है और मरे हुए जानवरों के शवों को खाता है। लोहरा पूरे दक्षिण बिहार में वितरित किया जाता है। सद कमर पच परगना इलाके में रहते हैं। लोहरा लोग सदरी और मुंडारी बोलते हैं।[6] उनका पारंपरिक पेशा लोहा गलाना और लोहे के कृषि और घरेलू उपकरण बनाना है। वे हंसिया, कुल्हाड़ी, तीर के सिर और हल बनाते हैं। उनके

पास सथ, सोन (सोन नदी), मगहिया, तूतली, कछुआ (कछुआ), धन (चावल), तिर्की (एक पक्षी) आदि जैसे कबीले हैं। शादी में दुल्हन कीमत प्रचलित है। उनके त्योहार सरहुल, करम, सोहराई, फगुआ हैं।

गुमला जिला एवं पालकोट प्रखंड

ब्रिटिश शासन के दौरान गुमला लोहरदगा जिले के अधीन था। 1843 में इसे बिशुनपुर प्रांत के अंतर्गत लाया गया था जिसे बाद में रांची नाम दिया गया था। वास्तव में रांची जिला 1899 में अस्तित्व में आया था। 1902 में गुमला रांची जिले के अंतर्गत अनुमंडल बन गया। प्रकृति की सुंदरता से धन्य, गुमला जिला घने जंगलों, पहाड़ियों और नदियों से आच्छादित है। यह झारखंड राज्य के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित है। जिला 18 मई 1983 को रांची जिले से बना था। जिला 22 35 से 23 33 उत्तर के बीच स्थित है। प्रकृति की सुंदरता से धन्य, गुमला जिला घने जंगलों, पहाड़ियों और नदियों से आच्छादित है। यह झारखंड राज्य के दक्षिण–पश्चिम भाग में स्थित है। 18 मई 1983 को रांची जिले से जिला बनाया गया था। पहले यह पुराने रांची जिले का एक उप–विभाजन था। यह जिला 22′ 35″ से 23′ 33″ उत्तरी अक्षांश और 84′ 40″ से 85′ 1″ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसके नाम के संबंध में विभिन्न किंवदंतियाँप्रचलन में हैं। सबसे लोकप्रिय शब्द मुंडारी भाषा में इसके शब्द 'गुमला' को बताता है, जो चावल प्रसंस्करण कार्य (धान–कुटना) में स्थानीय जनजातियों के कब्जे से संबंधित है। दूसरी कथा 'गौ–मेला' पशु मेले से संबंधित है। गुमला कस्बे में प्रत्येक मंगलवार को पशु मेला साप्ताहिक लगता था। ग्रामीण क्षेत्रों में नागपुरी और सदरी लोग अभी भी इसे 'गोमिला' कहते हैं। 30 अप्रैल 2001 तक, गुमला जिले में 2 उप–मंडल अर्थात गुमला और सिमडेगा शामिल थे। लेकिन झारखंड राज्य के निर्माण के बाद, 30 अप्रैल, 2001 को सिमडेगा का एक नया जिला गुमला जिले से बना था। अब, गुमला जिले में गुमला, चौनपुर और बसिया नामक तीन उप–मंडल शामिल हैं। जिले का कुल क्षेत्रफल लगभग 5327 वर्ग किलोमीटर है। 1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 706489 है, जिसमें से 355505 पुरुष जनसंख्या और 350984 महिला जनसंख्या है। गुमला जिले में आदिवासी बहुलता है। आदिम जनजाति की आबादी 11283, एससी की आबादी 24329, एसटी की आबादी 476316, बीसी की आबादी 132610 और अन्य की आबादी 61951 है। चूंकि स्पष्ट है कि जिले में कुल 68ः आदिवासी आबादी है, इसलिए यह अनुसूचित क्षेत्र के भीतर आता है।[7]

पालकोट प्रखंड

2011 की जनगणना के अनुसार गुमला जिले के पालकोट ब्लॉक की कुल आबादी 80,859 है। इनमें से 40,215 पुरुष हैं जबकि 40,644 महिलाएं हैं। 2011 में पालकोट ब्लॉक में कुल 16,495 परिवार रहते थे। पालकोट ब्लॉक का औसत लिंग अनुपात 1,011 है।2011 की जनगणना के अनुसार, पालकोट ब्लॉक की सभी आबादी शहरी इलाकों में रहती है। शहरी क्षेत्र में औसत साक्षरता दर 61.6 प्रतिषत है और पालकोट ब्लॉक का लिंगानुपात 1,011 है।पालकोट प्रखंड में 0–6 वर्ष के बच्चों की जनसंख्या 13347 है जो कुल जनसंख्या का 17 प्रतिषत है. 0–6 वर्ष की आयु के 6810 पुरुष बच्चे और 6537 महिला बच्चे हैं। इस प्रकार 2011 की जनगणना के अनुसार पालकोट ब्लॉक का बाल लिंग अनुपात 960 है जो पालकोट ब्लॉक के औसत लिंग अनुपात (1,011) से कम है।पालकोट ब्लॉक की कुल साक्षरता दर 61.55 प्रतिषत है। पालकोट ब्लॉक में पुरुष साक्षरता दर 59.95 प्रतिषत और महिला साक्षरता दर 42.93 प्रतिषत है।[8]

उमड़ा एवं बघिमा पंचायत

उमड़ा पंचायत

यह उप–जिला मुख्यालय पालकोट (तहसीलदार कार्यालय) से 11 किमी दूर और जिला मुख्यालय गुमला से 18 किमी दूर स्थित है। 2009 के आँकड़ों के अनुसार, उमरा गाँव एक ग्राम पंचायत भी है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 1195 हेक्टेयर है। उमरा की कुल जनसंख्या 2,193 है, जिसमें से पुरुष

जनसंख्या 1,089 है जबकि महिला जनसंख्या 1,104 है। उमरा गांव की साक्षरता दर 48.29ः है, जिसमें से 57.85ः पुरुष और 38.86ः महिलाएं साक्षर हैं। उमरा गांव में करीब 431 घर हैं। उमरा गांव का पिन कोड 835220 है।[9]

बघिमा पंचायत

जनगणना 2011 की जानकारी के अनुसार बघिमा का स्थान कोड 376386 है। बघिमा भारत के झारखंड में गुमला जिले के पालकोट उपखंड में स्थित है। यह उप–जिला मुख्यालय पालकोट (तहसीलदार कार्यालय) से 7 किमी दूर और जिला मुख्यालय गुमला से 19 किमी दूर स्थित है। 2009 के आँकड़ों के अनुसार, बघिमा, का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 2214 हेक्टेयर है। बाघमा की कुल जनसंख्या 4,313 है, जिसमें से पुरुष जनसंख्या 2,168 है जबकि महिला जनसंख्या 2,145 है। बाघमा गांव की साक्षरता दर 54.46 प्रतिषत है, जिसमें से 63.70 प्रतिषत पुरुष और 45.13 प्रतिषत महिलाएं साक्षर हैं।[10]

लोहरा जनजाति एवं विकास योजनायें

जनजातीय मामलों का मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों से संबंधित लोगों के समग्र विकास और ऐसे लोगों के अधिकारों को प्रोजेक्ट करने और जनजातीय संस्कृति और विरासत को संरक्षित और बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है। वर्तमान में जनजातीय विकास के निम्नांकित योजनायें संचालित की जा रही हैः–

संस्थाओं का सुदृढ़ीकरणः

जनजातीय लोगों की विकास के लाभों का दोहन करने और सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के वितरण के लिए विभिन्न योजनाओं तक पहुँचने की क्षमता सीमित रही है। एकीकृत जनजातीय विकास एजेंसियां ऐसी संस्थाएं थीं जिन्हें इस तरह की पहुंच को सुविधाजनक बनाने के लिए भूमिका सौंपी गई थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में, कई योजनाएं– जिला स्तर पर विशिष्ट निकाय मजबूत हो गए जबकि अधिकांश राज्यों में आई० टी० डी० ए० आई० टी० डी० पी० कमजोर या गैर–मौजूद हो गए हैं। इसी तरह कई राज्यों में जनजातीय शोध संस्थान कमजोर हो गए हैं। इसने आदिवासी विकास के प्रभारी व्यक्तियों को ज्ञान समर्थन कम कर दिया है। शहरी क्षेत्रों में जनजातीय लोगों की संख्या में वृद्धि देखी गई है लेकिन उनकी विशेष समस्याओं को देखने के लिए कोई एजेंसी नहीं है। वर्ष 2014–15 के दौरान, मंत्रालय ने प्राथमिकता के आधार पर इन संस्थानों को मजबूत बनाने और नए संस्थानों को बनाने का काम शुरू किया है ताकि वे अधिक प्रभावी ढंग से सामान और सेवाएं प्रदान कर सकें। आदिवासी उप–योजना के लिए एससीए की मौजूदा योजनाओं के तहत, संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के तहत अनुदान और 'आदिवासी अनुसंधान संस्थानों को अनुदान–सहायता' की योजना, दिशानिर्देशों को संशोधित किया गया है ताकि इन संस्थानों को सुसज्जित किया जा सके। उचित बुनियादी ढांचे, जनशक्ति और लचीलेपन के साथ।[11]

अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता में सुधार लाने के लिए, जनजातीय कार्य मंत्रालय ने पिछले एक वर्ष के दौरान निम्नलिखित पहल की हैंः–

- 100 प्रतिषत भौतिक नामांकन के लिए अभियान।
- सभी हस्तक्षेपों के लिए कम साक्षरता वाली जनजातियों और जिलों पर विशेष ध्यान देना।
- आवासीय विद्यालयों और छात्रावासों का निर्माण और मौजूदा सुविधाओं का उन्नयन।
- क्षेत्रीय भाषाओं के साथ–साथ जनजातीय भाषाओं में प्राइमरों का विकास।
- शैक्षणिक सत्र जनजातीय उत्सवों के साथ तालमेल बिठाने के लिए।
- स्कूल प्रबंधन समिति आवश्यक शिक्षकों को नियुक्त करने के लिए।

अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा के लिए छाता या अंब्रेला योजनाः

शिक्षा के लिए निम्नलिखित योजनाओं को छत्र योजना में मिला दिया गया है।

- आश्रम विद्यालयों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण।
- छात्रावासों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण।
- जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण।
- मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति।
- प्री–मैट्रिक छात्रवृत्ति।

जनजातीय उत्पादों और विपणन के प्रचार के लिए संस्थागत तंत्रः

लघु वनोपज योजनाः

विषम सूचना के कारण एमएफपी की कीमत अक्सर मांग और आपूर्ति के बजाय व्यापारियों द्वारा निर्धारित की जाती है। यह योजना शुरू में 12 एमएफपी के लिए संविधान की पांचवीं अनुसूची के तहत क्षेत्रों वाले राज्यों में लागू की गई है[12]

- तेंदू के पत्ते
- बांस
- महुआ के बीज
- साल के पत्ते
- साल के बीज
- लाख
- चिरौंजी
- जंगली शहद

मंत्रालय की एजेंसी ट्राइफेड ने एक वेब आधारित पोर्टल 'एमएफपीएनईटी' की मेजबानी की है, जिसके माध्यम से विभिन्न राज्यों की महत्वपूर्ण मंडियों में एमएफपी की वर्तमान कीमत जानी जा सकती है।

कॉल सेंटर और टोल फ्री नंबर का उद्घाटनः

वास्तविक समय की जानकारी प्रदान करने के लिए, देश भर में विभिन्न मंडियों में लघु वन उपज की दैनिक कीमतें अब टोल फ्री नंबर 1800–180–1551 के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं, जिसका उद्घाटन माननीय जनजातीय मामलों के मंत्री ने 02.09.2014 को किया था।[13]

ई–कॉमर्स पोर्टलः

ट्राइफेड द्वारा डायरेक्ट सेलिंग के लिए एक पोर्टल लॉन्च किया गया है। इसके अलावा, ट्राइफेड ने Þsnapdeal-comß के साथ करार किया है।

उत्कृष्टता के केंद्र

मंत्रालय जनजातियों के निर्धारण से संबंधित एक अधिक केंद्रित, दीर्घकालिक और नीति–उन्मुख कार्य में शामिल करने के लिए विश्वविद्यालयों और प्रतिष्ठित संस्थानों में सक्रिय अनुसंधान को मजबूत करने का समर्थन करता है। वर्तमान में तीन संस्थान मंत्रालय के सहयोग से कार्य कर रहे हैंः–

- स्थानीय प्रशासन और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद।
- बी०ए०आई०एफ डेवलपमेंट रिसर्च फाउंडेशन, पुणे ग्रामीण प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में आजीविका और जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए।
- सूचना, शिक्षा और संचार के क्षेत्र में भाषा अनुसंधान और प्रकाशन केंद्र, वड़ोदरा।

वनबंधु कल्याण योजनाः

आदिवासियों के व्यापक विकास को प्राप्त करने के लिए वनबंधु कल्याण योजना (वीकेवाई) जनजातीय मामलों के मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित की जा रही है जो विकास की विभिन्न योजनाओं के अभिसरण पर केंद्रित है। वीकेवाई केवल भौतिक और वित्तीय उपलब्धियों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय कामकाजी चरित्र में बदलाव की भी परिकल्पना करता है। मसलन, इसमें स्कूलों की संख्या के बजाय डिस्टिंक्शन के साथ पास हुए छात्रों की संख्या दिखेगी। प्रस्तावित हस्तक्षेप का उद्देश्य स्थिरता के साथ जनजातीय लोगों के समग्र विकास के लिए गुजरात मॉडल के अनुरूप एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना है।[14]

निष्कर्ष

समाज में रहने वाले कमजोर वर्ग के लोगों को न्याय दिलाने के लिए न्यायसंगत नीति का निर्माण और उसका कार्यान्वयन राज्य की प्राथमिक जिम्मेदारी है। भारत में जनजातीय समुदाय अपने दैनिक मामलों में कई मुद्दों से निपट रहा है और आज के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रहा है जो दूसरों के लिए आसानी से उपलब्ध है। जनजातीय विकास हमेशा संघ और राज्यों दोनों की सरकार के लिए एक बड़ी चिंता का विषय रहा है। सरकार का दावा है कि समग्र रूप से आदिवासी समुदाय के विकास और सतत विकास के रास्ते की खाई को पाटने के लिए निरंतर प्रयास किए गए हैं। आजादी के बाद से जनजातीय मुद्दों के समाधान के लिए कई नीतियां और कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। फिर भी यह आदिवासियों के उत्थान के लिए पर्याप्त नहीं लगता है, जो दशकों से पिछड़ेपन के साये में जी रहे हैं। जनजातीय समुदाय के सतत विकास की दिशा में सबसे बड़ा रोड़ा उनके लिए बनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में जागरूकता की कमी है जिसे मजबूत करने की आवश्यकता है और यह केवल आदिवासियों के बीच साक्षरता दर को बढ़ाकर ही संभव हो सकता है। सरकार का कहना है कि 2011 की जनगणना के अनुसार आदिवासियों की साक्षरता दर 59 प्रतिशत है। लेकिन यह एक कड़वी सच्चाई है कि इन साक्षर जनजातियों में एक बड़ा वर्ग केवल नाम के लिए साक्षर है। उन्होंने प्रारंभिक अवस्था में ही अपनी शिक्षा छोड़ दी और वे उनके लिए बनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है और अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। सरकार की नीति को केवल जनजातीय विकास पर ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए बल्कि जनजातियों के समृद्ध संस्कृति, रीति–रिवाजों, परंपराओं और भाषा के सतत विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, क्योंकि जनजातीय पहचान उनकी विशिष्ट संस्कृति और परंपराओं के साथ निहित है जो उन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है। वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासी समुदाय को अपनी संस्कृति और पहचान की रक्षा और संरक्षण के लिए कुछ विशिष्ट नीतियों की तत्काल आवश्यकता है। अनुसूचित जनजातियों की वास्तविक पहचान को जोखिम में डालकर विकास का कोई अर्थ नहीं है।

संदर्भ सूची

1. रंजन मनीष, 2002, झारखंड जेनरल नॉलेज, प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली पृ 18।
2. झारखंड कल्चर० कॉम/नोड/79।
3. सिंह उपींदर, 2008, ए हिस्ट्री ऑफ एनषिएंट एण्ड अरली मेडाइवल इंडिया फ्रॉम स्टोन एज, पियर्सन एजुकेषन इडिया नई दिल्ली पृ 225।
4. दास ज्योति भूषण, 2007, साइंस टेक्नोलॉजी इम्पिरियलिज्म एण्ड वार, पियर्सन एजुकेषन इंडिया नई दिल्ली पृ 268।
5. पूर्वोक्त मनीष रंजन पृ 46।
6. चौधरी प्रणव चंद्र राय, 1970, बिहार डिस्ट्रीक्ट गजेटियर वॉल्यूम 12, सुपरिटेंडेंट सेक्रेटिरियेट प्रेस पटना पृ 126।

7. भारत की जनगणना 2011।
8. भारत की जनगणना 2011।
9. भारत की जनगणना 2011।
10. भारत की जनगणना 2011।
11. दैनिक जागरण 13 जुलाई 2021।
12. इटीवी भारत 14 मार्च 2021।
13. कॉन्सेप्ट नोटस ऑन टीएसपी, 2019, रिजनल सेंटर फोर डेवलपमेंट कॉरपोरेषन नई दिल्ली पृ 324।
14. सेन राहुल, 1992, ट्राइबल पॉलिसी इन इंडिया, इंडियन एन्थ्रोपोलोजिस्ट नं 22 पृ 77–89।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

भारत में कृषक आन्दोलन

संध्या
असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
डी.ए.वी. पी.जी.कालेज, आजमगढ़, उ0प्र0

सारांश

कृषक आन्दोलन खेतिहर मजदूरों या किसानों से सम्बन्धित वे आन्दोलन हैं जो शोषण, पतन एवं आर्थिक गुलामी के खिलाफ उत्पन्न होते हैं। कृषक आन्दोलन में प्रमुख रूप से सहभाग केवल कृषकों का ही होता है लेकिन कभी–कभी कृषि के व्यवसाय से सम्बन्धित कुछ दूसरे व्यक्ति और वर्ग भी उसके साथ सक्रिय सहयोग करते हैं। कृषक आन्दोलन में कृषकों की सहभागिता का उद्देश्य मात्र अपनी समस्याओं से उबारना होता है, जबकि दूसरे वर्गों की सक्रियता वैयक्तिक लाभ के कारण होती है। भारत कृषि प्रधान देश है और कृषक आन्दोलन का एक प्रमुख स्थान रहा है। भारतीय समाजों में भी दूसरे कृषक समाजों की तरह कृषकों के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना रहा है। आदिम अवस्था से ही मनुष्य भोजन प्राप्ति के लिये प्रयासरत रहा है। आदिम अवस्था में शिकार और जंगलों से खाद्य पदाथों तथा कंद–मूल फल आदि के संग्रहण द्वारा व्यक्ति की भोजन की पूर्ति होती थी। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने कृषि के द्वारा खाद्यान्नों का उत्पादन प्रारम्भ किया। कृषक खेत–खलिहानों में काम करके अपने लिए आजीविका जुटाते हैं। कृषि कार्य को करनें वाले व्यक्ति कृषक कहलाते हैं। इसीलिए विश्व के सभी समाजों में कृषि व्यवसाय आर्थिक संरचना का प्रमुख आधार है। मानव समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में कृषक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं परन्तु यही वर्ग सभी सामाजिक समाजों में सबसे अधिक शोषित पीड़ित और तिरस्कृत रहा है। भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों में कृषकों की समस्याएं व्याप्त है। जैसे–जापान, मैक्सिको, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देश भी समस्याओ से पीड़ित हैं। अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए कृषकों द्वारा किये गये संघर्ष ही कृषक आंदोलन है। समाज में कृषक–आन्दोलन भी वर्ग–संघर्ष का ही एक विशेष रूप है।

शब्द कुन्जीः– कृषक, आन्दोलन, आदिम, मनुष्य, आवश्यकताएं।

प्रस्तावनाः–

भारत में कृषक आन्दोलनों का इतिहास बहुत पुराना है। इसके बाद भी कृषक आन्दोलन का व्यवस्थित उल्लेख पिछले 200 वर्षों से ही देखने को मिल रहा है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने इनकी विवेचना कृषकों की वर्तमान समस्याओं तथा इनसे उत्पन्न होने वाले असन्तोष के सन्दर्भ में की है। कृषक आन्दोलन का अध्ययन करनें पर हमें इसके तीन मुख्य कारण ज्ञात होते हैं।

(1) भूस्वामियों द्वारा किये जा रहे शोषण और श्रम मूल्य की कमी के विरोध में आवाज उठाने से सम्बन्धित आन्दोलन।

(2) बाह्य तत्वों से अपनी भूमि एवं कृषि कार्य की रक्षा के प्रयास से सम्बन्धित आन्दोलन।

(3) भारतीय राजाओं और जमींदारों के शोषण के विरोध में होने वाले आन्दोलन।

भारतीय कृषक आन्दोलनों में सन् 1920–22 के मध्य बीजों के दाम और भू–लगान की दर में वृद्धि के कारण ''किसान सभा और एका'' नाम से आन्दोलन की शुरूआत हुई। वही सन् 1919 में गुजरात में ''खेड़ा''

नामक कृषक आन्दोलन का कारण फसलों की बरबादी के कारण किसानों द्वारा करों और लगान की दर घटाने की मांग करना था। बंगाल और चम्पारण में 1860 और 1917 में किसानों को ब्रिटिश सरकार द्वारा जबरदस्ती नील की खेती करनें के लिए बाध्य करने के कारण कृषक आन्दोलन की शुरूआत हुई थी।

भारत में स्वतंत्रता के बाद कृषि से जुड़ी हुई समस्याओं ने नया रूप लेना शुरू कर दिया। इस दशा में जो किसान आन्दोलन आरम्भ हुये, उन्हें ''नव किसान आन्दोलन'' कहा जाता है। इनमें पहला नक्सली आन्दोलन है जो बंगाल में सन् 1967 से आरम्भ हुआ। दूसरा आन्दोलन पंजाब और तमिलनाडु में 1970 के दशक में शुरू हुआ जो बाद में लगभग सभी प्रदेशों में फैल गया। इसका उद्देश्य कृषि उपज की न्यूनतम कीमतों को तय करना, कृषि उपज पर टैक्स में छूट देना, उन्नत बीजों और रसायनिक खादों की व्यवस्था करना तथा किसानों की विभिन्न दशाओं में सुधार करना था। इन आन्दोलनों के समर्थन में चौधरी चरण सिंह, देवीलाल, राजनारायण, नानाजी देशमुख, महेन्द्र सिंह टिकैत ने भी किसान रैलियाँ तथा किसान सम्मेलनों का आयोजन किया। इसी कारण इन आन्दोलनों को समाजवादी विचार धारा से प्रभावित आन्दोलन माना जाता है। भारतीय कृषक आन्दोलनों में विभिन्न विचारधाराओं से सम्बन्धित राजनीतिक दलों का भी योगदान रहा है, यद्यपि मुख्य रूप से अधिकांश आन्दोलन बंधुआ मजदूरी, बीज के दामों में वृद्धि, महाजनों के शोषण, लगान की ऊंची दर, फसल के अधिक मूल्य को पाने में असफलता आदि का ही परिणाम है।

भारत में प्रमुख कृषक आन्दोलनः–

भारत के अधिकांश हिस्सों में किसानों की समस्याएँ लगभग समान होने के बाद भी वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक और राजनीतिक संरचना में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। भारत में प्रमुख कृषक आन्दोलन निम्नलिखित हैं।

उत्तर प्रदेश के कृषक आन्दोलनः–

भारत में उत्तर प्रदेश सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है। कृषक आन्दोलनों में भी उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तर प्रदेश एक कृषि प्रधान राज्य है, लेकिन यहाँ के किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। सर्वप्रथम सन् 1920 में आगरा और अवध क्षेत्र के कृषकों ने अपनी समस्याओं के लिए आन्दोलन किया था।

आगरा में कृषकों द्वारा सन् 1920 में किये विरोध से प्रभावित होकर सन् 1921–22 में उत्तर प्रदेश मे ''एका कृषक आन्दोलन'' हुआ। इस अवधि में उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के पास चौरा–चौरी स्थान पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जमींदार और कृषक सम्मिलित रूप से विरोध कर रहे थे, वहीं ''एका आन्दोलन'' के माध्यम से कृषकों ने संगठित होकर बेगार, नजराना, बेदखली, कम श्रम मूल्य के विरोध में आन्दोलन आरम्भ किया।

बिहार कृषक आन्दोलनः–

बिहार भी कृषि प्रधान राज्य है यहाँ कृषक आन्दोलन मुख्य रूप से जमींदारों का विरोध करना था यहाँ के प्रमुख आन्दोलनों में चम्पारण आन्दोलन, संथाल आन्दोलन है।

बंगाल के कृषक आन्दोलनः–

बंगाल के कृषक आन्दोलनों में तेभागा आन्दोलन, नक्सलवादी आन्दोलन प्रमुख है।

गुजरात के कृषक आन्दोलनः–

गुजरात के प्रमुख कृषक आन्दोलनों में खेड़ा आन्दोलन, कर बन्दी आन्दोलन है।

राजस्थान कृषक आन्दोलनः–

राजस्थान के प्रमुख कृषक आन्दोलनों में बिजौलिया कृषक आन्दोलन आता है।

दक्षिण भारत के कृषक आन्दोलनः–

दक्षिण भारत के प्रमुख कृषक आन्दोलनों में ''मोपलाह कृषक आन्दोलन'' आता है जो कि एक धार्मिक आन्दोलन था, जो हिन्दू भूस्वामियों और मुसलमानों के बीच हुआ था।

निष्कर्ष

कृषक आन्दोलन कृषकों का अपनी आवश्यकताओं व अपने अधिकारों की लड़ाई है जो तत्कालीन सत्ता या जमींदारों के विरूद्ध कृषकों द्वारा किया जाता रहा है इस आन्दोलन का मूल कारण, भूमि का असमान वितरण, कृषकों में जागरूकता, कृषक बेकारी, हरितक्रान्ति से उत्पन्न असमानता तथा कुछ राजनीतिक कारक रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 जी0के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ 383
2. रावत हरिकृष्ण (2006), उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, एस0एल0 दोषी, पी0सी0 जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर–05 तृतीय संस्करण, वर्ष–2005, पृष्ठ–23
4. जी0के0 अग्रवाल एण्ड भारतीय समाज में निरन्तरता एवं परिवर्तन आगरा बुक स्टोर्स, वर्ष 1987, पृष्ठ–26
5. एम0एल0 गुप्ता, डी0डी0 शर्मा, सामाजिक व्यवस्था एवं परिवर्तन, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ–98

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

उज्जैन नगर में वृद्धजनों की पारिवारिक प्रस्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अंजली द्विवेदी
शोध छात्रा, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य
अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन
डॉ. ज्योति उपाध्याय
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य
अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन

सारांश–

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही भारतीय समाज परंपरागत एवं सरल समाज से आधुनिक अथवा जटिल समाज मे परिवर्तित हो रहा है और परिवर्तन के ही फलस्वरूप परिवार के स्वरूप मे भी परिवर्तन हो रहा है। संयुक्त परिवार एकल परिवार मे बदल रहे हैं। उम्र का बढ़ना एक जैविक प्रक्रिया है यह प्रक्रिया जन्म से शुरू होकर मृत्यू पर समाप्त होती है। वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन की अंतिम अवस्था है। नगरीय जीवन शैली वृद्धावस्था को आंशिक रूप से प्रभावित कर रही है। परंपरागत भारतीय समाज में वृद्धजनों को समाज तथा परिवार मे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता था। वृद्धों को समाज मे अनुभवी एवं सम्माननीय व्यक्तित्व के रूप मे सामाजिक धरोहर माना जाता था परंतु वर्तमान नगरीय समाज मे वृद्धों को अनुभवहीन, आश्रित तथा निम्न स्थान दिया जा रहा है, इस कारण से वृद्धजनों को अनेक सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जिससे वृद्धजनों की अस्मिता खतरे मे जाती हुई प्रतीत हो रही है। अतः हमें वृद्धजनों के लिए उपयुक्त कार्य करने एवं जागरूक करने की आवश्यकता है। क्योंकि एक स्वस्थ एवं विकसित समाज के लिए आवश्यक है कि वहां के सभी वर्ग समूह मे समानता एवं विकास के समान अवसर प्राप्त हो। जिस प्रकार एक इमारत की नींव उस इमारत के अस्तित्व को मजबूत बनाए रखती है, उसी प्रकार परिवार के वरिष्ठजन भी परिवार एवं समाज को सशक्त बनाए रखते है।

मुख्य शब्द :– वृद्धजन, वृद्धावस्था, पारिवारिक प्रस्थिति।

प्रस्तावना :

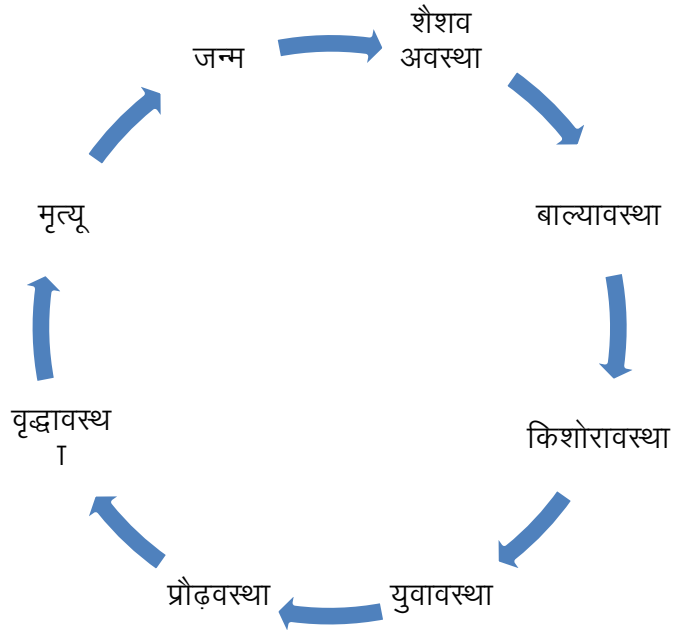
वृद्धावस्था को वार्धक्य अवस्था भी कहते हैं इस अवस्था में मानव का जीवन औसत काल से अधिक व्यतीत हो जाता है। इस अवस्था में रोगप्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे इस अवस्था में मनुष्यों में रोग लगने की संभावना अधिक हो जाती है। यह प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे धीरे–धीरे आने वाली एक अवस्था है जो कि एक स्वाभाविक एवं प्राकृतिक घटना है जो विभिन्न अनुभवों से युक्त होता है। इस अवस्था में वृद्धों

के पास ज्ञान का भंडार एवं जीवन के कई महत्वपूर्ण अनुभवों का भंडार होता है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ ही है– पका हुआ या परिपक्व।

भारत में 60 या 60 वर्ष से अधिक के व्यक्तियों को वृद्ध माना गया है एवं वैश्विक स्तर पर वृद्धावस्था को विभिन्न आयु वर्ग से संबंधित माना जाता है– अमेरिका 62–66 वर्ष, ब्राजील मे 60–67 वर्ष, ऑस्ट्रेलिया में 66–67 वर्ष, जापान में 64–65 वर्ष पुरूष तथा 60–62 वर्ष महिला, बांग्लादेश में 59 वर्ष, श्रीलंका मे 55–56 वर्ष आदि।

लुईस वर्थ के अनुसार– वृद्धावस्था व्यक्तियों के उन परिवर्तनों का सूचक है जो कालक्रमानुसार दिखाई देता है। यह परिवर्तन मुख्यतः शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि स्तरों पर होता है।

वृद्धावस्था प्रत्येक मानव के जीवन की एक ऐसी अवस्था है जिसका अनुभव प्रत्येक मानव को एक समय के बाद करना होता है। मानव के जीवन में आने वाली प्रत्येक अवस्थाएं एक चक्रीय परिवर्तन के रूप में होता है जो एक के बाद एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन होता है। लेकिन यह प्रक्रिया बहुत धीमी गति मे होती है इस प्रक्रिया को इस चित्र के माध्यम से समझ सकते है–



इस प्रकार प्रत्येक मानव उपरोक्त अवस्थाओं से क्रमशः गुजरता है।

वृद्धावस्था मानव के जीवन का अंतिम पड़ाव होता है इस अवस्था तक एक मानव को सम्पूर्ण जीवन का अनुभव, लोगों की समझ तथा अच्छे–बुरे का ज्ञान हो चुका होता है। यह अवस्था हर युवा के जीवन का एक अनिवार्य सत्य होता है, जो आज युवा है वह कल वृद्ध अवश्य होगा। इस अवस्था में व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से तो कमजोर होता ही है परंतु साथ ही साथ सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक दृष्टि से भी शक्तिहीन हो जाता है। इस अवस्था मे वृद्धों को शारीरिक दुर्बलता, मानसिक बीमारी, परिवार के स्नेह तथा लगाव की कमी के साथ–साथ अकेलेपन की समस्या भी घेर लेती है। अतः मनुष्य के जीवन की यह सबसे कठिन अवस्था होती है तथा इस अवस्था मे व्यक्ति चाहे या न चाहे किसी न किसी रूप से दूसरों पर निर्भर हो जाता है।

उज्जैन भारत के मध्य प्रदेश राज्य मे बसा एक बहुत सुंदर शहर है। उज्जैन का प्राचीन नाम अवंतिका, कनकश्रंगा तथा उज्जयिनी रहा है एवं इस शहर को कालिदास की नगरी के नाम से भी जाना जाता है।

यह शहर क्षिप्रा नदी के किनारे बसा हुआ है तथा भगवान शिव की 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग इस शहर मे है। यही कारण है कि उज्जैन म.प्र. में ही नहीं पूरे भारत देश मे बहुत लोकप्रिय शहर है।

उज्जैन नगर मे कई तीर्थ स्थल है, जैसे– महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग, महाकाल लोक, श्री काल–भैरव मंदिर, भर्तृहरि गुफा, शक्तिपीठ माँ हरिसिद्धी मंदिर, श्री चिंतामन गणेश मंदिर, शक्तिपीठ श्री गढ़कालिका माता मंदिर, महर्षि संदीपनी आश्रम, राम घाट, गोपाल मंदिर, इस्कॉन मंदिर, श्री चार धाम मंदिर, श्री चौबीस खंभा माता मंदिर आदि कई लोकप्रिय मंदिर तथा जगह इस शहर को प्रसिद्ध बनाती है, इसलिए उज्जैन को मंदिरों के शहर के साथ–साथ एक ऐतिहासिक शहर भी कहा जाता है।

उज्जैन महान सम्राट विक्रमादित्य के राज्य की राजधानी हुआ करती थी। यहां हर 12 वर्ष में सिंहस्थ महाकुम्भ मेला लगता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार उज्जैन शहर की जनसंख्या 1,986,864 (लगभग) है। यह म.प्र. का पांचवा सबसे बड़ा शहर है। उज्जैन जिले में लगभग 6 तहसील और 1108 गाँव हैं। अतः उज्जैन में धार्मिक, भक्तिमय, पवित्र और शान्ति तथा सुकून से भरा वातावरण होता है।

साहित्य समीक्षा :

संधू और अरोड़ा (2003) ने पंजाब के अमृतसर जिले मे एक अध्ययन किया है। अपने अध्ययन मे उन्होंने पाया कि वृद्धाश्रम मे बुजुर्ग संतुष्ट है और अपने संस्थागत जीवन का आनंद ले रहे है। उन्हें अपने संस्थानीकरण के बारे मे बुरा नहीं लगा। उन्होंने अपनी भावना व्यक्त की कि समाज मे और अधिक वृद्धाश्रम स्थापित किये जाने चाहिए। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि अधिकांश बुजुर्ग अपने बेटों और बहुओं के साथ तनावपूर्ण संबंधों के कारण इन वृद्धाश्रमों मे आते हैं।

दास और शाह (2004) ने गुजरात मे औद्योगिकीकृत बुजुर्गों पर एक अध्ययन किया। उनके अध्ययन से संकेत मिलता है कि एक तिहाई बुजुर्गों ने कहा है कि वे पारिवारिक संघर्ष के कारण ऐसी व्यवस्था चुनते है। यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि पारंपरिक पारिवारिक समर्थन कमजोर होने की स्थिति मे संस्थागत जीवन व्यवस्था की मांग बढ़ गई है क्योंकि बड़े हो चुके बच्चों को अपने बूढ़े माता–पिता की देखभाल करना मुश्किल लगता है। इस प्रकार, परिस्थितियों ने बुजुर्गों को ऐसी अवैयक्तिक व्यवस्थाओं की ओर जाने के लिए मजबूर किया, जहां वे अपने जीवन का एक नया अर्थ बनाने के लिए संघर्ष कर रहे है, उम्र के साथियों मे सांत्वना और आराम की तलाश कर रहे है, संस्थागत जीवन के अनुशासन और अपरिचित रहने की व्यवस्था मे समायोजित हो रहे है। अध्ययन मे यह भी पाया गया कि अधिकांश कैदी उन्हें प्रदान की गई सेवाओं और कर्मचारियों की देखभाल से संतुष्ट थे।

कौर (2009) द्वारा पंजाब और चंडीगढ़ मे संस्थागत बुजुर्गों पर एक अध्ययन किया गया है। उन्होंने बुजुर्गों और उनके विवाहित बेटों के बीच व्यक्तिगत, सलाहकारी और वित्तीय संबंधों के संदर्भ मे सहायक/विनिमय संबंधों का अध्ययन किया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश बुजुर्ग अपने बेटों को अधिक मदद दे रहे थे लेकिन उन्हें अपने बेटों से कम सहायता मिल रही थी। इसके अलावा, अध्ययन मे वृद्धाश्रमों को स्थानांतरित करने के प्रमुख कारणों मे यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि बुजुर्गों की देखभाल करने वाला कोई नहीं था।

भारती (2010) ने हैदराबाद मे संस्थागत वृद्धों पर एक अनुभवजन्य अध्ययन किया है। उनके अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश बुजुर्ग अपनी दैनिक जरूरतों और आवश्यकताओं के लिए अपने बच्चों पर निर्भर थे। उनमें से अधिकांश को अपने परिवार के सदस्यों द्वारा कोई व्यक्तिगत देखभाल नहीं मिल रही थी क्योंकि वह वृद्धाश्रम स्थानांतरित करने का मुख्य कारण था। अध्ययन का निष्कर्ष यह भी है कि वृद्ध होने के बावजूद कुछ बुजुर्ग खुद को कुछ गतिविधियों मे व्यस्त रखकर सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

मिश्रा (2007) ने उड़ीसा के अपने अध्ययन मे पाया कि पारिवारिक देखभाल और आर्थिक सहायता की कमी के कारण बुजुर्गों को वृद्धाश्रमों मे स्थानांतरित होने के लिए मजबूर होना पड़ा। उन्होंने जांच की कि अधिकांश बुजुर्गों ने वृद्धावस्था संसाधनों मे मौजूदा व्यवस्था से संतुष्टि महसूस की। इसके अलावा, अध्ययन से यह भी पता चलता है कि अपने मित्र नेटवर्क के साथा लगातार संपर्क मे रहना, सह–निवास के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध रखना और संस्थान के भीतर विभिन्न गतिविधियों में सलंग्न रहना भी पुराने संस्थानों मे उनके संतुष्टिपूर्ण जीवन के योगदान कारक थे। कई बुजुर्गों को लगता है कि ये संस्थान उनके रहने के लिए आदर्श स्थान बन गए है और वे अपने बच्चों के पास वापस नहीं जाना चाहते हैं।

मांझी डॉ. तृप्ति (भारतीय परिदृश्य में वृद्धावस्था : एक विवेचन)जी के अनुसार वृद्ध व्यक्ति वह है जो अपने सक्रिय जीवन से निवृत्त हो चुका है एवं सक्रिय आर्थिक क्रियाओं से अवकाश प्राप्त कर लेता है। मांझी जी ने वृद्धावस्था को दो भागों में विभाजित किया है – प्राथमिक वृद्धावस्था जिसमें जैविक समस्याएं होती है तथा द्वितीयक वृद्धावस्था जिसमें अन्य समस्याएं होती हैं। इसके अतिरिक्त मांझी जी ने अपने इस अंतर्राष्ट्रीय जर्नल में वृद्धावस्था की वैश्विक स्थिति, जनांककीय परिदृश्य आदि का भी वर्णन किया है।

प्राचीन समय मे वृद्धजनों को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ करता था तथा आज भी अधिकांश परिवारों में वृद्धों को ही परिवार का मुखिया माना जाता है, वहीं कई ऐसे परिवार भी है जहां वृद्धों को पहले की तरह मान–सम्मान नहीं होता है और वृद्धजनों को परिवार मे एक बोझ की तरह समझा जाता है, उनके साथ अभद्र व्यवहार किया जाता है और उनका अपमान भी किया जाता है एवं परिवार के ही सदस्यों द्वारा वृद्धजनों को हर समय यह एहसास दिलाया जाता है कि वो एक बोझ मात्र है। प्राचीन समय में वृद्धजनों के कारण ही संयुक्त परिवार हुआ करते थे। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वृद्धजन अपने परिवार को संभाल लेते थे एवं उनकी समस्याओं का समाधान भी निकाल लेते थे।

परंतु वर्तमान समय मे नई पीढ़ी के बच्चों की अपनी अलग ही जीवन शैली एवं मूल्य होते है। उन्हें किसी बड़े–बुजुर्ग का रोक–टोक करना नहीं अच्छा लगता है और स्वयं भी बड़े–बुजुर्गों को अपने जीवन में शामिल करना पसंद नहीं करते जिस कारण से परिवार टूट रहे है और अब हमें ज्यादातर एकल परिवार ही देखने को मिलते है तथा इसी कारण से वृद्धाश्रमों की संख्या और उनमे निवास करने वाले वृद्धों की संख्या मे लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है।

तालिका संख्या 1 :

कुल जनसंख्या मे वृद्धजनों का प्रतिशत

लिंग		कुल जनसंख्या में वृद्धजनों का प्रतिशत (लगभग)					
	1961	1971	1981	1991	2001	2011	2021
पुरूष	5.8	6.0	6.6	6.8	7.8	9.0	9.8
महिला	5.5	3.9	6.4	6.7	7.1	8.2	8.9
कुल	**5.6**	**6.0**	**6.5**	**6.8**	**7.4**	**8.6**	**9.0**

स्रोत :–https://census in Ujjain

वर्तमान समय से आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण तथा आधुनिक शिक्षा द्वारा विकास की गति तीव्र हुई है जिससे भारत के सांस्कृतिक मूल्यों, प्रतिमानों एवं मानदण्डों के स्वरूपों में भी परिवर्तन हुआ है। आज हर व्यक्ति आधुनिक सुख सुविधाओं से भरा जीवन व्यतीत करना चाहता है और इन सुविधाओं को जुटाने की होड़ में व्यक्ति स्वकेंद्रित होता जा रहा है। अब स्वास्थ्य सेवाओं में विस्तार से मृत्यू दर में कमी

एवं शिक्षा व संचार माध्यमों के द्वारा जनचेतना में जागरूकता बढ़ी है वहीं जीवन प्रत्याशा में भी वृद्धि हुई है। जिसके परिणामस्वरूप वृद्धजनों की संख्या मे भी वृद्धि हुई है जिसे उपरोक्त तालिका के माध्यम से समझाा जा सकता है।

पहले के समय में संयुक्त परिवारों का प्रचलन था जो जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, शारीरिक आदि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। लेकिन वर्तमान समय के परिवार का स्वरूप बदलकर एकल हो गया है जिससे वृद्धजन अब सम्पूर्ण संयुक्त परिवार की जिम्मेदारी न होकर उस एकल परिवार के मुखिया की जिम्मेदारी बन गए है, जहां वे निवास कर रहे है तथा अपने बच्चों पर आश्रित हो गए है। इस अवस्था मे वृद्धजनों की शारीरिक शक्ति एवं मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है तथा वे दुर्बल हो जाते है जिस कारणवश वे अपने निजी कार्यों के लिए एवं आर्थिक रूप से भी दूसरों पर आश्रित हो जाते हैं। उज्जैन नगर में आश्रित वृद्धजनों की संख्या हम निम्न तालिका के माध्यम से देख सकते हैं–

तालिका संख्या 2 :
परिवार पर निर्भर वृद्धजनों का प्रतिशत

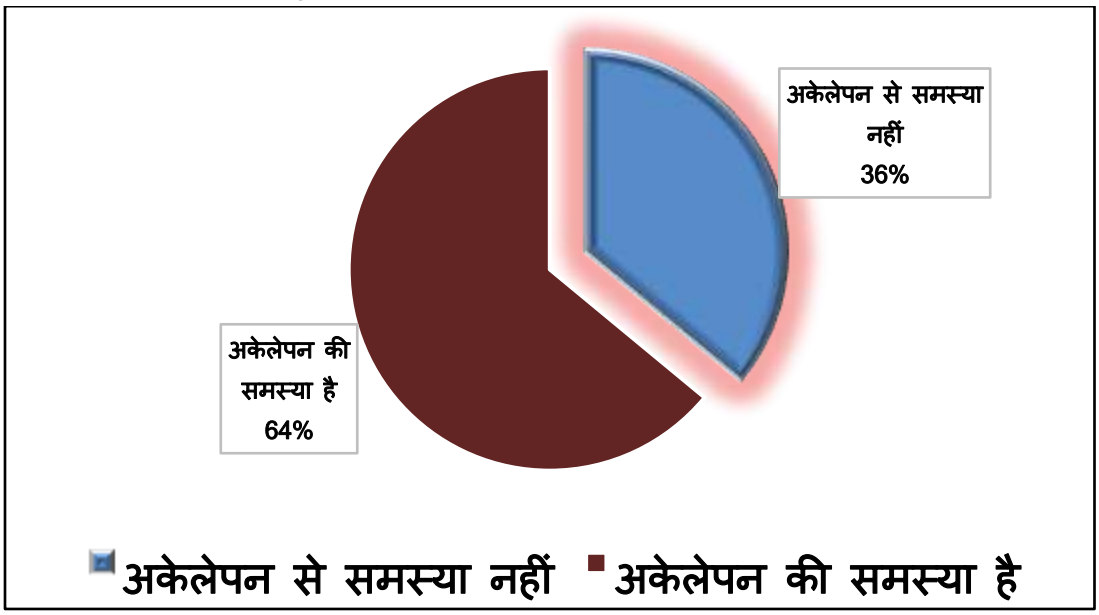
	निर्भर वृद्धजनों का प्रतिशत			
वृद्धजन	निर्भर	आत्मनिर्भर	संख्या	
	62%	38%	19	31
कुल	100%		50 वृद्धजन	

स्रोत :– प्राथमिक स्रोत

वर्तमान समय में एकल परिवार होने से परिवार में सिर्फ माता–पिता और बच्चे होते है वही किसी कारणवश यदि एकल परिवार के सदस्यों को वृद्धजनों के साथ रहना पड़ता है या वृद्धजनों को इस एकल परिवार में आकर रहना पड़ता है तो कई ऐसे परिवार होते हैं जिनके सदस्यों को वृद्धजनों से कई परेशानियां होने लगती है तथा उनकी वजह से भी वृद्धजनों को कुछ परेशानियां होने लगती है वही कुछ ऐसे परिवार भी होते है जहां वृद्धजनों को बहुत मान–सम्मान से रखा जाता है तथा उन्हें परिवार के मुखिया की तरह देखा जाता है। संयुक्त परिवार में वृद्धजनों को अकेलेपन की समस्या सामान्यतः कम होती है परन्तु एकल परिवार में सभी सदस्य अपने–अपने कामों मे व्यस्त रहते हैं जिससे वे वृद्धजनों के साथ कम वक्त व्यतीत कर पाते है तथा कभी–कभी वृद्धजनों के पास बैठने का एकल परिवार के सदस्यों के पास वक्त ही नहीं मिल पाता है।

अतः ऐसी स्थिति मे वृद्धजनों को परिवार के होते हुए भी अकेलेपन की समस्या का सामना करना पड़ता है। उज्जैन नगर मे ऐसे वृद्धजन जिन्हें अकेलेपन की समस्या का सामना करना पड़ता है। इनकी संख्या हम निम्न तालिका के माध्यम से देख सकते हैं–

तालिका 3 :
वृद्धजनों में अकेलेपन की समस्या का प्रतिशत

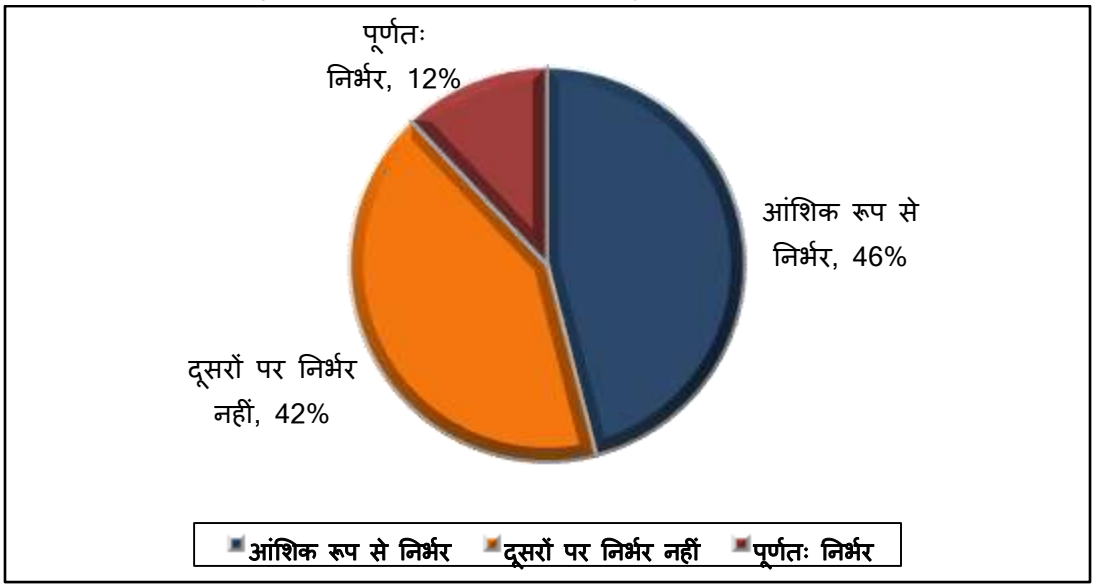


स्रोत :– प्राथमिक स्रोत

ऐसे वरिष्ठ व्यक्ति जो अनौपचारिक तथा असंगठित क्षेत्र में कार्य करते थे उन्हें वृद्धावस्था में पेंशन जैसी आर्थिक सुरक्षा का लाभ नहीं मिल पाता हैऔर यदि सरकार की कुछ योजनाओं के माध्यम से मिलता भी है तो बहुत कम आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति में वृद्धों को वृद्धावस्था में भी असंगठित क्षेत्र मे कार्य करना पड़ता है या अपनी आजीविका हेतु किसी दूसरे साधन की व्यवस्था करनी पड़ती है। अन्य को अपने जीवन यापन हेतु अपने परिवार के सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है और अपनी छोटी से छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु परिवार पर निर्भर होकर उनसे आशा लगानी पड़ती है। उज्जैन नगर में ऐसे निम्न वृद्धजन हैं जो आर्थिक सहायता हेतु अपने परिवार पर निर्भर हैं जिन्हें हम इस तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं–

तालिका 4 :

वृद्धजनों की आर्थिक सहायता हेतु परिवार पर निर्भरता का प्रतिशत



स्रोत :– प्राथमिक स्रोत

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य उज्जैन नगर में निवासरत वृद्धजनों की पारिवारिक प्रास्थिति के विषय मे अध्ययन करना है। यह शोध प्रपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक अध्ययन स्रोत के लिए मुख्य रूप से साक्षात्कार, अनुसूची एवं अवलोकन का प्रयोग किया गया है तथा द्वितीयक स्रोत हेतु शोध प्रबंध, पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तकें तथा इंटरनेट आदि का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :

वर्तमान समय मे बढ़ती तकनीक एवं आधुनिकता के कारण व्यक्ति अपनी परम्पराओं एवं संस्कारों में भी परिवर्तन करने लगा है। जिस कारण वह बुजुर्गों के प्रति भी उदासीन व्यवहार करने लगा है। इसलिए ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि वर्तमान समय मे वृद्धजनों की सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि उन्हें जो स्नेह तथा देखभाल की आवश्यकता है वह आज की पीढ़ी से मिलना कठिन हो गया है। परम्परागत समाज मे जहां बुजुर्गों को अपनी आयु एवं अनुभव के कारण जो उच्च एवं श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ करता था। वहीं आज के जटिल समाज मे अधिक आयु तथा शक्तिहीन होने के कारण बेकार एवं निर्भर समझा जाने लगा है जिससे उन्हें अब परिवार वाले केवल बोझ के रूप मे समझते है तथा समाज एवं लोकलाज के दवाब मे उस बोझ को मजबूरी मे आकर उठा रहे है। ऐसे परिवारों तथा समाजों मे वृद्धजनों की स्थिति अत्यन्त गम्भीर होती है। जहां वे सबके साथ रहते हुए भी अकेलेपन, कुंठा तथा मानसिक पीड़ा में अपना जीवन व्यतीत करते है।

वृद्धावस्था व्यक्ति के जीवन का अन्तिम पड़ाव है जहां वृद्धजनों का देखभाल एक शिशु की भांति करने की आवश्यकता होती है, परन्तु इस अवस्था मे उन्हें शारीरिक तथा मानसिक ताड़ना का शिकार होना पड़ता है। इस शोध–पत्र के आधार पर यह भी निष्कर्ष देखा गया कि उज्जैन शहर के बुजुर्ग अकेलेपन की समस्या के साथ–साथ आर्थिक रूप से भी अपने परिवार पर निर्भर है। जहां उन्हें अपनी छोटी से छोटी आवश्यकता के लिए भी अपने परिवार के लोगों से सहायता मांगनी पड़ती है। स्वास्थ्य से सम्बन्धित आवश्यक दवायें एवं अन्य वस्तुएं भी उन्हें उचित समय पर मिलना कठिन हो जाता है। परन्तु दूसरी ओर बुजुर्गों का एक ऐसा

वर्ग भी है जो पूर्णतः आत्मनिर्भर एवं सक्षमहै जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किसी के सामने निर्भर नहीं है। वह अपना कार्य तथा आवश्यक साधन स्वयं जुटाने मे समर्थ है।वो लोग न तो अपने पुत्र–पुत्रियों या अन्य किसी परिवारजन पर निर्भर है और न ही समाज मे उन्हें सहायता लेने की आवश्यकता है। वह अपने साथ–साथ अपने परिवार का भी पालन करते है। ऐसे कुछ ही वृद्धजन है जिनकी स्थिति ठीक है, परन्तु निर्भर तथा आश्रित वृद्धजनों की संख्या अधिकांश है जिनकी स्थिति को सुधारना तथा उन्हें बेहतर जीवन प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक कार्य है। इसी सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र ने भी 14 दिसंबर 1990 को अन्तर्राष्ट्रीय वृद्धजन दिवस के रूप मे मनाने का निर्णय किया। जिसका उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों और बुजुर्गों का सम्मान एवं उनके हितों पर चिंतन करना था।

सुझाव :

1) परिवार के सदस्योंतथा दूसरे लोगों को भी वृद्धजनों को मात्र बोझ समझने की मानसिकता में सुधार लाना होगा जिससे वृद्धों के अनुभवों से जीवन के कठिन परिस्थितियों मे समाधान मिल सकेगा।

2) वृद्धजनों के स्वास्थ्य एवं मूलभूत आवश्यकताओं का ध्यान परिवारजन को रखना होगा जिससे उनका मानसिक तनाव कम हो सके।

3) सरकार द्वारा वृद्धजनों के कल्याण हेतु बेहतर योजनाएं एवं कानून बनाने होंगे तथा उन्हें सुचारू रूप से लागू भी करना होगा जिससे उनकी स्थिति अच्छी हो सके।

4) वृद्धजनों के संरक्षण हेतु कठोर कानून बनाने होंगे ताकि परिवारजन द्वारा उन्हें प्रताड़ित न किया जा सकें।

5) परिवार के सदस्यो द्वारावृद्धजनों को धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों मे शामिल करना होगा ताकि उन्हें अकेलापन महसूस न हो।

6) वृद्धजनों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु सरकार द्वारा ठोस प्रयास करने होंगे।

7) पारिवारिक एवं अन्य सामाजिक मामलों में वृद्धजनों से विचार–विमर्श करना चाहिए एवं विभिन्न अवसरों पर उन्हें उचित स्थान, सम्मान भी देना होगा, जिससे उन्हें पारिवारिक अलगाव महसूस ना हो।

8) परिवार, समुदाय तथा समाज को जागृत करना होगा जिससे वे वृद्धों के प्रति अपने दायित्वों को समझ सकें ।

9) अपने परम्परागत सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों के प्रति लोगों को जागरूक बनाना होगा जिससे वे वृद्धों का सम्मान कर सकें।

10) विविध विषयों मे वृद्धावस्था से सम्बन्धित पाठ्यक्रम लागू करना होगा, जिससे नवीन पीढ़ी के बालकों को भी बुजुर्गों के प्रति व्यवहार की दृष्टि से संवेदनशील बनाया जा सकें।

संदर्भ ग्रंथ–

- कुमारी, सुषमा, भारतीय समाज में वृद्धों की समस्याओं के कारण एवं समाधान, 6(10), इंटरनेशनल जर्नल, 779–783।
- खान, के. ए., (2021), *मध्यप्रदेश सिविल सेवा (पेंशन) नियम 1976*, श्रीरंग ऑफसेट, इंदौर।
- गुप्ता, डॉ. सुभाष चन्द्र, शर्मा, डॉ. कंचन लता, (2002), *वृद्ध महिलाओं की उपेक्षा, शोषण एवं समस्याएं*, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- झुनझुनवाला, दीनानाथ, (2009), *वृद्धावस्था की समस्या एवं समाधान*, पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी।
- भारद्वाज, कमलेश, गुप्ता, सुभाषचन्द्र, (2022), *भारत में वृद्धों की समस्याएँ*, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

- पेंशन – विकिपीडिया।
- मध्यप्रदेश शासन सामाजिक सुरक्षा पोर्टल –Socialsecurity.mp.gov.in
- India.gov.in.nps
- www.tv9hindi.com.ops
- https://historyofindianpensionsystem
- https://vikaspidia./social-welfare/senior-citizens-status-in-india
- Elderly in India profile and programs (2016), MOSPI, CSO, Social Statistics Division Government of India.
- https://census in Ujjain

Attitude of Pupil Teachers towards the Use of ICT in Teaching & Learning

Naina Chaurasiya
Research Scholar
Department of Education,
M G KashiVidyapith,Varanasi

ABSTRACT

The potentials of information and communication technology (ICT) to improve teaching, to facilitate students' learning, and to enhance institutional administration had been well established in literature.Information and communication technology play a vital role in not only enhancing teachers' instruction and students' learning but also catalysing improved access to quality education in both formal and non-formal settings of education.Recognizing the impact of technologies on the workplace as well as everyday life, teacher educational institutions are also trying to restructure their education programs. In order to utilize the potentials of ICT to improve the productivity of teacher education these institutions are modifying their classroom facilities. Information and communication technology as a toolswithin the institutional environment include not only the use for administration and management but it is successfully used for enhancing the presentation of classroom work, intellectual learning, thinking and problem solving skills, stimulating creativity and imagination. ICT is widely being used as ainstruction tool and communication tool by teachers and means to gather information and presentation by the students.

KEYWORDS:ICT, Attitude, Pupil Teacher

INTRODUCTION

Information and communication technology are the hardware and software that enables data to be processed digitally, to be stored and to be communicated. ICT important for us in several ways it can be used to present, access, process and manage information and model. ICT can control events and communicate with others and construct new understanding also. These are computer-based tool used by people to work with information and communication processing needs of an organisation. It covers computer hardware and software, the network and other digital devices like videos, audios, camera and so on. Which converts information into digital forms now a days we have become too much familiar with ICT devices and it has become very important in our daily lives. It provides us appropriate information at right time. The lack ofappropriate information may lead to low productivity, waste of time and low quality research work. With the help of ICT. we can get connected with our family, relatives or friends even if we are abroad we can use electronic mail, messenger, call conference or video conference to be connected with them. ICT is an inter disciplinary domain which focuses on providing students with the tools that can be used to transform their learning and to enrich their learning environment. The behaviour, knowledge skills identified for this domain enables students to develop thinking, learning as well as skills that produce innovative insights and creativity among them.Successful integration of ICT in the school system depends largely on the competence and

on the attitude of teachers towards the role of modern technologies in teaching and learning. Although the quantity and quality of technology placed in classroom is important, but the key is that how those tools are being used by the teachers. Attitudes are determined by the analysis of the information regarding the result of an action and by the positive or negative evaluation of these results.

NEED OF THE STUDY

It is difficult and may be even impossible to imagine future learning environments that are not supported, in one way or another by Information and Communication Technology looking at the current widespread diffusion and the use of ICT in modern societies, especially by the youth the so called digital generation it should be clear that ICT will affect the complete learning process today and in the future There is, in other words why a widespread belief that ICTs have an important role to play in changing and modernizing educational system and ways of learning.ICT generally has a positive impact on learning but the expectations that ICT could in some ways revolutionize processes at school have not yet been realized. This goes beyond the use of Computers by teachers since not only by PCs and the internet but also digital cameras, mobile phone, and other technologies can help to change teaching processes. But clearly, ICT has not revolutionized teaching methods so far. As a generalstatement it might be said that ICT proficiency will be at the centre of required skills in the future. Integrating ICT literacy will be crucial, as it means harnessing technology to perform learning skills it must encompass the use of ICT to manage complexity, solve problem and think critically, creatively, and systematically towards the goal of acquiring thinking and problem solving skills. Literacy must also comprise the use of ICT to access, manage, integrate, evaluate, create and communicate information in order to develop ICT skills.

STATEMENT OF THE RESEARCH PROBLEM

Attitude of Pupil Teachers towards the use of ICT in Teaching & Learning.

OPERATIONALDEFINITIONOFTHETERMUSEDINTHE STUDY

1. ICT

In the present study Information and Communication Technology are defined, as a "diverse set of technological tools and resources used to communicate, and to create, disseminate, store and manage information". These technologiesinclude computers, computer works stations, display facilities, hardware, software recording and processing system for sound, still and moving pictures, graphical calculator, the internet, broad casting technologies (Radio and Television) and other wide range of communication facilities. It may also be defined as use of hardware and software.

2. Attitude

In the present study Attitude is a settled way of thinking or feeling, typically reflected in a person's behaviour. Attitude refers to the feelings, opinions and beliefs of Pupil teachers towards ICT use in classroom.

3.Pupil Teachers

In the present study the means of Prospective teachers is the B.Ed. Student-teachers, who they are admitted in Pre-service teacher education program in college of education.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. To find out the level of student teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Gender.
2. To find out the level of student teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Academic Adjustment.
3. To find out the level of student teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Habitat.

NULLHYPOTHESES

H_{01}. There is no significant difference between student teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Gender.

H_{02}. There is no significant differencestudent teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Academic Adjustment.

H_{03}. There is no significant difference between student teachers' attitude towards the use of ICT on the basis of Habitat.

POPULATION

The Population of the study comprised Pupil Teachers of College of Education of the Varanasi District affiliated to Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth.

SAMPLE AND SAMPLING

The sample for the present study was comprised 150pupil teachersof Varanasi district which was selected through simple random sampling method.

RESEARCH TOOLS

An attitude scale byZare-ee, Shekarey and FathiVajargah, 2009 was used to test Pupil teachers' attitude towards the use of ICT in teaching and learning.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA

In analysis the collected data were tabulated and statistical techniques were employed as per research design of the study. All the hypotheses were tested at 0.05 level of significance using mean, standard deviation and t-test.

The Null hypothesis No. 1 was that there was no significant difference.

This hypothesis was tested by calculating means, standard deviation and t-value.The means, standard deviation and t-value are given in the table 1 below:

TABLE-1

SHOWING„t" VALUES INDICATES THAT SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN ATTITUDE OF PUPIL TEACHERS OF MALE AND FEMALE PUPIL TEACHERS TOWARDS THE USE OF ICT

Background	N	Mean	S.D.	t-Value	Null Hypothesis

Male	49	77.66	7.88	0.64	Failed to Reject
Female	101	78.60	7.65		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.64This indicates that there is no significant difference in attitude towards the use ICT on the basis of Gender.

TABLE-2

SHOWING „t" VALUES INDICATES SIGNIFICANCE OF IMPACT OF ATTITUDE TOWARDS THE USE OF ICT ON ACADEMIC ADJUSTMENT OF PUPIL TEACHERS

Background	N	Mean	S.D.	t-Value	Null Hypothesis
Arts	109	78.15	8.96	0.58	Failed to Reject
Science	41	78.87	7.87		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.58 This indicates that there is no significant difference in attitude towards the use ICT on the basis of Academic Adjustment.

TABLE-3

SHOWING „t" VALUES INDICATES SIGNIFICANCE OF IMPACT OFATTITUDE TOWARDS THE USE OF ICT ON ACADEMIC ADJUSTMENT OF PUPIL TEACHERS

Background	N	Mean	S.D.	t-Value	Null Hypothesis
Urban	61	79.42	7.85	1.47	Failed to Reject
Rural	89	77.58	9.17		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 1.47. This indicates that there is no significant difference in attitude towards the use ICT on the basis of Habitat.

REFERENCE-

- Gupta, M. & Gupta, V. K. (2014). Role of ICT in school education for teaching and learning. *International Journal of Education and effects of ICT on Teaching and Learning,* 7(2), 225-227
  https://www.researchgate.net
- Hasmah, W. (2018). Study on utilization of ICT by moral education by teachers. *The Malaysian Online Journal of Educational Technology,* 1(4),49-51. https://www.researchgate.net
- Savitha, N. &Guddadanveri, S. P. (2020). Effectiveness of using Activitybased ICT (Information Communication Technology) Teaching strategy in Development of Professional Skills among Students Teachers in Teacher Education Programme. *Students International Journal of Recent Advances in Multidisciplinary,* 1(1), 13-15
  http://hdl.handle.net/10603/464143
- Shah, Ab. W. (2016). *Attitude towards ICT in relation to adjustment and achievement among secondary with school students' special reference to gender, rural/urban dichotomy and type of management.* [Unpublished Doctoral Thesis, University of Kashmir] Srinagar J&K.
- Siddiqui, M. A. & Abraham, J. (2015). "The availability of ICT facilities and Teachers' Competence in the use of ICT among Public Secondary School in Ngara district, Tanzania. *East African Journal of Education andand Social Science,* 2(2),34-40
  https://www.ajol.info
- Singh, V. P. & Husain A. (2015). Multimedia for learning and teaching of science at elementary level learning technologies in education. Excel India publishers, New Delhi.
- Mehra, V. Nikkah, Z. (2009). University teachers' attitude towards Information Communication Technology. *Journal of Teacher Education and Research,* 9(1),81W
  https://www.researchgate.net

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

ग्रामीण समाज में पशुधन की भूमिका : राजसमन्द जिले का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

हरि प्रसाद यादव
शोधार्थी– समाजशास्त्र विभाग
मेहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर (राज.)

प्रस्तुत अध्ययन पशु धन और ग्रामीण समाज की अंतनिर्भरता से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय, मानवशास्त्रीय, अवधारणाओं का अध्ययन किया है। भारतीय समाज में कुछ पूजनीय देवता पशु रूप में है तथा उनकी सवारी में पशु दिखते है। हिन्दूओं के भगवान श्री गणेश का मुख गज के समान है तो शंकरजी की सवारी में नंदी बैल है। शक्ति की सवारी सिंह तो विष्णु भगवान गरूड़ पर विराजित है। ग्रामीण भारत में बारह मास प्रकृति पूजन में पशुओं का समाजिक सांस्कृतिक महत्व हैं। कुछ पशुओं की पूजा की जाती है और कुछ पशुओं की बलि भी दी जाती है। ईस्लाम में बकरा ईद पर बकरें, भैंसे और उपलब्धता के अनुसार सुअर को छोड़ सभी पशुओं की कुर्बानी दी जाती है। बहुत से समुदायों में पशु क्रिड़ा का महत्व है, जिसमें गोपाष्टमी (खेखरा) और दक्षिण भारत में जल्लीकूट प्रमुख हैं। राजसमन्द जिले की रेलमगरा पंचायत समिति में कृषि और पशुधन पर मिश्रित कृषि करते हैं। कृषि का सम्बन्ध समाजशास्त्र बगैर पशुपालन की गतिविधियों के पूर्ण नहीं होती है। पशुधन से ग्रामीण समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन है, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, चिकित्सकीय, प्रजनन आदि से पशु धन का सम्बन्ध ग्रामीण समाज से जुडा रहता है। भारत की लगभग अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और उनमें से अधिकांश के पास पशु धन हैं। जिसमें पशु पालको के व्यवहार, उनकी प्रस्थिति, संस्कृति, समुदाय आदि के बारे में गहरी अंतःदृष्टि प्राप्त करने में मदद करते हैं।

पशुओं से प्राप्त उत्पादो को भोजन के रूप में काम लेते है जिसमें दूध, दही, घी, अण्डा, मांस को लेते है। पशु के दूध, दही से भगवान को नहलाने में, अर्पित करने में लेते हैं। गाय को माता मान कर पूजते हैं। गौमांस और गौ हत्या पर प्रतिबंध है। पशु के गोबर से कडे बना कर उर्जा रूप में काम लेते है। भगवान के भी धूप–दान में काम आते, कच्चा घर बनाने में मिट्टी के साथ गोबर का प्रयोग करते है। घर के कच्चे आंगन की लिपाई में भी पशु का गोबर मिट्टी के साथ गोबर डाल कर काम में लेते हैं।

ग्रामीण समाज को एवं मानव को पशुधन से निम्न लाभ होते हैं–

1. **आर्थिक स्थिति–** पशुओं से प्राप्त दूध, दही, घी, गोबर, मांस इनको बेचकर ग्रामीण पशुपालक आर्थिक जीवन एवम् उसका पारिवारिक खर्च निकालता है। कृषि कार्य में भी पशु काम लेते है। खेतों में हल चलाने में, निराई–गुडाई, फसलों को खेत–खलियान में, कुएं से पानी निकालने में जैसे – रहत आदि पशु श्रम को काम लेने पर आर्थिक नुकसान से बचते हैं।
2. **सामाजिक – सांस्कृतिक–** आदिकाल से ही मनुष्य पशु को साथ लेकर आया है। मनुष्य सुबह सूर्य उदय से लेकर सूर्य अस्त तक ग्रामीण पशुचालक अपने पशु के साथ दिनचर्या करता है। जिसमें सुबह उठकर दूध निकालना, चारा डालना, पानी पिलाना, नर पशुओं को खेत में ले जाना, खेतो में काम लेना और तीज–त्यौहारों पर पशुओं की पूजा करते है। धार्मिक अनुष्ठान में गाय को पवित्र पशु मानते है और माता के रूप में पूजते है। कुछ पशुओं अपवित्र की श्रेणी में माना गया जिसमें सुअर है। बछबारस के दिन गाय के बछड़े की पूजा महिलायें करती है। दीपावली के अगले दिन गोपाष्ठमी (खैखरा) के दिन नर बैलों को साज–सजावट करके, सींगो व खुरों व शरीर पर मांडने बनाकर, सींगों पर गुब्बारे लगाकर, गांव के मध्य में कंकू तिलक लगाकर पूजा करके अन्नकूट

खिलाकर भड़काते है और बैल भगाकर छूट जाते है। जिसे पशुपालक ढूंढ कर लाता है। शादी–विवाह में घोड़ें गाडियों पर लड़के–लड़कियों की बिन्दोली निकाली जाती है। ग्रामीणों में कन्या की शादी में गोदान का कन्यादान दिया जाता है। कुछ ग्रामीण लोग छोटे स्तर होने से वो अपनी लड़की को बकरी भी देते है।

3. **पशुधन की चिकित्सा –**
   - **परम्परागत चिकित्सा पद्धति**– गांवो में आज भी अशिक्षा होने से पुराने विचारधारा के लोग प्राचीन कालीन चिकित्सा पद्धति का प्रयोग करते है। जिसमें पशु के बीमार होने पर बावजी के देवरे में जाकर भोपा जी के भाव में जो बताया जाता है वो चिकित्सा करते है। पशु के धागा / तांती बांधना, पशु के शरीर पर नीम डाल फेरना, आंक की डाली फेरना एवं हनुमान जी, भेरा जी, जोडीया जी बावजी आदि देवी–देवताओं के यहां तांती/धागा, पानी चढाना खोल लाकर अपने के उपर डालना। बहुत से पशु पालक तो अपने पशु के शरीर पर डाम लगाना (दागना) जिससे पशु को असहनीय दर्द होता है।
   - **आधुनिक चिकित्सा पद्धति**– आज की 21 वीं सदी में पशुओं के उपचार के लिये सरकार ने पशुओं को बीमारी / रोग से बचाने के लिए नाना प्रकार की योजना चला रखी है जिसमें ईलाज एलोपेथिक विधि से करते है। चिकित्सा में रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण बीमारी के उदरान्त पशु की बीमारी की जांच के लिए जैसे – दूध, खून, चमड़ी, मूत्र, एक्स–रे, सोनोग्राफी आदि सुविधाऐं उपलब्ध है। पशु चिकित्सा पद्धति में नवनितम जागरूकता आयी है। ग्रामीण पशुपालकों के पास जागरूकता के अभाव के कारण एवं अशिक्षित होने से अपने पशु कि चिकित्सा समय पर सही उपचार विधि का प्रयोग नहीं कर पा रहे। राज्य सरकार ने पशुपालको को उनके पशु के लिये निःशुल्क दवा का वितरण, पशु चिकित्सालय में निःशुल्क दवा का वितरण, पशु चिकित्सालय में निःशुल्क उपचार उपलब्ध है।
4. **रोजगार –** ग्रामीण लोग कृषि के साथ पशुपालन करते है। गांवो में रोजगार का अभाव होता हैं इसलिए उनके पास कृषि और पशुपालन ही मुख्य रोजगार है। भूमिहीन किसानों के पास पशुपालन व्यवसाय ही है। जिससे उनकी आजीविका चलती है। जैसे – गौपालन, भैंसपालन, भेड़पालन, बकरीपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन आदि है। ज्यों–ज्यों शिक्षा का स्तर बढ़ा शिक्षित बेरोजगारो की संख्या में इजाफा हुआ। ग्रामीण परिवेश के शिक्षित बच्चों ने तो अच्छें नस्ल के पशु रखकर बेरोजगारी को दूर कर लिया है। पशुधन बेरोजगारी से भी छूटकारा दिला रहा है।
5. **पशुधन के लिए सरकारी योजनाऐं निम्न हैं–**
   - सामुदायिक विकास कार्यक्रम
   - राष्ट्रीय गोकुल मिशन योजना
   - राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम
   - राष्ट्रीय पशुधन मिशन
   - मूल ग्राम योजना
   - गोशाला विकास योजना
   - सघन पशु विकास योजना
   - मुख्यमंत्री पशुधन विकास योजना

- गौपालक बीमा योजना
- गौरक्षक बीमा योजना
- कामधेनू बीमा योजना

6. सुझाव–

- पशुपालन बढ़ाने के लिए लोगो को जागरूक करना चाहिए।
- सरकारी योजनाओं का फायदा पशुपालक को पहुचाना होगा।
- पशुपालन करके बेरोजगारी को दूर किया जाता है।
- लोगों को पशुधन के लाभ के बारे में बताना होगा।
- लोगों को आधुनिक पशु चिकित्सा के बारे में बताना और समझाना होगा।
- सरकार को पशुपालको का निःशुल्क बीमा कराना चाहिए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होवें।
- लोगों को पशुधन से प्राप्त उत्पादन के बारे में बताकर उचित मूल्य एवं लघु उद्योगों (डेयरी व्यवसाय, चाय होटल, पशु क्रय–विक्रय) के लिए जागरूक करना होगा।
- पशुधन के स्वास्थ्य के लिए टीकाकरण पर ध्यान देना चाहिए। समय पर पशु के टीका नहीं लगने से पशु की मृत्यु हो जाती हैं।
- पशुपालको को वैज्ञानिक तरह से पशुपालन कैसे करना उसका प्रशिक्षण समय–समय पर देना चाहिए।
- पशु मालिक पशु के क्रय–विक्रय पर उसकी अच्छी कीमत दिलवानी चाहिए। उसके लिए ई–पोर्टल ऑनलाइन लॉन्च करके पशुपालक अपने पशु का लेन–देन कर सके।
- पशुपालन व्यवसाय को आधुनिक काल में विकसित करने के लिए महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में अलग से विषय को जोड़ना चाहिए।
- सरकार को पशुओं की सामाजिक–सांस्कृतिक, तीज–त्योहारों को टी.वी, समाचार, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, फेसबुक पर डालना चाहिए इस से लोगो में जागृति आएगी और संस्कृति बनी रहेगी।
- नर पशुओं को कट्टर में जाने से रोकना।
- मादा पशु की बांझ चिकित्सा करवाना।
- आवारा पशुओं के लिए सरकार द्वारा टीम या कर्मचारी लगाकर उनको गौशाला में भिजवाना।
- पशुओं को आवारा छोड़ने पर पशु मालिकों को प्रतिबंधित करना।
- पशु की मृत्यु होने पर उसे खुला नहीं छोड़ कर आये, उसका व्यवस्थित गड्डा खोद कर उसमे नमक डालना चाहिये जिससे जूमोटिक बीमारियों को फैलने से रोक सकते है।

References (संदर्भ ग्रन्थ सूची)–

1. भारत में दूध उत्पादन (n.d.). Nddb.Coop. Retrieved December 8, 2021, from https://www.nddb,coop/hi/information/stats/milkproduindia
2. Animal Husbandry Rajasthan.Gov.In. Retrieved November 1,2021a (https://animalhusbandry.rajasthan.gov.in/livestock_census.aspx)
3. Britannica (2020) "Livestock" The Editors of Encyclopaedia
4. Dwight, Sanderson (2009, June16), Asanet.Org. https://www.asanet.org/about/governance-and-leadership/council/presidents/dwight-sanderson
5. Stuart, Chapin, (2009, June 15), Asanet.Org. https://www.asanet.org/about/governance-and-leadership/council/presidents/f-stuart-chapin
6. Desai, A. R. (1986). "Agrarian Struggles in India After Independence" New Delhi: Oxford University Press.
7. Smith, T. Iynn (Thomas Lynn), 1903-1976. (n.d.) Snaccooperative.org. Retrieved December 8, 2021, from https://snaccooperative.org/ark:/199166/w6j6897r
8. Sanders, Clinton R.(n.d.).2021, "The sociology of human-animal interaction and relationships" – H-Net.Org. Retrieved December 8, from https://netwirjs.h.net.org/node/16560/pages/32228/sociology-human-animal-interaction-and-relationships-clinton-r-sanders
9. Anon. (2021). "Chapter 15 Animals in Religion and Folklore." In Animals and Society. Columbia University Press.
10. The question of non-human animals in sociology (n.d.) Animalsandsocety.org. Retrieved December 8, 2021, from https://www.animalsandsociety.org/human-animal-studies/sloth/sloth-volume-4-no-1-winter-2018/question-non-human-animals-sociology/
11. Vital, A., & Pollo, S (Eds), (2021) Human/ Animal Relationships in Transformation Scientific, Moral and Legal Perspectives (1st ed.) Springer Nature
12. Saxena, N.C. (2020), Land, Livestock and the rights of woman in rural India. In Women, Land & Power in Asia (pp. 244-247). Routledge India.
13. Hobson-West, Pru,andJtel, Annemarie (2020) "Animals, Yeterinarians and the Sociology of Diagnasis. "Sociology of Health & Illness42(2) 393-406.
14. Lodrick, Deryek O (2019) "Ahimsa, Man and Animals: Aspects of Religion in the Cultural Landscape of Western India." PP. 247-266 In India: Cultural Patterns and Processes. London, England: Routledge.
15. Fischer, Johan &, Roskilde (2019 "Veg or Non-Veg) From Bazaars to Hypermarkets in India. "International Journal of Asia Pacific Studies 15(1); 1-32.
16. Gundimeda, Sambaiah, & Ashwin V.S. (2018) "Cow Protection in India: From Secularising to Legitimating Debates. "South Asia Research 38(2): 56-76.

17. Gill, M., Gibson, J.P. & Lee, M.R.F. (2018) "Livestock Production Evolving to Contribute to Sustainable Societies." Animal: An International Journal of Animal Bioscience 12(8); 1696-98.
18. Carter, Bob & Chrles, Nickie. (2018) "The Animal Challenge to Sociology." European Journal of Social Theory 21 (1): 79-97.
19. शेखावत, उगमसिंह (2017) "पशुपालन प्रसार" पंचम संस्करण, जयपुर, साक्षी पब्लिशिंग हाउस
20. बेनीवाल, अंजु (2013) "ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन" जयपुर, गौतम बुक कम्पनी
21. Peggs, K. (2012) "Animals and Sociology", Palgrave Macmillan, UK, Page 177
22. Leslie, A. White: (2004) Evolution and Revolution in Anthropology by William Peace, University of Nebraska Press.
23. तापड़िया, ए. एल. एवं मुर्डिया, पी. सी. (2003) "पशुपालन एवं दूग्ध विज्ञान" जयपुर, युनिवर्सिटी बुक हाउस
24. Friedland, W.H. (1982), "The End of Rural Society and the Future of Rural Sociology." Rural Sociology, 47(4), (Winter 1982): 589.

Effect of Vedic Teaching Method on Mathematics Achievement and Mental Ability among Middle Level Students

JYOTI JHA
Research Scholar
Department of Education, M.G. KashiVidyapith,Varanasi

Abstract
Mathematics is the language of sciences and certainly no more marvelous language was ever created in the mind of man. In the present education system some of the students are getting bored and are not interested in teaching Conventional Mathematics. So, many students are lagging behind in mathematics. Moreover, due to lack of interest, wastage and stagnation comes. There is an urgent need to implement new techniques of teaching mathematics which can boost the interest of the students. The question of teaching the best method in mathematics is constantly hindering the researcher. Today, Vedic Mathematics is broadly used worldwide which is demonstrated in our ancient books so Indian cultural Vedic Mathematics should also be used in Indian education, which is a needof time. Vedic Mathematics is an ancient technique, which simplifies multiplication, divisibility, complex numbers, squaring, cubing, square and cube roots. Even recurring decimals and auxiliary fractions can be handled by Vedic Mathematics.
This study focuses on the effect of the Vedic teaching method on mathematics achievement and mental ability among middle-level students, encompassing the crucial educational years typically spanning grades 6 to 8. Rooted in ancient Indian mathematics and philosophy, the Vedic teaching method presents a unique approach to mathematics education, emphasizing intuitive problem-solving, creativity, and a holistic understanding of mathematical concepts. Through a systematic review of literature, empirical analysis, and data-driven insights, this study delves into the question of whether the Vedic teaching method enhances middle-level students' mathematical proficiency and promotes broader cognitive development. The findings of this study offer valuable insights into the potential benefits of the Vedic teaching method, shedding light on its effectiveness in improving mathematics achievement and bolstering mental abilities among middle-level students. The implications of this research extend to educators, policymakers, and stakeholders in mathematics education, suggesting innovative avenues for fostering mathematical excellence and cognitive growth in young learners.
KEYWORDS: *Effect, Vedic mathematics, achievement in mathematics, mental ability in mathematics, middle level students.*

INTRODUCTION

Mathematics is the study of numbers, quantity, space, structure and change. It is a branch of science that uses numbers and symbols which are arranged using systematic mathematics rules. It can create moments of pleasure and wonder for all pupils when they solve a problem for the first time, discover a more efficient solution, or notice hidden connections. But the essence and nature of teaching mathematics is degrading day by day which creates a fear and phobia among students. Due to excessive use of electronic gadgets and internet software,

students and teachers both are diverting their path from an efficient and effective teaching learning process. Now a student is laying less stress on mental calculation and is more dependent on the gadgets and software for the solution. Vedic mathematics is a unique method of solving problems by the use of fast calculations. It is a unique system as it helps to solve all kinds of mathematical problems easily and efficiently. The goal of teaching mathematics is not just academic achievement but its personal and professional growth also. Vedic mathematics not only helps in understanding the concept efficiently but also brings interest while learning mathematics through magical techniques. Mathematics education is a cornerstone of intellectual development, and its importance in fostering mental ability, critical thinking, problem-solving abilities, and cognitive growth cannot be overstated. In recent years, educators and researchers have explored innovative teaching methods and pedagogical approaches to enhance the learning experience of middle-level students, typically those in grades 6 to 8. Among these approaches, the Vedic teaching method, rooted in ancient Indian mathematics and philosophy, has emerged as a compelling alternative with the potential to significantly impact mathematics achievement and mental ability among students at this critical stage of cognitive development.

The Vedic teaching method draws its inspiration from Vedic mathematics, a system of mathematical techniques and principles found in ancient Indian texts, primarily the Vedas. At its core, Vedic mathematics encourages students to develop into mathematical concepts intuitively, promoting flexibility, creativity, and a deeper understanding of mathematical principles. The ancient systems of Mathematics were rediscovered from Vedas by Jagadguru Swami BharathikrishnaTirthaji of GovardhanPeeth, PuriJaganathOrissa.It includes 16 Sutras & 13 Sub-Sutras for simpler manners. With the help of Sutras & Sub-Sutras we will be able to resolve fundamental mathematics which is being widely used even after academics.

For example :

Squaring of numbers ending with "5"

45 * 45 = ?

Modern Math : Multiply each with others & then add the result.

Vedic Math : Multiply the previous digit (4) by one more than itself i.e 5. & then add 25 in the end.

Result will be 2025. Similarly we can look for 65*65, 105*105 etc..

So, if students are taught to solve Mathematical problems using various techniques of Vedic Mathematics from primary level, then their Mathematical abilities can be developed. The power to learn or retain knowledge is mental ability. It is the ability to understand the facts and significance of behavior (Ben Davis 2021). Mental ability is a phrase that describes how well a person learns, comprehends instructions, and solves issues. The mental ability in mathematics develops various abilities and attributes in the students as shown below:

- Intelligence development
- Imagination ability
- Think rationally
- Reasoning development
- Practical ability
- Concentration
- Speed in doing work
- Observation ability

- Habit of doing independently
- Enhancement in self-belief

NEED OF THE STUDY

Mathematics is the study of numbers, quantity, space, structure and change. It is a branch of science that uses numbers and symbols which are arranged using systematic mathematics rules. It can create moments of pleasure and wonder for all pupils when they solve a problem for the first time, discover a more efficient solution, or notice hidden connections. But the essence and nature of teaching mathematics is degrading day by day which creates a fear and phobia among students. Due to excessive use of electronic gadgets and internet software, students and teachers both are diverting their path from an efficient and effective teaching learning process. Now a student is laying less stress on mental calculation and is more dependent on the gadgets and software for the solution. Vedic mathematics is a unique method of solving problems by the use of fast calculations. It is a unique system as it helps to solve all kinds of mathematical problems easily and efficiently. The goal of teaching mathematics is not just academic achievement but its personal and professional growth also. Vedic mathematics not only helps in understanding the concept efficiently but also brings interest while learning mathematics through magical techniques. And these techniques help the students to resist the concepts for longer duration. Vedic mathematics is found more effective in solving multiplication problems than traditional technique (Sharma, 2014). Jiji (2012) also found Vedic mathematics is more effective, in terms of students' achievement in mathematics, than talk and chalk method. But almost all the studies were conducted on English medium students (e.g., Jiji, 2012; Sharma, 2014), covering only a few topics (e.g., multiplication and divisions in arithmetic) and no practical significance (effect size) was given. So to overcome this knowledge gap, the present study was conducted on students of class VII. The study covered the major topics viz., square, square-root, factorization of algebraic expressions and simultaneous simple equations. So the results of the study can contribute an effective and interesting mathematics problem solving approach with high speed and accuracy to educational planners and curriculum developers.

Hence researcher will take this study because as Vedic Mathematics has been part of the Indian ancient education system, which focuses on solving numerical computations quickly and faster.

STATEMENT OF THE RESEARCH PROBLEM

Effect of Vedic teaching method on mathematics achievement and mental ability among middle level students.

OPERATIONAL DEFINITION OF THE TERM USED IN THE STUDY

1. Effect

Effect refers to the degree to which something is successful in producing a desired result or achieving a specific goal. It is a measure of how well an action, process or program has accomplished its intended objectives or outcomes.

In the present study effect implies the impact measured by student achievement and mental ability in Mathematics.

2. Vedic Mathematics

'Vedic Mathematics' is an ancient unique method of calculations based on simple rules and principles, with which, verbally, any mathematical problem can be solved be it algebra, trigonometry, arithmetic or geometry.

It is an ancient method, which simplifies multiplication, division, complex numbers, squaring, cubing, and square and cube roots. Even recurring decimals and auxiliary fractions can be handled by Vedic Mathematics.

In the present study, Vedic teaching method consists of 16 sutras and 13 sub-sutras which are used for solving mathematical problems in a far simpler manner.

3. Achievement in mathematics

Achievement in mathematics refers to a level of proficiency or mastery that person has attained in the subject of mathematics. This may involve the ability to solve complex problems, understand and apply mathematical concepts and principles, or communicate mathematical ideas effectively.

Achievement in mathematics refers to marks secured by the students in an achievement test constructed and administered by the investigator.

4. Mental ability in mathematics

Mental ability refers to the development of the brain and intelligence of children, so that mental abilities develop in them and they do not face difficulty in reading, writing and adjustment. Mental ability refers to the skill of finding a solution to the given problem. It is the process of all intellectual functions and processes, a higher order cognitive process that requires the modulation and control of more routine or fundamental skills.

5. School Students

School students are those who are studying in VII class in Gov. aided schools in Varanasi district.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. To study the effect of Vedic teaching methods on the achievement in mathematics of class VII students.
2. To study the effect of Vedic teaching methods on the achievement in mathematics of class VII male and female students.
3. To study the effect of Vedic teaching methods on the mental ability in mathematics of class VII students.
4. To study the effect of Vedic teaching methods on the mental ability in mathematics of class VII male and female students.

NULL HYPOTHESES

H01. There is no significant difference of Mathematics Achievement among students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

H02. There is no significant difference of Mathematics Achievement among male and female students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

H03. There is no significant difference in Mathematics mental ability among students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

H04. There is no significant difference in Mathematics mental ability among male and female students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

POPULATION

Population of the study consists of all students of class VII in govt. aided schools in Varanasi district.

SAMPLE AND SAMPLING

The sample for the present study was 100 students studying in VII class from two govt. aided schools in Varanasi district. The technique of sampling was random and representative. A sample consisting of 100 students of 7th grade from two schools was selected. Out of 100 students, 50 students were boys and 50 students were girls selected for the purpose of study in order to confine the study to a specific age and educational level.

EXPERIMENTAL DESIGN

Since the nature of the present study was Experimental. For this purpose the pretest- posttest non-equivalent groups design was selected.

PROCEDURE OF THE STUDY

The pretest was administered on the students in order to acquire their pre-experimental score. The groups were randomly assigned to one control and another experimental group. The Experimental group was taught using the Vedic mathematics method while the control group was taught using the conventional methods. The experiment had been continued for 25 working days. The posttest was administered on both the groups, after the treatment was over.

RESEARCH TOOLS

Self-made Achievement Tests in Mathematics as pretest and posttest were administered for testing the class VII students' achievement in mathematics. The test-retest reliability was established and it was found that 0.87 and 0.83 respectively. The content validity of the tests was evaluated by a committee, which consisted of mathematics teachers and teacher educators. The validity was found satisfactory. And another one was the group general Mental Ability Test by S.Jalota was used to test mental ability in mathematics.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA

In analysis the collected data were tabulated and statistical techniques were employed as per research design of the study. All the hypotheses were tested at 0.05 level of significance.

The null hypothesis No. 1 was that there was no significant difference of mathematics achievement among students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

This hypothesis was tested by calculating means, standard deviation and t-value. The means, standard deviation and t-value are given in the table 1 below:

TABLE – 1

SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP AND CONTROLLED GROUP OF 7TH GRADE STUDENTS ACHIEVEMENT ON PRE TEST

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Experimental Group	50	28.46	10.4747	0.75	Failed to reject
Control Group	50	29.94	9.34		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.75. This indicates that there was no significant difference between control and experimental group in terms of their achievement in mathematics on pretest.

TABLE – 2

SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP AND CONTROLLED GROUP OF 7TH GRADE STUDENTS ACHIEVEMENT ON POST TEST

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Experimental Group	50	29.50	8.157	4.27	Rejected
Control Group	50	36.82	8.98		

The null-hypothesis was rejected and the research hypothesis was accepted on the basis of Table 2, i.e. it can be seen that the difference in the means of students' achievement in mathematics from the Control Group and Experimental Group is significant. Thus Vedic teaching method is more effective than the conventional method of teaching mathematics in terms of students' achievement in mathematics.

The null hypothesis No. 2 was that there was no significant difference of Mathematics Achievement among male and female students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

TABLE – 3

SHOWING „t" VALUES OF CONTROL GROUP MALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TEST OF 7TH GRADE STUDENTS

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	26.16	12.31	0.63	Failed to reject
Post Test	25	28.28	11.41		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.63. This indicates that there was no significant difference between male students of the control group in Pre test and post test in terms of their achievement in mathematics.

TABLE – 4
SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP MALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TEST OF 7TH GRADE STUDENTS

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	27.60	9.87	2.51	Rejected
Post Test	25	34.96	10.81		

The null hypothesis was rejected on the basis of the above table and t-value was 2.51. This indicates that there was significant difference between male students of the experimental group in Pre test and post test in terms of their achievement in mathematics.

TABLE-5
SHOWING „t" VALUES OF CONTROL GROUP FEMALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TEST OF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	30.76	7.83	0.41	Failed to reject
Post Test	25	31.60	6.50		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.41. This indicates that there was no significant difference between female students of the control group in Pre test and post test in terms of their achievement in mathematics.

TABLE-6
SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP FEMALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TEST OF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	31.40	5.55	4.31	Rejected
Post Test	25	38.68	6.38		

The null hypothesis was rejected on the basis of the above table and t-value was 4.31. This indicates that there was significant difference between female students of the experimental group in Pre test and post test in terms of their achievement in mathematics. Thus Vedic teaching

method is more effective than the conventional method of teaching mathematics among male and female students in terms of students' achievement in mathematics.

The null hypothesis No. 3 was that there was no significant difference in Mathematics mental ability among students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

TABLE – 7

SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP AND CONTROLLED GROUP OF 7TH GRADE STUDENTS MENTAL ABILITY ON PRE TEST

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Experimental Group	50	43.86	8.41	0.72	Failed to reject
Control Group	50	42.66	8.34		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.72. This indicates that there was no significant difference between control and experimental group in terms of their mental ability in mathematics on pretest.

TABLE – 8

SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP AND CONTROLLED GROUP OF 7TH GRADE STUDENTS MENTAL ABILITY ON POST TEST

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Experimental Group	50	41.44	7.13	4.45	Rejected
Control Group	50	47.82	7.20		

The null-hypothesis was rejected and the research hypothesis was accepted on the basis of Table 2, i.e. it can be seen that the difference in the means of students' mental ability in mathematics from the Control Group and Experimental Group is significant. Thus Vedic teaching method is more effective than the conventional method of teaching mathematics in terms of students' mental ability in mathematics.

The null hypothesis No. 4 was that there was no significant difference in Mathematics mental ability among male and female students of class VII after learning through Vedic teaching methods and conventional methods.

TABLE-9

SHOWING „t" VALUES OF CONTROL GROUP MALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TESTOF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	46.60	9.59	0.69	Failed to reject
Post Test	25	44.72	9.73		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.69. This indicates that there was no significant difference between male students of the control group in Pre test and post test in terms of their mental ability in mathematics.

TABLE-10

SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP MALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TESTOF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	42.44	9.01	3.40	Rejected
Post Test	25	50.44	7.54		

The null hypothesis was rejected on the basis of the above table and t-value was 3.40. This indicates that there was significant difference between male students of the experimental group in Pre test and post test in terms of their mental ability in mathematics.

TABLE-11

SHOWING „t" VALUES OF CONTROL GROUP FEMALESTUDENTS OF PRE TEST AND POST TESTOF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	41.12	6.06	0.30	Failed to reject
Post Test	25	40.60	6.22		

The null hypothesis was failed to reject on the basis of the above table and t-value was 0.30. This indicates that there was no significant difference between male students of the control group in Pre test and post test in terms of their mental ability in mathematics.

TABLE-12
SHOWING „t" VALUES OF EXPERIMENTAL GROUP MALE STUDENTS OF PRE TEST AND POST TESTOF 7TH GRADE

Groups	N	Mean	S.D	t-Value	Null Hypothesis
Pre Test	25	40.44	4.54	3.20	Rejected
Post Test	25	45.20	5.88		

The null hypothesis was rejected on the basis of the above table and t-value was 3.20. This indicates that there was significant difference between female students of the experimental group in Pre test and post test in terms of their mental ability in mathematics. Thus Vedic teaching method is more effective than the conventional method of teaching mathematics among male and female students in terms of students' mental ability in mathematics.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

With Vedic mathematics, mathematics can be learned and mastered quickly and easily, and it can be transformed into a fun and enjoyable subject. Vedic method of calculation enables faster calculations and students can solve more problems in less time. It also enables students to understand the numbers and their operations and relationships in an interesting manner and can be remembered for a long time. It also helps in many modern competitive exams where power tests, logical reasoning, mathematical aptitude tests are used. Thus, Vedic Mathematics is nothing but a few 'tricks' that help in solving mathematical calculations quite easily. It is a unique technique of calculations that is based on simple principles and rules, applying which, any kind of mathematical problems can be solved orally. More and more use of Vedic Math can without any doubts generate interest in a subject that is generally dreaded by children.

REFERENCES

- Best, J.W. & Kahn, J.V. (2006). *Research in Education*. PHI Learning Private Limited New Delhi.
- Bhalla, J. (2010*).* Effectiveness of Vedic Mathematics on Academic Achievement of Primary School Students [Unpublished doctoral Thesis, Punjab University] Chandigarh.
- Caprioara, D. (2015). Problem Solving - Purpose and Means of Learning Mathematics in School. *Procedia-Social and Behavioral Sciences*,191,1859-1864 https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877042815025926
- Choudhury,R. Das,D.(2012). Influence of attitude towards mathematics and study habits on the achievement in mathematics at the secondary stage. International Journal of Engineering Researchand Applications 2(6),192-196. https://www.ijera.com/papers/Vol2_issue6/AE26192196.pdf
- Doshi , M. J. (2014). *Effect of Vedic Mathematical techniques on a mathematical skill at class VII* [Unpublished doctoral Thesis, Sardar Patel University] VallabhVidyanagar.

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/34793

- Gayathri, K. (2017). A study of problem-solving ability, scientific creativity, and achievement in science among secondary school students. International Journal of Research in Education and Science, 1(4), 1-9.
  https://doi.org/10.21890/ijres.32748
- Ghosh, Prabir. (2018). School students' perceptions of Mathematics and its relation to their achievement in Mathematics [Unpublished doctoral Thesis, University of Calcutta] West Bengal.
  https://hdl.handle.net/10603/244952
- Glover, T. (2008). Introduction of Vedic Mathematics. MotilalBanarsidass publisher private limited, New Delhi
- Jiji,S. (2012). A Study of Effectiveness of teaching Vedic Mathematics on Students' Achievement [Unpublished doctoral Thesis, Shri J.J. Tibrewala University] Rajasthan.
  https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/21247
- Prasad,Girraaj(2018). A study of the effect of Vedic mathematics on Mental Ability & Educational Achievement of students of Upper Primary Level [Unpublished doctoral Thesis, Gandhi VidyaMandir] Rajasthan.
- Sharma, A. (2014). A comparative study of multiplication operations. *Bharatiya Shiksha Shodh Patrika*, 33(1): 28-32

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

भारत में लघु उद्योग

डॉ. मिर्जा शहाब शाह
प्रो. एवं अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग
का.सु. साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या

अलका कुशवाहा
शोध छात्रा
डॉ. रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय अयोध्या

लघु उद्योग वे उद्योग हैं जो विनिर्माण, उत्पादन और सेवाओं के प्रतिपादन में छोटे पैमाने पर किये जाते हैं। जिसमें निवेश की अधिकतम सीमा 10 करोड़ होती है। अर्थव्यवस्था के विकास के स्तर पर उद्योगों का वर्गीकरण किया जाता है। सामान्यतया औद्योगिक ढाँचे को दो भागों में विभाजित किया जाता है– (1) बड़े उद्योग, (2) लघु उद्योग। उद्योगों के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित कसौटियाँ अपनायी जाती हैं– (क) निवेशित पूँजी की मात्रा, (ख) कार्यरत श्रमिकों की संख्या, (ग) प्रबन्ध व संगठन का स्वरूप, (घ) वार्षिक उत्पादन का मूल्य। लघु उद्योगों का आकार व आकृति सभी देशों में असमान है। अधिकांश देशों में लघु उद्योगों की परिभाषा में दो प्रमुख आधार हैं– नियुक्त श्रमिकों की संख्या व निवेशित पूँजी की मात्रा। यूरोपीय संघ में लघु उद्योगों के अन्तर्गत 500 लोगों से कम रोजगार वाले उद्योग आते हैं जबकि पूर्वी एशिया में 50 से 100 श्रमिकों वाले उद्योग लघु उद्योगों के अन्तर्गत आते हैं।

भारत के औद्योगिक मानचित्र में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। परिचालन स्तर, निवेशित पूँजी की मात्रा, तकनीक आदि में निरन्तर बदलाव हो रहे हैं, इसी कारण से औद्योगिक वर्गीकरण में भी फेरबदल हो रहे हैं। आधारों में परिवर्तन होने के कारण लघु उद्योगों की परिभाषा समय–समय पर बदलती रही है। वर्ष 1950 में लघु उद्योगों में पूंजी निवेश सीमा में परिवर्तन किया गया है। वे उद्योग जिनमें 5 लाख रुपये तक की पूंजी का निवेश हुआ है तथा इनमें यदि शक्ति के साधनों का प्रयोग रहा है तो 50 से कम श्रमिक कार्यरत हों और यदि शक्ति के साधनों का प्रयोग नहीं हो रहा है तो उनमें 100 से कम श्रमिक कार्यरत हों, लघु उद्योगों की श्रेणी में आते हैं। वर्ष 1958 में लघु उद्योगों में पूंजी निवेश सीमा में पुनः परिवर्तन किया गया। वे उद्योग लघु उद्योग कहलाते हैं जिनमें 5 लाख रुपये से कम पूँजी का निवेश हुआ हो तथा यदि शक्ति के साधनों का प्रयोग होता है तो एक पाली में 50 से कम श्रमिक कार्यरत हों और यदि शक्ति के साधनों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है तो एक पाली में 100 से कम श्रमिक कार्य करते हों, उन्हें लघु उद्योग माना गया।

वर्ष 1950 और 1958 की परिभाषा में केवल पाली का अन्तर है। वर्ष 1950 की परिभाषा में लघु उद्योगों में अधिकतम श्रमिकों की संख्या 50 हो सकती है, जबकि वर्ष 1958 की परिभाषा के आधार पर यदि लघु उद्योगों में शक्ति के साधनों का प्रयोग किया जा रहा है, तो उसमें 150 श्रमिक तक भी कार्यरत हो सकते हैं। यदि शक्ति के साधनों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है तो 300 श्रमिक भी कार्यरत हो सकते हैं। केन्द्र सरकार ने वर्ष 1959 में लघु उद्योगों की परिभाषा में एक अल्प परिवर्तन किया। मुख्य मशीन पर निवेश की अधिकतम सीमा 5 लाख रुपये निर्धारित की, जबकि लघु उद्योगों के अन्य आधारों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। भूमि व भवन पर निवेश को लघु उद्योगों में अधिकतम निवेश सीमा की परिधि से हटा दिया गया। वर्ष 1960 में केन्द्र सरकार ने लघु उद्योगों की परिभाषा में रोजगार के आकार की शर्त को हटा दिया। इस वर्ष एक नये वर्ग सहायक उद्योग की श्रेणी बनायी गयी। वे उद्योग जिनमें मुख्य मशीनरी पर 7.5 लाख रुपये निवेश किया गया हो, सहायक उद्योग कहलाते हैं। वर्ष 1966 में सरकार ने लघु उद्योग

में निवेश की सीमा को 5 लाख से बढ़ाकर 7.5 लाख रुपये कर दी। अन्य शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। सहायक उद्योगों में निवेश की सीमा 7.5 लाख से बढ़ाकर 10 लाख रुपये कर दी गयी।

मई 1975 को भारत सरकार ने लघु उद्योगों में निवेश की सीमा में पुनः वृद्धि कर दी। 10 लाख रुपये तक की पूँजी निवेश वाले उद्यमों को लघु उद्योग माना गया। वे उद्योग जिनमें 15 लाख रुपये तक पूंजी निवेश किया गया हो, सहायक उद्योग कहलाते हैं। सरकार ने वर्ष 1977 में लघु उ़द्योगों में पूंजी निवेश सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया किन्तु लघु उद्योगों के अन्तर्गत अति लघु क्षेत्र का निर्धारण किया।[1] अति लघु क्षेत्र के अन्तर्गत उन उद्योगों को शामिल किया गया जिनमें एक लाख रुपये तक निवेश किया गया हो। लघु उद्योगों के लिए एक नया आधार 1971 की जनसंख्या को भी जोड़ा गया। 1971 की जनसंख्या के आधार पर कस्बा व ग्रामीण क्षेत्र जहाँ 50 हजार से कम आबादी है वहाँ पर 10 लाख रुपये से कम पूँजी निवेश वाले उद्योग लघु उद्योग माने जायेंगे। 28 मई, 1980 को भारत सरकार ने नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा की।[2] सरकार ने अति लघु, लघु उद्योग व सहायक उद्यमों में निवेश की सीमा क्रमशः 2 लाख, 20 लाख व 25 लाख रुपये कर दी। तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पूंजी निवेश की सीमा में वृद्धि करना आवश्यक था।

मार्च 1985 में भारत सरकार ने पूँजी निवेश की सीमा में वृद्धि कर दी। वे अति लघु क्षेत्र, लघु क्षेत्र व सहायक उद्योग जो 1981 की जनगणना के आधार पर 5 लाख से कम जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित हैं, उनमें निवेश सीमा क्रमशः 2 लाख, 35 लाख, 45 लाख रुपये कर दी गयी। इस वर्ष सरकार ने सेवा क्षेत्र की इकाइयों को भी लघु उद्योगों का दर्जा दिया। सेवा क्षेत्र की उन इकाइयों को जिनमें 2 लाख रुपये तक की पूँजी निवेश की गयी है, लघु उद्योग के अन्तर्गत शामिल की गयी। अप्रैल 1991 में लघु क्षेत्र की इकाइयेां में निवेश की सीमा 35 लाख से बढ़ाकर 60 लाख रुपये कर दी गयी।[3] विनियोजित पूंजी से तात्पर्य यहाँ मशीनों एवं संयन्त्रों में विनियोजित स्थिर पूंजी से है तथा भूमि, भवन एवं अन्य स्थिर सम्पत्तियों में विनियोजित पूँजी निर्धारित 60 लाख रुपये की सीमा में सम्मिलित नहीं की जाती है। स्पेयर पार्ट्स मशीनों की संस्थापना के खर्च, आयातित मशीन पर चुकाई गयी स्टाम्प ड्यूटी, जनरेटर्स व ट्रान्सफार्मर्स की लागत आदि भी इस सीमा में सम्मिलित नहीं की जाती है। अति लघु क्षेत्र में निवेश की उच्चतम सीमा 5 लाख रुपये कर दी गयी और जनसंख्या की शर्त को भी हटा दिया गया। वर्ष 1985 में सेवा क्षेत्र की लघु इकाइयों की अवधारणा में परिवर्तन कर दिया गया। अब इस क्षेत्र का नाम लघु सेवा व व्यापार उद्योग कर दिया गया। इस क्षेत्र में निवेश की सीमा 5 लाख रुपये निर्धारित की गयी। निर्यात मूलक इकाई में निवेश की उच्चतम सीमा 75 लाख रुपये कर दी गयी। निर्यात मूलक इकाइयों में वे लघु उद्योग शामिल किये गये जो इकाई अपने स्थापना वर्ष के लगातार तीन वर्षों में कुल वार्षिक उत्पादन का 30 प्रतिशत निर्यात करती हो।

फरवरी, 1997 में आबिद हुसैन समिति की सिफारिश पर सरकार ने लघु उद्योग में निवेश की उच्चतम सीमा 60 लाख से बढ़ाकर 3 करोड़ रुपये कर दी। अति लघु क्षेत्र में निवेश सीमा 5 लाख से बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दी। सहायक उद्योग व निर्यात मूलक इकाई में निवेश की उच्चतम सीमा 3 करोड़ रुपये कर दिया। सेवा क्षेत्र के लघु उद्योगों में निवेश की सीमा 5 लाख रुपये ही रखा गया। 17 फरवरी 1999 में लघु उद्योगों में पूँजी निवेश सीमा में पुनः परिवर्तन किया गया।

नई सरकार ने लघु उद्योगों में निवेश की सीमा को 3 करोड़ से घटाकर 1 करोड़ रुपये कर दिया। सहायक इकाइयों और निर्यात मूलक इकाइयों में भी निवेश की सीमा को घटाकर एक करोड़ रुपये कर दिया गया। किन्तु अति लघु क्षेत्र में निवेश की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इससे सम्बन्धित अधिसूचना 14 दिसम्बर 1999 को जारी की गयी। वर्ष 2001 में लघु उद्योग, अति लघु उद्योग, निर्यात मूलक

इकाइयों व सहायक इकाइयों में निवेश की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। किन्तु सेवा क्षेत्र की लघु इकाइयों में निवेश की उच्चतम सीमा 5 लाख से बढ़ाकर 10 लाख रुपये कर दी गयी।

वर्ष 2006 में संसद ने सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 पारित किया।[4] इस अधिनियम में उ़द्यमों को दो भागों में बांटा गया– (1) विनिर्माण क्षेत्र, (2) सेवा क्षेत्र। इन दोनों वर्गों में सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्यमों की परिभाषा मशीनरी एवं सम्बद्ध उपकरणों में निवेश के आधार पर दी गयी है।

1. विनिर्माण क्षेत्र

सूक्ष्म उद्यम– जिन उद्यमों में 25 लाख रुपये तक अधिकतम निवेश किया गया है, निर्माण क्षेत्र के सूक्ष्म उद्योग कहलाते हैं।

लघु उद्यम– वे उद्यम जिनमें 25 लाख से 5 करोड़ रुपये तक की पूँजी विनियोजित की गयी है निर्माण क्षेत्र के लघु उद्यम कहलाते हैं।

मध्यम उद्यम– वे उद्यम जिनमें 5 करोड़ से 10 करोड़ रुपये की पूँजी विनियोजित की गयी है, निर्माण क्षेत्र के मध्यम उद्यम कहलाते हैं।

2. सेवा क्षेत्र

सूक्ष्म उद्यम– वे इकाइयाँ जिनमें 10 लाख रुपये तक की पूँजी का निवेश किया गया है, सेवा क्षेत्र के सूक्ष्म उद्यम कहलाते हैं।

लघु उद्यम– सेवा क्षेत्र में वे इकाइयां जिनमें 10 लाख से 2 करोड़ रुपये तक की पूँजी निवेश किया गया है, सेवा क्षेत्र के लघु उद्योग कहलाते हैं।

मध्यम उद्यम– सेवा क्षेत्र में वे इकाइयाँ जिनमें 2 करोड़ से अधिक व 5 करोड़ से कम पूँजी का निवेश किया गया है, सेवा क्षेत्र के मध्यम उद्योग कहलाते हैं।[5]

भारत का प्राचीन औद्योगिक इतिहास अत्यन्त समृद्धशाली था। भारत के लघु उद्योगों की ख्याति एशिया, अफ्रीका व यूरोपीय देशों में फैली हुई थी। देश के लघु उद्योग न केवल घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करते थे, वरन् अन्य देशों को अपना माल निर्यात भी करते थे। 17वीं व 18वीं शताब्दी को भारतीय लघु व कुटीर उद्योगों का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों की चमक से ही आकर्षित होकर पुर्तगाली, फ्रांसीसी व अंग्रेजों ने भारत में पैर पसारना आरम्भ किया। भारत में जैसे–जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का साम्राज्य फैलता गया वैसे–वैसे देशी राजाओं और नवाबों की सत्ता उखड़ने लगी। इसके परिणामस्वरूप भारतीय लघु एवं कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे। देश के लघु एवं कुटीर उद्योगों की ब्रिटिश व्यापारियों पर निर्भरता बढ़ती गयी। ब्रिटिश व्यापारी अपनी शर्तों पर माल का क्रय करते थे। इसमें व्यापारियों एवं लघु उद्योगों का शोषण होता था। इस बीच औद्योगिक क्रान्ति के कारण यूरोप में बड़े पैमाने पर मशीनों से भारी मात्रा में सस्ती वस्तुएँ बनायी जाने लगी जो गुणवत्ता में लघु उद्योगों के माल की तुलना में बेहतर थी। इस कारण से भारतीय माल का निर्यात बन्द हो गया। देश में आधुनिकता व शिक्षा के प्रसार के कारण विदेशी वस्तुओं की माँग बढ़ने लगी और लघु उद्योगों के माल की माँग कम होने लगी। ब्रिटिश सरकार की औद्योगिक नीतियाँ भी लघु व कुटीर उद्योगों के प्रति शोषणकारी ही थी। इस कारण से भारतीय लघु व कुटीर उद्योग पतन की गर्त में चले गये।

आजादी के बाद लघु उद्योगों में आशा की एक किरण जगी और ये पुनः अपनी खोई हुई स्थिति प्राप्त करने की तरफ अग्रसर हुए। आज लघु उद्योग देश के निर्यात में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। लघु उद्योगों में स्थानीय संसाधनों का कुशलतम उपयोग होता है। लघु उद्योगों की स्थापना प्रायः स्थानीय माँग को पूरा करने के लिए किया जाता है। अतः इनको सभी राज्यों में आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इससे स्थानीय निष्क्रिय संसाधनों का उपयोग होने लगता है तथा लोगों को रोजगार प्राप्त हो जाता है और

उनकी आय में वृद्धि होने लगती है। लघु उद्योगों में मालिकों और श्रमिकों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इस कारण से लघु उद्योगों में औद्योगिक विवाद नगण्य होते हैं। लघु उद्योग बहुत अधिक लोगों को आर्थिक विकास का फल प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते है। क्योंकि लघु उद्योगों में रोजगार सृजन की क्षमता अधिक होती है। इस कारण से भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योग का महत्व सदैव से बना हुआ है।

सन्दर्भ सूची–

- दत्त, रुद्र और सुन्दरम्, के.पी.एम. (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, पृ. 623
- तदैव, पृ. 623
- GOI (1996) : "Annual Report 1995&96", Ministry of Industry, Govt. of India, New Delhi, p. 3
- भारत सरकार (2007), वार्षिक रिपोर्ट 2006–07, लघु उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,पृ. 9
- Ibid.

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

मादक द्रव्य व्यसन का विद्यार्थियों पर प्रभाव : एक समाजशास्त्री विश्लेषण

नन्दलाल
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारत में मादक पदार्थों का प्रयोग बहुत समय से होता आ रहा है। कहा जाता है कि आर्य लोग सोमरस नामक मादक द्रव्य का सेवन करते थे। भांग का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। सोमरस का प्रयोग देवताओं द्वारा भी किया जाता था। अफीम का प्रयोग भारत में नवीं शताब्दी में मुस्लिम व्यापारियों द्वारा आरम्भ हुआ। वर्तमान समय में अफिम, गांजा, भांग और शराब का प्रयोग विशेष रूप से हो रहा है। हमारे देश में इनका प्रयोग पण्डे, साधु, सपेरे, नट और भूतपूर्व अपराधी जातियों के सदस्य विशेष रूप से करते हैं। इन मादक पदार्थों के प्रयोग के सन्दर्भ में कुछ सीमा तक धार्मिक स्वीकृति भी लोगों को प्राप्त है। उदाहरण के लिए गांजा और मांग शिवजी का प्रिय पदार्थ माना जाता है और अनेकों काल भैरव मंदिरों में शराब प्रसाद के रूप में चढ़ाया जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी के शासक एडोल्फ हिटलर द्वारा अपने सैनिकों को शराब, अफीम, गार्फीन, पार्सीटोन और मेथेप्टामाइन दिया जाता था। जिससे इसके सैनिक अधिक ऊर्जा के साथ युद्ध में लड़ सके। कुछ देशों में मादक द्रव्यों के सेवन के लिए उत्साहित भी किया जाता है। जैसे– दक्षिणी अमेरिका में मजदूरों के बीच कोकीन के प्रयोग को उत्साहित किया जाता है, जिससे उनका अधिक से अधिक शोषण किया जा सके। नशीले पदार्थों के गोल्डन ट्रेंगल म्यामार थाइलैण्ड एवं लावोस है जबकि नशीली वस्तुओं हेरोइन, स्मैक, ब्राउन सुगर का उत्पादन गोल्डेन किन्सेट के नाम से मशहूर पाकिस्तान अफगानिस्तान व इरान है। भारत में इनकी सप्लाई राजस्थान सीमा से किया जाता है। इसमें मंत्री से लेकर कस्टम विभाग के लोग मिले रहते हैं। व्यवसायिक दृष्टि से इसमें काफी फायदा होता है। ऐसा कहा जाता है कि लगभग 500 अरब डालर का व्यापार के साथ यह विश्व का तीसरा बड़ा व्यवसाय है।

हर काल और देश के विचारक ऐसा स्वीकार करते आये हैं कि मादक द्रव्यों का बुरा प्रभाव होता है। ऐसा कहा जाता है कि जहाँगीर के समय में भी मद्यनिषेध के प्रयत्न किये गये थे। वह स्वयं मद्यपानी था और खुब शराब पीता था। जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ ने मद्यनिषेध के लिए अत्यधिक प्रयास किया था और उसके प्रयत्नों से जहाँगीर की आदत में सुधार हुआ था, किन्तु वह उसका पूर्ण त्याग नहीं कर सका था।

विद्यार्थियों में मादक द्रव्य व्यसन की समस्याः भारत के सभी युवा वर्ग के विद्यार्थियों में आज मादक द्रव्य व्यसन की समस्या को देखा जाता है।एक छात्र जब अपने विद्यार्थी साथी को शराब पीते हुए देखत है तो उनसे अपनी अनुरूपता सिद्ध करने के लिए वह मद्यपान को एक रोचक कार्य, नये अनुभव तथा मिनसारिता के साधन के रूप में ग्रहण कर लेता है। आज कालेज एवं विश्वविद्यालय के छात्रों ने मद्यपान को बढ़ाने की प्रवृत्ति में इस कारण का योगदान संभवतः सबसे अधिक है। वर्तमान विद्यार्थी पीढ़ी तरह–तरह की निराशाओं एवं कुण्ठाओं से ग्रस्त है। शिक्षा की उद्देश्यहीनता सांस्कृतिक मूल्यों तथा भौतिकता की चकाचौध के बीच की खाई अभावमय एवं आडम्बरपूर्ण जीवन उनकी निराशाओं की प्रमुख समस्या है। राम आहुजा (1978) ने जयपुर के कालेज के युवाओं में मादक द्रव्य व्यवसन की प्रकृति का एक समाजशास्त्री अध्ययन करने पर पाया कि 26–1 प्रतिशत विधि के छात्र 23–6 प्रतिशत वाणिज्य के छात्र 17–5 प्रतिशत कला व समाज विज्ञान के छात्र 14 प्रतिशत चिकित्सा विज्ञान के छात्र 14 प्रतिशत विज्ञान के छात्र 13–6 प्रतिशत इन्जीनियरिंग के छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे उनके 1986 के अध्ययन में 31 प्रतिशत वाणिज्य

के छात्र कला व सामाजिक विज्ञान के 27–2 प्रतिशत छात्र 20–3 प्रतिशत विज्ञान के छात्र चिकित्सा विज्ञान के 7–3 प्रतिशत छात्र इन्जीनियरिंग के 6 प्रतिशत छात्र एवं विधि के 4–8 प्रतिशत छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे। इनमें से 9 प्रतिशत छात्र नियमित रूप से मादक पदार्थों का उपयोग करते थे तथा 1 प्रतिशत ही इनके व्यसनी हो पाए थे। लगभग दो–तिहाई छात्र दवा के रूप में तथा 2 से 3 प्रतिशत वास्तविकता से भागने के लिए प्रयोग करते थे।वर्तमान में लगभग 40 प्रतिशत छात्र और 18 प्रतिशत छात्राएँ जो कि विश्वविद्यालय में शिक्षारत है– किसी न किसी प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करते हैं।विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी रिपोर्ट में यह पाया कि भारतीय विश्वविद्यालयों में 10 प्रतिशत पूर्ण रूप से नशे के लत में फँसे छात्र हैं। 50 प्रतिशत छात्र कम से कम एक बार किसी न किसी मादक पदार्थ का सेवन कर चुके हैं। अनुसंधानकर्ता यह भी संकेत करते हैं कि लगभग 60 प्रतिशत छात्र मित्रों के सुझाव पर 5 प्रतिशत परिवार के सदस्यों या रिस्तेदारों के सुझाव पर 10 प्रतिशत डाक्टरों के सुझाव पर और 25 प्रतिशत स्वयं के इच्छा पर मादक द्रव्य लेते हैं।

मादक पदार्थों के प्रकारः–मनुष्य अनेक प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करता है, ये सभी हानिकारक होते हैं उनमें से कुछ पेय के रूप में पिये जाते हैं, जैसे मदिरा कुछ तम्बाकू की तरह चबाये जाते हैं, अथवा उनका धुआँ निगला जाता है इनका धुआँ नशा लाता है, जैसे– चरस, गांजा आदि। कुछ मादक द्रव्य खाये जाते हैं, जैसे भांग तथा अफीम ये सभी नशीली वस्तुएँ शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं। कभी–कभी तो इनको अधिक मात्रा में लेने से मृत्यु तक हो जाती है। इनमें जैसे तम्बाकू एक लम्बा पौधा होता है जो वार्षिक रूप से उगता है। इसका मूल स्थान अमेरिका का उष्ण कटिबन्धीय भाग है, जहाँ से यह खोजी नाविक कोलम्बस द्वारा यूरोप में लाया गया तथा वहाँ से विश्व के अन्य देशों में फैला। इस पौधे की सुखायी तथा प्रसंस्कारित की गयी पत्तियों का प्रयोग नशीले पदार्थ के रूप में किया जाता है। तम्बाकू का उपयोग मुख्यतः चबाकर उसका रस चूसने (खैनी) के रूप में अथवा तम्बाकू की पत्तियों को जलाकर उसके धुएँ का अंतःश्वसन करने के लिए बीड़ी, सिगरेट अथवा सिगार के रूप में किया जाता है। एल्कोहॉल सामान्य भाषा में एल्कोहॉल का उपयोग एथिल एल्कोहॉल अथवा एथेनॉल के लिए किया जाता है। शुद्ध एथिल एल्कोहॉल रंगहीन, पारदर्शी, वाष्पशील द्रव होता है जिसमें स्पिरिट जैसी गन्ध तथा ज्वलनशील कडुआ स्वाद होता है इसे शर्करा, अनाजों (जैसे जौ, मक्का, आदि) गुड़, शीरा, अंगूर, महुआ आदि के किण्वन द्वारा बनाया जाता है। किण्वन से प्राप्त द्रव में लगभग 10 प्रतिशत एल्कोहॉल होता है, जिसे आसवन द्वारा सान्द्रित तथा शुद्ध करके एल्कोहॉल प्राप्त किया जाता है। समाज में प्रयुक्त अनेक पेय पदार्थों जैसे विस्की, मदिरा, बीयर, ब्राण्डी आदि का आवश्यक सक्रिय अवयव एल्कोहॉल होता है। नशीली दवाएँ खाद्य–पदार्थ के अतिरिक्त किसी ऐसे रासायनिक पदार्थ को जिसका सेवन करने से शरीर की प्रक्रियाओं में लाभकारी परिवर्तन हो दवा या औषधि कहते हैं जैसे हेरोइन तथा स्मैक हेरोइन, अफीम के मूल नशीले तत्व मॉरफीन से बनाया जाने वाला सफेद क्रिस्टलीय पदार्थ है। यह मॉरफीन की अपेक्षा 20 गुना तथा अफीम की अपेक्षा 200 गुना अधिक नशीला होता है। स्मैक भी हेरोइन के निर्माण में बनने वाला सह–उत्पाद है। भांग, अफीम, गांजा, हेरोइन, कोकेन आदि अनेक नशीले पदार्थ हैं, जिनका सेवन किसी रोग पर प्रभाव डालने के लिए तो बहुत कम, परन्तु कृत्रिम रूप में सुख का आभास कराने के लिए अपनी मनोदशा, वैचारिक बोध अथवा किसी अन्य मानसिक क्रिया को बदलने के लिए किया जाता है। इन पदार्थों के बारम्बार सेवन से नशे की आदत पड़ जाती है, जिसके कारण आगे चलकर इनका सेवन सुख के आभास के लिए नहीं, वरन शरीर में इनकी अनुपस्थिति से उत्पन्न होने वाली असहजता तथा पीड़ा का निवारण करने के लिए करना पड़ता है।

मादक द्रव्य व्यसन के कारण :– मादक द्रव्य व्यसन के निम्नलिखित कारण है

संगति का प्रभावः– विद्यार्थियों में मादक द्रव्य व्यवसन को बढ़ावा देने वाले कारकों में बुरी संगति का प्रभाव विशेष महत्वपूर्ण है आज विद्यार्थी इसी का अधिकांशतः शिकार होता जा रहा है। अनुभव की कमी में आज का विद्यार्थी जब अपने साथियों को मादक द्रव्य व्यवसन करते देखता है, तो उसके साथ प्रगाढता तथा मादक द्रव्यों के आनन्द का अनुभव करने के लिये मादक द्रव्यों का सेवन करना शुरू कर देता है।

फैशनः– आधुनिक युग में छात्र वर्ग का एक बड़ा भाग नशे का प्रयोग एक फैशन के रूप में करने लगा है। महानगरीय संस्कृति में अक्सर मद्यपान न करने वाले युवक को एक पिछड़े हुए व्यक्ति के रूप में देखा जाता है।शहरों में आधुनिक संगीत एवं अन्य समारोहों में इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

नैतिक मूल्यों में ह्रासः– वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों का तेजी से पतन हुआ है। स्वच्छन्दता मनमानी एवं उच्छृंखलता में तीव्र वृद्धि हुई है। अश्लील साहित्य सिनेमा एवं पत्र–पत्रिकाओं ने नैतिक मूल्यों के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

परीक्षाओं में असफलताः– मादक द्रव्य व्यवसन का एक बड़ा कारण परीक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा असफल होना पाया गया है। जब कोई विद्यार्थी कई परीक्षाओं में सफल नहीं हो पाता तो उसके अन्दर निराशा और तनाव उत्पन्न होता है जिसके कारण वह उनसे दूर होने के भ्रम में मादक द्रव्यों का सहारा लेना शुरू कर देता है।

निर्धनताः– निर्धनता सम्पन्न वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में निर्धन वर्ग के विद्यार्थियों में मद्यपान की समस्या अधिक पायी जाती है क्योंकि जब विद्यार्थी को निर्धनता के कारण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो उसके अन्दर तनाव उत्पन्न हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह मादक द्रव्यों का सेवन करने लगता है।

धार्मिक कारणः– भारत में मादक द्रव्य व्यवसन के प्रवृत्ति बढ़ने का एक प्रमुख कारण धार्मिकता भी रहा है। हिन्दू धर्म के कई देवताओं को प्रसाद के रूप में नशीले पदार्थों को चढ़ाया जाता है जैसे–गांजा, मांग, शराब आदि भारत के कई मंदिरों में चढ़ाया जाता है तथा उसके समर्थक उनका प्रयोग प्रसाद के रूप में करते हैं। भगवान शिव को पूजने वाले अधिकतर गांजा या नांग का प्रयोग प्रसाद के रूप में करते हैं। उज्जैन में भैरव बाबा को शराब चढ़ाने की प्राचीन काल से परम्परा चली आ रही है इसी तरह मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के देवगढ़ गाँव से सात किलो मीटर दूर ग्राम लिलाही में भगवान शंकर के मंदिर और सन्त दादा श्याम लाल मौनी बाबा की समाधि पर गांजे का प्रसाद चढ़ाया जाता है फिर उसे श्रद्धालुओं में बाँटा जाता है न्यायालय ने परम्परा के कारण 40 डिसमिल जमीन में गाँजा लगाने की अनुमति दे दी है।

भ्रष्टाचारः– वर्तमान पीढ़ी अनेकानेक निराशाओं और कुण्ठाओं से ग्रस्त है। इन निराशाओं और कुण्ठाओं का बड़ा कारण देश में फैला भ्रष्टाचार है क्योंकि जब छात्र भ्रष्टाचार के कारण योग्य होते हुये भी अच्छे पदों पर या अच्छे कालेजों में चयन नहीं प्राप्त कर पाता तो उसके अन्दर निराशा जन्म लेती है जो मादक द्रव्यों के सेवन का कारण बन जाती है और छात्र मादक द्रव्यों का सेवन करने लगता है।

दोषपूर्ण समाजीकरणः– किसी भी बच्चे का व्यवहार बहुत हद तक उसके सामाजीकरण पर निर्भर होता है। परिवार, मित्र समूह का माहौल बच्चे पर विशेष प्रभाव डालता है। यह पाया गया है कि जिस घर में माता–पिता के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं होते या जिन घरों के माता–पिता खुद मादक पदार्थों का सेवन करते हैं उन घरों के बच्चों में मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। कभी–कभी कठोर अनुशासन भी बच्चों को माता–पिता से दूर कर देता है। जो मादक पदार्थों की ओर जाने का कारण बन जाता है। साथ ही मित्रों का भी छात्र पर परिवार के बाद सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। यह पाया गया है कि जिस छात्र के मित्रों में मादक पदार्थों के सेवन की प्रकृति होती है। आने वाले दिनों मे उन बालकों में अधिकांशतः मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले बन जाते हैं।

मादक द्रव्यों के प्रभावः– मादक द्रव्य व्यसनों का निम्नलिखित प्रभाव पाया जाता है–

वैयक्तिक विघटनः– मादक द्रव्य सेवन के कुछ कारण एकदम व्यक्तिगत होते हैं जैसे कि कभी–कभी व्यक्ति अपनी भूख बढ़ाने के लिये थोड़ी सी शराब लेता है पर यही शराब की मात्रा लेना उसकी आदत बन जाती है। व्यक्ति धीरे–धीरे इतना आदि हो जाता है कि उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता, न ही उसे अपने परिवार के लोगों का ज्ञान रहता, धीरे–धीरे उसकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है वह मामूली से मामूली बात के लिये अधिक से अधिक चिन्तित रहता है, सोचता अधिक है, कार्य कम कर पाता है– इस प्रकार उसका चरित्र कमजोर हो जाता है और धीर–धीरे समाज के सम्य लोगों से दूर भी रहने लगता है और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का विघटन होने लगता है। एल०एस०डी० के सेवन से डरावने स्वप्न तथा मानसिक विक्षिप्तता उत्पन्न होती है। इस प्रकार मादक द्रव्य से सम्बन्धित उपर्युक्त तथ्य यह स्पष्ट कर देता है कि वैयक्तिक विघटन में होने वाली तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण मद्यपान अथवा नशाखोरी है।

पारिवारिक विघटनः– स्नेह, प्रेम, सहयोग और त्याग परिवार को संगठित रखने वाले प्रमुख आधार हैं, जबकि मादक द्रव्य व्यसन की इन तीनों से परम्परागत शत्रुता है। आज मादक द्रव्य के कारण लाखों बच्चों को अपने पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ता है– इसके कारण अनेक स्त्रियों सड़कों पर भीख माँगती दिखलायी पड़ती है, परिवार में अनेक निर्मम हत्याएँ होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मादक द्रव्य व्यसन एवं नशाखोरी ने सम्पूर्ण परिवार के वातावरण को संकटपूर्ण बना दिया है। प्रायः देखा जाता है कि मद्यपान एवं नशाखोर परिवार की रंचमात्र भी चिन्ता किये बिना अपने धुन में मस्त शराब पीते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि परिवार टूटने लगते हैं तथा पारिवारिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

सामाजिक विघटनः– मादक द्रव्य व्यसन का दुष्प्रभाव केवल छात्र अथवा परिवार पर ही नहीं पड़ता, बल्कि सम्पूर्ण समाज को विघटित करने में मादक द्रव्य व्यवसन की विशिष्ट भूमिका है। मादक द्रव्य व्यसन लाखों लोगों की कार्यकुशलता को नष्ट करके उन्हें स्थायी रूप से रोगग्रस्त कर देता है। परिणामतः समाज में निर्धनता, बेकारी एवं अन्य सामाजिक समस्याएँ खड़ी हो जाती है। समाज के मूल्य गिर जाते हैं। मान्यताओं एवं आदशों का खुला उल्लंघन किया जाता है जो प्रत्यक्षतः सामाजिक विघटन के लक्षण हैं।

आर्थिक विघटन– मादक द्रव्य व्यसनी व्यक्ति अपनी आय का अधिकांश भाग मादक द्रव्य पदार्थों पर खर्च करता है। इससे उसकी एवं उसके परिवार की मौलिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि) हेतु धन उपलब्ध नहीं हो पाता जिससे बच्चे चिन्ता, निराशा, कुण्ठा तथा असुरक्षा की भावना से पीड़ित होते हैं जिससे उनका भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

भारत में मादक द्रव्यों के रोक के लिये सरकारी प्रयास– भारतीय संविधान की अनुच्छेद 47 के अनुसार– राज्य अपने लोगों के पोषण स्तर पर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने तथा जन स्वास्थ्य के सुधार को प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और विशेष कर स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नशीले पेयों के उपभोग को औषधियों के प्रयोजनों के अतिरिक्त रोकने का प्रयास करेगा। राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त के अन्तर्गत अनुच्छेद 47 को कार्यान्वित करने तथा उस आदर्श को ठोस रूप देने के उद्देश्य से योजना आयोग ने 1954 में एक 'नशा बन्दी जाँच कमेटी की नियुक्ति की। इस सिफारिश को 31 मार्च 1956 में लोक सभा ने स्वीकार कर लिया और उसी आधार पर देश भर में आन्दोलन चालाया गया।

भारत सरकार का अगला सराहनीय प्रयास 1985 का अधिनियम रहा जो 14 नवम्बर, 1985 से प्रभावी किया गया। इसके अनुसार 10 वर्षों तक कठोर कारावास तथा एक लाख रूपये तथा अर्थदण्ड की व्यवस्था थी। जिसे बढ़ाकर 20 वर्ष कठोर कारावास एवं दो लाख रूपये का अर्थदण्ड किया जा सकता था तथा अपराध दोहराये जाने पर 15 वर्ष का कारावास 30 वर्ष तक तथा अर्थदण्ड डेढ़ लाख से तीन लाख किया जा सकता है। न्यायालयों को इस अर्थदण्ड को बढ़ा सकने का भी अधिकार है कल्याण मंत्रालय ने इस समस्या से निपटने के लिये 1985–86 में कार्य योजना शुरू की थी जिसके तहत नशे से होने वाले नुकसान के बारे

में जानकारी देना, अनुरक्षण केन्द्र खोजना, कार्यशालाएँ लगाना तथा इस कार्य में लगे स्वैच्छिक संगठनों को 90 प्रतिशत तक अनुदान राशि दी जाती है। मंत्रालय देश भर में 361 स्वैच्छिक संगठनों को 444 केन्द्र चलाने के लि सहायता देता है।

निष्कर्ष– निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मादक पदार्थों का दुरूपयोग मानवता के लिये एक बढ़ता हुआ खतरा बन चुका है। मादक पदार्थों के तस्कर अपनी सम्पत्ति के अर्जन के लिये देश के सामाजिक ताने–बाने से खिलवाड़ करते हैं। मादक पदार्थों के सेवनकर्ता अपने अवशादो कुण्ठाओं के त्वरित उपचार के लिये इन मादक पदार्थों का उपयोग करते हैं और शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक के साथ–साथ सामाजिक रूप से भी पीड़ित होते हैं। सन् 1991 से प्रत्येक वर्ष 26 जून को मादक पदार्थों तथा अवैध तस्करी के अन्तर्राष्ट्रीय विरोध दिवस के रूप में मनाया जाता है ताकि मादक पदार्थों के उपयोगकर्ता के साथ–साथ उन लोगों के बीच जागरूकता उत्पन्न किया जा सके जो मादक पदार्थों के विरूद्ध संघर्ष करने में संलिप्त हैं। इनके बावजूद पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल एजुकेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर के द्वारा सम्पन्न किये गये अध्ययन द्वारा यह दावा किया गया है। कि 18 से 25 वर्ष की आयु वर्ग में मादक पदार्थों के दुरूपयोग में वृद्धि हुई है। यह आंकड़े 1978 से 2008 तक के अध्ययन में प्राप्त किये गये हैं कि (1978 से 88) के दौरान रोगियों का 22 प्रतिशत भाग (1999–2008) के दौरान बढ़कर 31–5 प्रतिशत हो गया। इन तथ्यों को एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह समस्या बहुत विकट है। इससे मुक्ति पाना राष्ट्र, समाज एवं संपूर्ण मानव जाति के लिये एक चुनौती बन चुका है। अतः इसकी रोकथाम, उपचार एवं पुर्नवास के लिये एक सकारात्मक एवं जीवन समर्थक अभियान की आवश्यकता है।

मादक द्रव्य व्यवसन के रोकथाम के उपाय–

1– मादक द्रव्यों का सेवन रोकने हेतु जनता को शिक्षित और जागरूक किया जाय। उसे इनके सेवन से होने वाली हानियों से परिचित कराया जाय।

2 मादक द्रव्य व्यसन की रोकथाम हेतु परिवार द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा सकती है इसके लिये परिवार को जागरूक किया जाना चाहिए।

3– चिकित्सकों को अपनी अभिवृत्तियों में परिवर्तन करना चाहिए।

4– मादक द्रव्य व्यसनियों का अध्ययन किया जाय।

5– मादक द्रव्यों के व्यापारियों एवं उसके सहायकों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिये।

6– छात्रों को नशीले पदार्थों की बुराइयों एवं दुष्परिणामों से परिचित कराया जाना चाहिये छात्रों की रूचियों एवं गतिविधियों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। छात्रों को व्यवसाय के चयन एवं लक्ष्यों के निर्धारण में सहायता प्रदान करना चहिये।

7– सरकार को प्रत्येक जिलों में ड्रग डी एडिक्शन सेन्टर की व्यवस्था करनी चाहिये।

8– माता–पिता अध्यापकों, समुदाय तथा जनमत को प्रभावित करने वाले नेताओं, सभी का परम दायित्व है कि इस भ्रम से समाज को बचाये रखें।

9–समाज एवं व्यक्ति को नशीले पदार्थों के बुराईयों के बारे में अच्छी जानकारी प्रदान की जानी चाहिये।

10– जो लोग नशे के शिकार हो गये हैं उन्हें लाईलाज नहीं समझ लेना चाहिये उनका इलाज और उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।

11– गैर सरकारी संस्थाएँ दिल्ली की नवज्योति संस्था, बनारस की होप सामाजिक संस्था जैसी अनेक संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत हैं। ये संस्थाएँ नशीले पदार्थों से होने वाले हानियों के बारे में जागरूकता पैदा करती हैं तथा नशे के लत वाले व्यक्तियों को निशुल्क सेवा उपलब्ध कराने का कार्य भी करती हैं।

12– अध्यापकगण को मादक पदार्थों के दुरूपयोग से जुड़े खतरों के बारे में चर्चा करनी चाहिये तथा छात्रों के समस्याओं के बारे में बात कर उनका समाधान करने के लिये छात्रों का मार्गदर्शन करना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- इंटरनेट द्वारा
- मुखर्जी एवं अग्रवाल एसबीपीडी पब्लिकेशंस आगरा 2016 पृऊ संख्या 220
- आहूजा, राम–सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशंस जयपुर 2018 पृष्ठ संख्या 370–371
- पूर्वोक्त मुखर्जी एवं अग्रवाल पृष्ठ संख्या 270
- दैनिक जागरण समाचार पत्र वाराणसी 17 जनवरी 2019
- पूर्वोक्त, राम अहूजा पृष्ठ संख्या 378–379

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

भारतीय लोकतंत्र के गलियारे में महिलाएं : एक समाज वैज्ञानिक विश्लेषण
(लोकसभा के विशेष संदर्भ में)

योगेंद्र प्रसाद यादव
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ईमेल–ypyvns@gmail-com

शोध सारांशः– भारत में पिछले कुछ दशकों में महिला सांसदों के ग्राफ में सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन आज भी दुनिया के अन्य देशों से इनकी सहभागिता प्रतिशत भारतीय राजनीति में बहुत कम दिखाई पड़ता है। वर्तमान समय में भारतीय लोकसभा में कुल 78 महिला सांसद हैं जो की दुनिया के अन्य देशों से तुलना किया जाए तो यह बहुत कम दिखाई देता है।

मुख्य शब्दावलीः– सांसद, लोकसभा, पूंजीवाद, लैंगिक असमानता, राजनीति अपराधिक प्रवृत्ति, साक्षरता, प्रभुत्व, प्रतिनिधित्व, विश्व पटल, विमर्श, आधुनिक, परिदृश्य आदि ।

भारत के प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति बहुत मजबूत मानी जाती थी उस समय महिलाएं न केवल शिक्षा बल्कि कला कौशल और युद्ध विद्या में भी परंपरागत निपुण थी वैदिक काल में भी महिलाओं की दशा बहुत अच्छी थी उस काल समय में मैत्रयी एवं गार्गी जैसे महिलाओं ने अपने ज्ञान व कौशल से बड़े–बड़े विद्वानों को परास्त किया था। बाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है कि इसी काल में स्त्रियाँ ऋषियों के साथ आश्रम में निवास करके पुरुषों के समान ही सभी उच्च कोटि की शिक्षा ग्रहण करती थी। कैकेयी रानी दुर्गावती रानी लक्ष्मीबाई एवं अहिल्या आदि के नाम महत्वपूर्ण है। पी.एन. प्रभु ने वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि जहां तक शिक्षा का संबंध है स्त्री पुरुष में कोई विशेष अंतर उस समय नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में समानता पाई जाती थी।[1] मनु ने लिखा है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता, यत्र नारी न पूज्यंते सर्व स्ततः फलः क्रिया। मतलब जहां पर महिलाओं की पूजा नहीं होती है या सम्मान नहीं दिया जाता वहां देवता भी वास नहीं करते और सभी कार्य में असफल हो जाते हैं।[2]

आधुनिक युग में देखा जाए तो महिलाओं का कोई विशेष अभी तक किसी क्षेत्र में विकास नहीं हो पाया है। लेकिन इतना अवश्य है कि पिछले कुछ दशकों में इनकी परिस्थितियों में बदलाव अवश्य आए हैं। आधुनिक भारत में महिलाएं प्रधानमंत्री मुख्यमंत्री राज्यपाल राष्ट्रपति प्रोफेसर आदि जैसे तमाम पदों पर आसीन हुई है। भारत में 19वीं सदी से लेकर 21वीं सदी तक आते–आते महिलाओं की स्थिति में सुधार तेजी से हुआ है। वर्तमान समय में भारतीय राजनीति के संदर्भ में महिलाओं ने नए नए कीर्तिमान हासिल किए हैं। देश के सर्वोच्च पद राष्ट्रपति के पद पर श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, प्रधानमंत्री पद पर इन्दिरा गाँन्धी, लोकसभा अध्यक्ष पद पर श्रीमती मीरा कुमार, मुख्यमंत्री पद पर मा. मायावती वसुंधरा ममता बनर्जी शीला दीक्षित जयललिता आदि तथा अन्य लोकप्रिय भारतीय राजनीति में सोनिया गांधी सुषमा स्वराज मेनका गांधी स्मृति ईरानी डिंपल यादव अनुप्रिया पटेल सुप्रिया सुले रागिनी सोनकर पल्लवी पटेल आदि महिलाएँ भारतीय राजनीति में किसी भी परिचय की मोहताज नहीं है।[3]

भारत देश में स्वतंत्र से पहले ही सन् 1917 मैं राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता की मांग की गई भारत में सन 1934 में पहली बार महिलाओं को राजनीति के क्षेत्र में मतदान करने का अवसर प्रदान किया गया स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय महिलाओं की राजनीति में सहभागिता बहुत अच्छी नहीं है लेकिन

भारतीय राजनीति के क्षेत्र में कुछ प्रसिद्ध नाम महिलाओं के हैं। जिसमें इंदिरा गांधी सुचेता कृपलानी विजयलक्ष्मी पंडित सरोजिनी नायडू आदि जो किसी परिचय के मोहताज नहीं है।[4]वहीं दूसरी भारतीय लोकसभा की राजनीति में देखा जाए तो सन् 1957 के चुनाव में सिर्फ 45 महिलाओं ने सहभागिता किया था तो 2014 में इनकी संख्या लगभग 668 थी तथा पंचायती निर्वाचित महिलाओं की कुल प्रतिनिधित्व लगभग 46% है। इनकी संख्या लगभग 13 लाख से भी ज्यादा है। महिलाओं का राजनीति के क्षेत्र में आने के फलस्वरूप देश की राजनीतिक परिदृश्य में अवश्य परिवर्तन आ रहा है। जिसका कारण महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत का बढ़ना है 1951 में भारतीय महिलाओं की साक्षरता दर केवल 9% थी वही सन् 2011 की जनगणना अनुसार महिलाओं की कुल साक्षरता दर 65% लगभग है।[5]

दुनिया के पटल पर अगर हम भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति पर गौर करें तो भारत 193 देशों में 141 में नंबर पर दिखाई देता है। विश्व पटल के संसद में 22.6% महिलाएं राजनीति क्षेत्र में अपनी सहभागिता को निभा रही हैं। तो वहीं दूसरी ओर भारत में इनका कुल औसत केवल 12% ही लगभग है जो दुनिया के अन्य देशों रबाडा में 63.8 प्रतिशत अफगानिस्तान 27.7% नेपाल 29.5 प्रतिशत तथा चीन 23. 6% के मुकाबले बहुत कम दिखाई पड़ता है। भारत में आजादी के बाद प्रथम केंद्र सरकार पंडित जवाहरलाल नेहरु जी की आई थी लेकिन 20 कैबिनेट मिनिस्ट्री मंत्री के पद में केवल 1 पद हेल्थ मिनिस्ट्री का पद महिला राजकुमारी अमृत कौर को मिला था जो स्वास्थ्य मंत्री का कार्यभार मिला था इसके बाद सत्ता में आयी लाल बहादुर शास्त्री की सरकार में किसी भी महिला को कैबिनेट मंत्री का कोई भी पदभार नहीं दिया गया लेकिन हद तब हो जाती है। जब एक महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी सत्ता में आती है। और गांधी 5वीं,6वीं और 9वी कैबिनेट मिनिस्ट्री में एक भी महिला को पदभार नहीं दिया गया राजीव गांधी के कार्यकाल में भी एक महिला मोहसिना किदवई को कैबिनेट मिनिस्ट्री में सम्मिलित किया गया था। लेकिन वर्तमान मोदी सरकार में महिलाओं की स्थिति राजनीतिक क्षेत्र में पहले से बेहतर हुई 23 कैबिनेट मंत्री में 6 महिला को सम्मिलित किया गया है।[6]

वर्तमान लोकसभा 17वीं में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि अधिक हुई है। प्रथम लोकसभा चुनाव में जहां केवल 5% महिलाएं चुनकर संसद में आई थी। वही वर्तमान समय में यह प्रतिशत बढ़कर लगभग 14.3%हो गया 17वीं लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या बढ़कर 78 हो गई जो अब तक के भारतीय राजनीति के इतिहास में सर्वाधिक है।[7]

भारतीय राजनीति में महिलाओं का प्रतिशत ग्राफ पिछले कुछ दशक में प्रकार से रहा है–

सन्	2004	2009	2014	2019
प्रतिशत	9	11	11-3	14-4

लेकिन देखा जाए तो दुनिया के अन्य देशों के जैसी यू. के. 32 प्रतिशत यूएसए 24% तथा बांग्लादेश 21%9 रबाडा 61% साउथ अफ्रीका 43% के मुकाबले भारत 14.4 के साथ भारत आज भी बहुत पीछे है। भारत में राज्य और महिला सांसदों की औसत प्रतिशत सहभागिता प्रतिशत को देखा जाए तो लगभग 17. 5% के साथ 14 महिला सांसद के साथ उत्तर प्रदेश की स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में ही नहीं बल्कि भारत से भी अधिक बेहतर है। दूसरी और महाराष्ट्र में यह केवल 12.5% 6 सांसद तथा बिहार में केवल 7. 9% तीन महिला सांसद है इसलिए भारतीय राजनीति में महिला प्रतिनिधि को हम बहुत अच्छा नहीं मान सकते हैं।[10]

108 वां संविधान संशोधन विधेयक राज्यसभा में 9 मार्च 2010 को पारित हुआ लेकिन लगभग 11 साल बाद भी इसे लोकसभा में पास नहीं किया जा सका है जिसके कारण राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का बहुत अधिक प्रतिनिधित्व नहीं है भविष्य में यदि लोकसभा व राज्यसभा में 33% महिला आरक्षण बिल लागू किया जाता है, तो निःसंदेह महिलाओं के प्रतिनिधित्व में वृद्धि होगी वैसे देखा जाए तो भारतीय राजनीति के विमर्श में महिलाओं की सहभागिता लेने की रूचि बहुत अधिक दिखाई नहीं देती है परंतु अवसरवादी तथा लैंगिक भेदभाव एवं अति पुरुषवादी दृष्टिकोण के कारण राजनीति के क्षेत्र में इनका प्रतिशत आज भी बहुत कम है। सन् 2014 के लोकसभा में सिर्फ 11% महिलाएं चुनकर संसद आई थी अर्थात 90 लाख पर महिलाओं पर सिर्फ एक महिला सांसद थी वर्तमान लोकसभा में इनकी प्रतिशत में थोड़ा सुधार अवश्य हुआ तथा कुल महिला सांसदों की संख्या 78 है लेकिन फिर भी हम दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले में बहुत पीछे हैं।[11] स्वतंत्रता के बाद भारत के इतिहास में ऐसा पहली बार होगा कि संसद में कुल 103 महिला सांसद मानसून सत्र में सम्मिलित होगी क्योंकि वर्तमान समय में राज्यसभा में कुल 62 नए सांसदों का चुनाव हुआ जिसमें 4 महिला सांसद भी चुनी गई इस प्रकार इनकी कुल संख्या देखी जाए तो 78 लोकसभा और 25 राज्य सभा में मिलाकर इनकी कुल संख्या 103 है जो स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक है।[12]

निष्कर्ष एवं सुझावः– दुनिया की किसी भी देश की परंपरा एवं संस्कृति उस राष्ट्र में रहने वाली महिलाओं से परिलक्षित होती है। जहां महिलाएं किसी भी समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। यदि हमें वास्तव में अपने देश के महिलाओं को सशक्त बनाना है। तो सर्वप्रथम हमें उनकी आर्थिक स्थितियों को मजबूत करना होगा जो केवल शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है क्योंकि शिक्षा ही एकमात्र ऐसा हथियार है जो उनके संपूर्ण सामाजिक संरचना को बदल सकता है। महात्मा गांधी ने कहा था की स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है वह अर्धांगिनी व मित्र है। महिलाओं मैं अपार शक्तियां निहित होती है, इनकी शक्ति को पहचान कर देश को सामाजिक आर्थिक राजनीतिक रूप से मजबूत बनाया जा सकता हैं। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में तमाम प्रयास के बाद भी इन का प्रतिनिधित्व आज भी बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता है सन् 1992 में महिला आयोग की स्थापना तथा सन् 2001 में महिला सशक्तिकरण के माध्यम से इनके जीवन स्तर उठाने का प्रयास किया गया है। 73 में 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से इनको पंचायती राजनैतिक क्षेत्र में 33% तो कहीं 50% आरक्षण दिया गया है। फिर भी इसके ऊपर के चुनाव में उनका प्रतिनिधित्व वर्तमान समय में अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम है। इसका कारण हमारा समाज का पुरुष प्रधान होना है। लेकिन फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में धीरे–धीरे भारतीय महिलाएं अपनी पैर मजबूती से आगे की ओर बढ़ा रही हैं। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का कथन आज भी प्रासंगिक है कि जब महिलाएं आगे बढ़ती है तो परिवार आगे बढ़ता है समाज आगे बढ़ता है और राष्ट्र भी अग्रसर होता है।[13]

सुझावः– भारतीय महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में सहभागिता बढ़ाने के लिए निम्नांकित सुझाव महत्वपूर्ण है–

1. महिलाओं का राजनीति के क्षेत्र में पिछड़े होने का एक महत्वपूर्ण कार्य निरक्षरता भी है जिसकी वजह से वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं रहती है और समाज में पिछड़ी रहती हैं।
2. समाज में पाई जाने वाली लैंगिक असमानता भी भारतीय राजनीति में महिलाओं को आगे बढ़ने में बाधक बनती है। अतः इस प्रकार के मनोभाव को दूर करके भारतीय राजनीति में इनके सहभागिता के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।
3. परिवार व घरेलू कार्यों से भी महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में अपना पूरा समय नहीं दे पाती हैं जिस कारण वह इस क्षेत्र में जाना पसंद नहीं करती है।

4. महिलाओं में राजनीतिक रूचि का भी अभाव है। प्रायः उच्च स्तर के चुनावों में यही कारण है कि आज तक उनकी सहभागिता बहुत कम है।
5. राजनीतिक क्षेत्र में पूंजीवादी प्रभुत्व के कारण भी महिलाएं इसमें अधिक नहीं पहुंच पाती हैं। जिसके कारण उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम रहता है।
6. वर्तमान समय में भारतीय राजनीति के क्षेत्र में अपराधिक प्रवृत्तियों के लोगों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। इस कारण भी इच्छुक महिलाएं जो पढ़ी लिखी है वह भी इसमें जाना पसंद नहीं करती हैं।
7. सामाजिक व सांस्कृतिक बंधन भी राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ने में महिलाओं के लिए बाधक बनते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंहल, सुरेश चंद्र (2010) समकालीन राजनीतिक मुद्दे प्रकाशक लक्ष्मीनारायण अग्रवाल.आगरा पृष्ठ संख्या 163 ,178
2. सिंह ,सरोज नवीन संस्करण समाज में परिवार का का अध्ययन, प्रकाशक स्टार पब्लिकेशन आगरा की संख्या 268
3. .http://ignited.in>…
4. www.livehindustan.com
5. योजना पत्रिका अंक अक्टूबर 2018 पृष्ठ संख्या 8,9
6. https://wwww.youthkiawaaz.com
7. dristiIas.com>hindi
8. hindi.thequint.com
9. https://www.abpil.com
10. https://www.drishtiias.com
11. https://epw.in
12. https://ddnews.gov.in
13. परीक्षा मंथन निबंध श्रृंखला भाग–2 मंथन प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 99

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

नगरीय मलिन बस्तिया : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अमित मालवीय
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी, उत्तर प्रदेश,भारत

सारांश
नगरों में रहना आधुनिक मानव पारिस्थितिकी का मुख्य आधार है। पिछले कुछ दशकों में नगरों की वृद्धि और विस्तार शीघ्रता से हुआ है। नगर रोजगार और शिक्षा का स्रोत हैं और आर्थिक वृद्धि का केन्द्र भी हैं तथापि वे गरीबी असमानता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य आपदा का भी स्रोत हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ जिस तरह नगरीकरण तथा औद्योगीकरण नेप्राकृतिक और सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न की हैं उनमें मलिन बस्तियाँ भी एक ज्वलंत सस्याहै। मलिन बस्तियों का विकास परिस्थितिवश उत्पन्न एक समस्या है जिसमें समुदाय का एक बड़ा वर्ग हिस्सा लेता है। झुग्गी एक अत्यधिक आबादी वाला नगरीय आवासीय क्षेत्र है जिसमें ज्यादातर खराब अधूरे पड़े अधोसंरचना की स्थिति में आवासहीन इकाइयाँ हैं जो मुख्य रूप से गरीब लोगों द्वारा बसाईं गईं हैं। यह नगर का एक हिस्सा है जहां आवास की गुणवत्ता कम है और रहने की स्थिति खराब है।

मुख्य शब्द–बस्तिया, नगर,समस्या, मकान, क्षेत्र।

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने नगरों में अनेक समस्याओं को उत्पन्न करने का श्रेय दिया जाता है। इनमें गंदी बस्तियाँ भी एक प्रमुख समस्या है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक समाजएवं प्रत्येक राष्ट्र में यह समस्या पाई जाती है। भले ही इसका स्वरूप भिन्न हो अंतर केवल मात्रा का हो सकता है। भारत के विभिन्न नगरों में गंदी बस्तियों का नाम पृथक् पृथक् है। उदारणस्वरूप कोलकाता में स्लम को बस्तीदिल्ली में इसे झुग्गि–झोपड़ी मुम्बई में चॉल या झोंपड़पट्टीचेन्नई में पेरी तथा कानपुर में इसे अहाता कहा जाता है। भारत में स्लम के नाम में भले ही क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती हो लेकिन इन सभी मलिन बस्तियों में भौतिक विशेषता समान पाई जाती है।स्लम को 'एक आवासीय क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहां आवास जीर्णता अतिवृष्टि वेंटिलेशन या स्वच्छता सुविधा की कमी और अस्वच्छ परिस्थितियों में पीने के पानी की असुविधा के कारण मानव आवास के लिए अयोग्य हैं। जबकि भारत की अर्थव्यवस्था में पिछले कई दशकों से लगातार उछाल आ रहा है और स्वच्छ भारत अभियान (स्वच्छ भारत मिशन)दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। विश्व में 360मिलियन गरीब नागरिक हैं जो सबसे अधिक जीर्ण परिस्थितियों में रहते हैं। मलिन बस्तियाँ हमारे देश का अपरिहार्य और अंधकारमय पक्ष बन गई हैं।

वर्तमान समय में गंदी बस्तियों की समस्या ने राष्ट्रव्यापी रूप धारण कर लिया है। इस एक समस्या ने अनेक सामाजिक समस्याओं का फैलाव करने में प्रमुख भूमिका निभाई है। चूँकि इन बस्तियों में मध्यम एवम् निम्न वर्ग के परिवार रहते हैं तथा इनकी आय के स्रोत एवम् आय इतनी सीमित रहती है जिससे ये अपने परिवार के सदस्यों का भरण पोषण सुचारू रूप से नहीं कर पाते। इन बस्तियों में अपराध बाल अपराध वैश्यावृत्ति मद्यपान मादक द्रव्यों को रखनेका स्थल एवम् अन्य अनैतिक कार्य होते हैं और गंदी बस्तियां अनैतिकता का अड्डा बन जाती हैं। इन बस्तियों में आधारभूत सुविधा जैसे पानी हवा बिजली रोशनी स्नानगृह की कमी व शौचालय अपर्याप्त जल निकासी की व्यवस्था एवं ठोस अपशिष्ट व कचरे के निपटान आदि की उचित व्यवस्था न होने के कारण यह बस्तियां वायु तथा जल जनित बीमारियों का घर बन गई

हैं। अधिकांश महिलाएं व बच्चे बीमार व रोग ग्रस्त होते हैं जिन्हें दवाइयां व इलाज की व्यवस्था न होने के कारण नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है।

सामान्य रूप से जब नगर की जनसंख्या में अधिक वृद्धि होती है, तो केन्द्र में बसने वाली जनसंख्या नगर की बाहरी सीमा पर बसने लगती है। यह एक ग्रामीण क्षेत्र होता है, लेकिन नगर के लोगों के बसने के कारण इसे उपनगर कहा जाता है और यह नगरीय विशेषता को दर्शाने लगता है। उपनगर से जुड़ने के साथ शहर या नगर महानगर में परिवर्तित हो जाता है। इसे महानगरीय नगर भी कहा जाता है।

वर्तमान में औद्योगिक केन्द्रों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हुई है एवं उसी के अनुपात में मकानों का निर्माण न हो पाने के कारण वहाँ अनेक गन्दी बस्तियाँ बन गई है। विश्व के प्रत्येक प्रमुख नगर में नगर के पाँचवें भाग से लेकर आधे भाग तक की जनसंख्या गन्दी बस्तियों अथवा उसी के समान दशाओं वाले मकानों में रहती है। नगरों की कैंसर के समान इस वृद्धि को विद्वानों ने पत्थर का रेगिस्तान, व्याधिकी नगर, नरक की संक्षिप्त रूपरेखा आदि कहकर पुकारा है। गन्दी बस्तियों में मकान अन्धेरे व सीलन युक्त होते हैं। इनमें शौचालय, स्नानघर, पानी, बिजली, हवा एवं रोशनी की पर्याप्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। साथ ही इनमें मच्छर, खटमल, छिपकलियों, चूहों और बीमारी के कीटाणुओं की बहुलता पाई जाती है। यह निवास की अर्द्ध मानवीय दशा है और यह मानवीय जाति की शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से कमजोर पीढ़ी को जन्म दे रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार, गन्दी बस्ती एक मकान, मकानों का एक समूह या क्षेत्र है जिसकी विशेषता भीड़–भाड़ युक्त, पतनोन्मुख, अस्वस्थ्य दशा तथा सुविधाओं का अभाव है। इन दशाओं अथवा इनमें से किसी एक के कारण इसके निवासियों अथवा समुदाय के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं नैतिकता को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

गन्दी बस्तियों के विकास के कारक

प्राकृतिक प्रकोप जब कभी प्राकृतिक प्रकोप होता है अर्थात् अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प एवं संक्रामक रोग आते हैं, तो लोग अपने घर को छोड़कर सुरक्षित स्थानों पर चले जाते हैं और वहीं जनाधिक्य के कारण गन्दी बस्तियाँ पनपने लगती हैं।जनसंख्या में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि जितनी तीव्र गति से हुई है, उसी तीव्र गति से मकानों का निर्माण नहीं होने से लोगों के लिए आवास का अभाव पैदा हुआ और लोग भीड़–भाड़ युक्त मकानों में अथवा एक ही मकान में कई परिवार एकसाथ रहने लगे फलस्वरूप गन्दी बस्तियाँ पनपीं है

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने गन्दी बस्तियों को जन्म दिया। उद्योगों में काम करने के लिए गाँव से आने वाले लोगों को निवास के लिए जब कम किराये पर अच्छे मकान उपलब्ध नहीं होते हैं, तो वे गन्दे मकानों में रहने लगते हैं अथवा खाली पड़ी भूमि पर अनधिकृत अधिकार कर कच्चे मकान बना लेते हैं। नगर की परिधि एवं उद्योगों के आस–पास उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों द्वारा ऐसी ही बस्तियों का निर्माण किया जाता है।

नगरीय आकर्षण नगरों में मनोरंजन, चिकित्सा, पुलिस, न्यायालय, नल, बिजली, शिक्षा आदि की सुविधाओं के कारण लोग आकर्षित होकर वहाँ निवास के लिए आते हैं। उनके लिए आवास के अभाव के कारण नगरों में गन्दी बस्तियों का निर्माण एवं प्रसार होने लगता है। सामाजिक पृथक्कता जातीय भेदभाव के कारण भारतीय नगरों में जातिगत मोहल्ले पाए जाते हैं। एक जाति के लोग एक स्थान पर ही रहते हैं। निम्न जातियों की बस्तियों अपेक्षाकृत अधिक दयनीय स्थिति में हैं। उच्च जातियों से सम्पर्क के अभाव के कारण निम्न जाति के व्यक्ति निवास की उत्कृष्ट दशा ग्रहण नहीं कर पाते। गन्दी बस्तियों के निर्माण का प्रमुख कारण गरीबी है। लोगों के पास इतना पैसा नहीं होता है कि वे ये स्वास्थ्यप्रद एवं अच्छे मकानों को

लेकर रह सकें। परिणामस्वरूप वे सस्ते किराये के मकानों में रहते हैं, जो गन्दी बस्तियों में ही उपलब्ध होते हैं।

देशान्तरगमन आज लोगों में गतिशीलता बढ़ी है। यातायात की सुविधा ने भी इस प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया है। लोगों में देशान्तरगमन करने की बढ़ती प्रवृत्ति ने नगरों में बसने का आकर्षण पैदा किया और वहाँ गन्दी बस्तियों को जन्म दिया। करोड़ों की संख्या में बांग्लादेश से आए शरणार्थियों ने गन्दी–बस्तियों के विस्तार में योगदान दिया है। मकानों की कमी नगरों में मकानों के अभाव के कारण लोगों को मजबूरी में गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। मकानों की माँग की तुलना में पूर्ति कम होने से वहाँ मकानों के किराये बढ़ जाते हैं। भू–स्वामी और सम्पन्न लोग एक–एक कोठरी वाले ऐसे मकान बनाते हैं जिसमें श्रमिक लोग रह सकें। इन मकानों में सुविधाओं का अभाव होता है और धीरे–धीरे ये क्षेत्र गन्दी बस्तियों में बदल जाते हैं।

सरकारी प्रयत्नों का अभाव गन्दी बस्तियों के विकसित होने का एक कारण स्वयं सरकार द्वारा श्रमिकों एवं इन बस्तियों में सफाई सुविधा, आदि के प्रति उपेक्षा बरतना है। सरकार यदि मकान मालिकों को निवास के निर्माण एवं सफाई के समुचित निर्देश दे और स्वयं भी उसके लिए स्वच्छ कालोनियाँ बनाए, तो गन्दी बस्तियाँ विकसित नहीं हो पाएँगी।

ऐसे ही कुछ उदाहरण और भी हैं जैसे–शोषण एवं ह्रदयहीनता, श्रमिकों की अधिकता, निम्न वर्गों की अधिकता, गन्दी बस्तियों का दृष्टिकोण, व्यापारिक उन्नति और ग्रामीण बेकारी आदि।

गन्दी बस्तियों के प्रमुख क्षेत्र

भारत में अधिक जनसंख्या होने के कारण गन्दी बस्तियों की भीषण समस्या उत्पन्न हुई है। वर्तमान में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों की करोड हो गई है। निरन्तर नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण इन बस्ति लगभग की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। भारत के प्रमुख शहरों, विशेषकर महानगरों में इनकी संख्या सर्वाधिक पाई जाती है। मुम्बई में इन्हें चाल, कानपुर में अहाते, कोलकाता में बस्ती, चेन्नई में दिल्ली में कटरा, खान क्षेत्रों में घोक्रो, बागान क्षेत्रों में वैरेक्स कहा जाता इन गन्दी बस्तियों की प्रमुख विशेषता अनेक मंजिले मकान जिसमें हवा, रोशन और जल एवं बिजली की उचित व्यवस्था नहीं होती, उनमें स्वास्थ्य एवं सरर्थक सुकियाओं का पूर्ण अभाव होता है। एक ही कमरे में कई–कई लोग निवास करते है सुति का वातावरण प्रदूषित होता है अर्थात मानवीय जीवन के लिए आवश्यक की मूलभूत सुविधाओं का अभाव पाया जाता है, इसलिए नेहर ने इन्हें कारक हुन्छ। मत संज्ञा दी थी। मसानी कहते हैं कि विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगत मानव ने और अम बस्तियों की शैतानों ने।

गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में आवास एवं गन्दी बस्तियों की गम्भी समस्या है और यह आधुनिक समाज के लिए चुनौती है। आवास की दुर्दशा अनेक आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक एवं पारिवारिक दोषों को जन्म देती है और राष्ट्रोष प्रगति को अवरुद्ध करती है। हमने यहाँ आवास सुविधाओं एवं गन्दी बस्तियों के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है

स्वास्थ्य का ह्रास आवास की दुर्व्यवस्था होने एवं गन्दी बस्तियों में रहने से लग के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मानव के लिए शुद्ध हवा, जल एवं रोशनी अति आवश्यक है। इनके अभाव में कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती है। डॉ. अमर नारायण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक इण्डस्ट्रियल हाउसिंग इन इण्डिया में लिखा है, मुम्बई की चालें, कानपुर, लखनऊ और हारा की आन्तरिक बस्तियाँ, जूट मिल के गाँव वाले छप्पर, कोयले की खानों के गर्द घावरे तथा चेन्नई के औद्योगिक कस्बों के गन्दे छप्पर सभी तपेदिक और दूसरे श्वास रोगों के घर बन गए हैं। गन्दी बस्तियों में मृत्यु दर अन्य स्थानों की अपेश अधिक है।

नैतिक पतन और अपराध गन्दे वातावरण में रहने के कारण लोगों की मनोवृति अपराधी बन जाती है और उनका नैतिक पतन हो जाता है। उनमें बोरी, वेश्याही शराबखोरी और जुआ खेलने की आदतें जन्म लेती है। गन्दी बस्तियों में बौन अधिकार अधिक पाए जाते हैं। गरीबी के कारण बच्चे इधर–उधर घूमते हैं, किल्ल बाल अपराध और आवारागदीं पनपती है। डॉ. मुखर्जी ने लिखा है, औद्योगिक केन्द्रो की इन असंख्य गन्दी बस्तियों में मनुष्यता का निःसन्देह हो निर्दयता के साथ गला घोंटा जाता है, नारीत्व का अपमान होता है और शिशुत प्रारम्भ से ही विषपान कराया जाता है।

निम्न जीवन–स्तर गन्दी बस्ती में रहने वाले व्यक्तियों की कार्यक्षमता जिसका प्रभाव उनकी आय पर पड़ता है और कम आय होने पर उच्चजीवन–स्तरव्यतीत करना सम्भव नहीं हो पाता। यहाँ तक कि लोग अपनी आवश्यकताओं को जुटाने में असमर्थ होते हैं। आय में कमी आवास की बुरी व्यवस्था व्यक्ति की कार्यक्षमता घटाती है. जिसमें फलस्वरूप व्यक्ति की आय कम हो जाती है और वह गरीबी की स्थिति से छुटकारा पाने में असमर्थ होता है। श्रमिकों की कुशलता पर प्रभाव श्रमिकों को कुशलता के लिए, आवश्यक है कि उनका स्वास्थ्य भी अच्छा हो। मकान ऐसे हो जहाँ शुद्ध हवा व रोशनी हो, ताकि वे अपनी थकावट दूर कर सकें एवं कार्य करने की क्षमता को पुनः प्राप्त कर सके, किन्तु स्वच्छ एवं पर्याप्त मकानों के अभाव में श्रमिकों की कार्यक्षमता घट जाती है।

सांस्कृतिक स्तर में ह्रास दयनीय आवास व्यवस्था के कारण लोगों के सांस्कृतिक स्तर में गिरावट आ जाती है। वेश्यागमन के कारण लोगों का नैतिक पतन हो जाता है। मुखर्जी ने एक स्थान पर लिखा है, वेश्यागमन की प्रवृत्ति से स्त्री और पुरुष दोनों के ही चरित्र दूषित होते हैं। उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है और राष्ट्र का सांस्कृतिक स्तर गिर जाता है। राष्ट्र को हानि आवास की दुर्व्यवस्था के कारण श्रमिकों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इससे उनकी कार्यक्षमता घट जाती है तथा औद्योगिक तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं। इन सभी का राष्ट्रीय उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सरकार को समाज कल्याण के लिए अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है।

गन्दी बस्तियों की समस्या को हल करने के लिए किए गए प्रयास

1– कम आय वर्ग आवास योजना वर्ष 1954 में प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत उन लोगों को मकान बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जिनकी मासिक आय 700 से अधिक न हो। इस योजना की अधिकतम ऋण राशि 14500 तक हो सकती है। वर्तमान में इसे प्रधानमन्त्री आवास योजना के अन्तर्गत शामिल किया जा चुका है।

2– ग्रामीण आवास योजना यह योजना वर्ष 1957 में शुरू हुई। इसके तहत आवासों के उन्नयन हेतु 6000 तथा आवासों के निर्माण हेतु 12000 प्रदान किए जाते हैं।

3– गन्दी बस्तियों के पर्यावरण का सुधार यह योजना वर्ष 1972 में प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत गन्दी बस्तियों में पीने के पानी, जल–मल निकास, स्नानघर व शौचालय बनाने, रोशनी का प्रबन्ध व गलियों को चौड़ा एवं पक्का करने के लिए राज्य सरकार को वित्तीय सहायता दी जाती है।

4– इन्दिरा आवास योजना यह योजना वर्ष 1985–86 से प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों–जनजातियों और मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों और गैर–अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों की श्रेणियों में आने वाले ग्रामीण गरीबों के लिए मकान बनाए जाते हैं। इस योजना के तहत आवास निर्माण हेतु 70,000 की धनराशि दी जाती है। वर्तमान में यह योजना भी प्रधानमन्त्री आवास योजना में समाहित की जा चुकी है।

5– आवास वित्त योजना इस योजना में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं बीमा कम्पनी सम्मिलित रूप से बीमित व्यक्ति को सस्ते मूल्य पर आवास देने हेतु कम ब्याज पर ऋण प्रदान करती है। वर्ष 1988 में राष्ट्रीय

आवास बैंक की स्थापना की गई है। यह बैंक, हुडको के माध्यम से भूमि विकास एवं वित्तीय कार्यक्रम चला रहा है।

6– कुटीर ज्योति कार्यक्रम हरिजन परिवारों सहित आदिवासी और गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन–स्तर में सुधार के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1988–89 में कुटीर ज्योति कार्यक्रम चलाया गया। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए विद्युत कनेक्शन उपलब्ध कराने के लिए 400 की सरकारी सहायता उपलब्ध कराना है।

7– अम्बेडकर वाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना इस योजना को प्रधानमन्त्री द्वारा औपचारिक ढंग से 2 दिसम्बर, 2001 को प्रारम्भ किया गया था। इस योजना का उद्देश्य शहरी क्षेत्रों की मलिन बस्तियों में रहने वाले गरीब और निर्बल वर्गों के लोगों को आवासीय इकाइयों की व्यवस्था करना है। इसके अन्तर्गत इन क्षेत्रों में रहने वाले गरीब अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों तथा अन्य कमजोर वर्गों के परिवारों को वहन योग्य मूल्य पर आवासीय सुविधा उपलब्ध कराना है।

8– निर्मल भारत अभियान योजना इसकी घोषणा प्रधानमन्त्री द्वारा 15 अगस्त, 2002 को की गई। योजना का मुख्य उद्देश्य गन्दी बस्तियों में सामुदायिक शौचालयों की सुविधा को विस्तारित करना बताया गया है।

9– स्मार्ट सिटीज मिशन इस मिशन की शुरुआत वर्ष 2015 में की गई। यह मिशन पूर्ण तथा एकीकृत योजना के सिद्धान्तों पर शहरी इको–सिस्टम के विकास करने के विचार पर आधारित है, जो सतत एवं समावेशी विकास पर बल देता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित इस मिशन के दृष्टिकोण का उद्देश्य उन शहरों को बढ़ावा देना है, जो मूलभूत अवसंरचना उपलब्ध करा सके तथा अपने नागरिकों को एक विशिष्ट गुणवत्तापूर्ण जीवन, साफ और सतत पर्यावरण तथा स्मार्ट समाधान का अनुप्रयोग दे सके। वर्तमान में कुल 100 स्मार्ट सिटीज की घोषणा सरकार द्वारा की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु सर्वाधिक स्मार्ट सिटीज प्राप्तकर्ता राज्य हैं।

10– समेकित मलिन बस्ती एवं विकास कार्यक्रम इस कार्यक्रम की शुरुआत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मलिन विकास कार्यक्रम और बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना को मिलाकर की गयी थी। इसका उद्देश्य मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों को पर्याप्त आवासीय और मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा 80:20 के अनुपात में इस कार्यक्रम के लिए वित्तपोषण किया जाता है। 2008–09 तक इसके तहत प्रति मलिन परिवार 80,000 की राशि जारी की जाती थी जिसे बढ़ाकर वर्तमान में 1,00,000 कर दिया गया है।

11– प्रधानमन्त्री आवास योजना इस योजना का शुभारम्भ 25 जून 2015 को किया गया। इसका उद्देश्य वर्ष 2022 तक सभी को आवास उपलब्ध कराना है। इस योजना के लाभार्थी के लिए 70,000 के लोन की भी व्यवस्था है तथा 12,000 अलग से, शौचालय निर्माण हेतु प्रदान करने का प्रावधान है।

गन्दी बस्तियों के सुधार हेतु सुझाव

1– मकान निर्माण के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा दिए जाने वाले ऋण में वृद्धि की जाए, किस्तों में रियायत की जाए, ब्याज की दर घटाई जाए और इस कार्यक्रम का विस्तार किया जाए।

2– श्रमिकों का निवास स्थान औद्योगिक केन्द्रों से दूर होने पर उनके लिए निवास से काम के स्थान तक यातायात की सुविधा का प्रबन्ध किया जाए।

3– श्रमिक बस्तियों में बाजार, औषधालय, स्कूल, खेल के मैदान, पार्क, डाक व तारघर आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।

4– श्रमिकों को दिए गए भवन निर्माण हेतु ऋण व भुगतान उनके वेतन में से काटने की व्यवस्था की जाए।

5– केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के कर्मचारियों को आवास सम्बन्धी दी जाने वाली सुविधाएँ श्रमिकों के लिए भी लागू की जाएँ।
6– जो सेवायोजक श्रमिकों के लिए भवन बनाना चाहे, उन्हें भूमि एवं ऋण की सुविधाएँ दी जाएँ।
7– राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इस सन्दर्भ में कुछ सुझाव दिए हैं जैसे– औद्योगिक नगरों में सरकार स्वयं आवास की व्यवस्था करे, प्रत्येक राज्य में आवास बोर्ड गठित किए जाएँ, भवन निर्माण करने वाली सहकारी समितियों का गठन किया जाए, भूमिहीन मजदूरों को घर के स्वामित्व का अधिकार दिया जाए, ग्रामीण मजदूरों एवं अन्य व्यक्तियों के लिए सरकारी योजनाएँ चलती रहनी चाहिए।

सन्दर्भ सूची : –

1 तिवारी श्रीमती शारदा 2007, नगरीय समाजशास्त्र अर्जुन पब्लिशिग हाऊस पृष्ठ संख्या 182,185।

2 जैन, शशी 2012 नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर पृष्ठ संख्या 150.151।

3 खत्री,रीया भारत में नगरीय समाजशास्त्र 2018 कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 260 263।

4 तिवारी,आर.सी. अधिवास भूगोल 2017 प्रवालिका पब्लिकेशन्स इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 319।

5 खत्री, हरीश कुमार नगरीय भूगोल 2018 कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 277।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

पंचायती राज व्यवस्था : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कंचन वर्मा,
शोध छात्रा, समाजशास्त्र

डॉ0 सत्य प्रकाश गुप्ता
समाजशास्त्र विभाग, का0सु0साकेत पीजी कालेज अयोध्या

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा कभी द्वारा कभी कहा गया था कि सच्चा भारत गाँवों में निवास करता है। देश का विकास गाँवों से होकर गुजरता है। जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा तब तक भारत का विकास सम्भव नहीं है। गाँवों के विकास पर ही देश का विकास निर्भर है। गाँवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराष्ट्र की स्थापना होगी, अन्य सभी प्रयत्न निरर्थक साबित होंगे। भारत में सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया है अर्थात शासन की शक्ति को जनता तक पहुँचाने के लिए स्थानीय स्वशासन की स्थापना की गयी है। देश में तीन प्रकार की सरकारों का उल्लेख किया गया है। एक केन्द्र सरकार, दूसरा राज्य सरकार और तीसरा स्थानीय सरकार। स्थानीय सरकार या स्वशासन के दो रूप किये गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों अर्थात गाँवों के लिए पंचायती राज व्यवस्था को लागू किया गया है और शहरों के लिए नगर निकायों का गठन किया गया है।[1]

शोधार्थी के अध्ययन का क्षेत्र पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी है। भारत में अति प्राचीन काल से पंचायतों का अस्तित्व विद्यमान रहा है। इसके प्रमाण ऋग्वेद में मिलते हैं। वैदिक साहित्य में सभा, समिति परिषद आदि संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। धर्मसूत्रों, नीति ग्रन्थों, महाकाव्यों तथ स्मृति ग्रन्थों में लोककल्याण के लिए स्थानीय संस्थाएँ विद्यमान थी।[2] मनुस्मृति, शुक्रनीति, अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में लोक कल्याण के स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण क्षेत्र के महत्व का वर्णन है। डॉ0 जायसवाल का कहना है कि समिति गाँव के जनता की एक संस्था थी।

बौद्ध ग्रन्थों में थी ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है। उस समय ग्राम पंचायत के मुखिया को ग्राम योजक कहा जाता था, जिसका चुनाव गाँव सभा की जनता द्वारा होता था। परन्तु उसे पद से हटाने का अधिकार राजा को था। मौर्य शासन काल में ग्रामीण जनता को सहभागी बनाने का प्रयास किया गया, जिसका वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है।[3] अथर्ववेद में ग्राम का वर्णन मिलता है–

ये ग्रामा यद अरण्य या सभा अभिभ्याम्।
ये संग्रामाः समिति यस्तेषु चारू वेदयते।।

अर्थात् पृथ्वी पर ये ग्राम, वन, सभायें और समितियाँ हैं उन सब में हम सुन्दर वेदयुक्त वाणी का प्रयोग अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थान पर भी सभा का वर्णन पाया जाता है–

सभा व ससमितिश्रचवेता प्रजापते दुविदाने।
मेन संग्द्दा उपभास शिक्षाचारू वदानिपितरः स्वणतेषु।।

अर्थात सभा और समिति प्रजापति के लिए दुष्ठिता सभा और समिति की रक्षा करें। प्रजापति को वे उचित सम्मति प्रदान करें जिससे मैं सभा और समिति में सुन्दर विवेकयुक्त वाणी का प्रयोग करूँ। रामायण युग में भी सभा और समितियों का वर्णन हुआ है–

यदिदयेअनु स्वार्थ मया साधु सुमित्रतम्।
भवन्तो में अनुमन्यतां वयं वा करवाभ्यहम।।

अर्थात यदि मेरे द्वारा कहे गये उत्तम एवं सानुकूल विचार, जिसको मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। आपको उचित प्रतीत होते हो तो उन विचारों को क्रियान्वित करने की आज्ञा प्रदान करें अथवा मुझे इस सम्बन्ध में क्या करना है, इस प्रकार का मार्ग दर्शन करें।

कच्चिच्छूरा कृतप्रज्ञा पंच पंचस्वनुष्ठिताः।
क्षेम कुर्वन्ति संहत्थ राजज्जपदे भवः।।

अर्थात हे राजन! क्या तुम्हारे राज्य में वीर और बुद्धिमान पंच पंचायत कर को वसूल करने तथा पंचायत के अन्य सहायक कार्य करने में लगे हुए हैं और इस प्रकार सामान्य सुख की अभिवृद्धि कर रहे है। इसके अतिरिक्त स्मृति की पुस्तकों में सभा और समितियों का वर्णन प्राप्त होता है।[4] मनुस्मृति के अनुसार ग्रामीण शासन के लिए जो कर्मचारी उत्तरदायी होता था उसे ग्रामीक के नाम से जाना जाता था।[5]

डॉ0 अल्तेकर ने प्राचीन भारत की पंचायतों के विषय में लिखा है कि ग्राम पंचायते गाँव की सुरक्षा का प्रबन्ध करती थी और राज्य के लिए कर एकत्र करती थी। गाँव के झगड़ों को फैसला करना, नये कर लगाना, नई योजनाओं को क्रियान्वित करना पंचायते ही करती थी। ग्राम सभाओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए डॉ0 के0पी0 जायसवाल ने लिखा है कि प्राचीनतम उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एवं कार्यों की अभिव्यक्ति ग्राम सभाओं के माध्यम से ही होती थी।[6]

गुप्तकाल में भी स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था विद्यमान थी। राज्य को विभिन्न प्रान्तों में बाँटा गया था, जो वर्तमान समय में जनपद के समकक्ष होता था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थी, जिसके मुख्य अधिकारी को ग्रामिक या योजक कहा जाता था।

दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य के स्थानीय शासन में ग्राम महत्वपूर्ण इकाई थी। चोल शासनकाल में ग्रामीण प्रशासन सर्वाधिक संगठित था। उस समय राज्य में पंचायतो को महासभा कहते थे, जिसका मुखिया ग्रामिक होता था। महासभा के सदस्य ग्राम की जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। निर्वाचन और सदस्यता के लिए विशेष नियम बनाये गये थे। महासभा का निर्वाचन एक वर्ष के लिए होता था।[7]

मध्ययुगीन हिन्दूकाल में भी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन विद्यमान था। उस समय नये भू–भागों में ग्राम का श्रेष्ठ व्यक्ति शासक होता था और उन ग्रामीणों के न्यासी के रूप में कार्य करता था। मुगलकालीन शासन व्यवस्था में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इकाई अपने पुरातन रूप में विद्यमान थी। अफगान और मुस्लिम शासकों ने पुरातन रूढ़ियों और अभिसमयों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा और न ही ग्रामीण स्वशासन व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। ग्राम पंचायतों का कार्य पहले की तरह चलता रहा। शासक अकबर ने भी ग्राम पंचायतों के निर्णय को स्वीकार किया था।[8]

मुगलकाल की समाप्ति के बाद 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम तक ग्रामों की स्वायत्तता नहीं थी। इस सन्दर्भ में प्रमुख कारण अंग्रेज शासकों के द्वारा केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था को अपनाया गया था। सन् 1870 में लार्ड मेयो ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके द्वारा भारत में स्थानीय स्वशासन के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।[9] ग्रामीण स्थानीय प्रशासन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने वाला प्रथम वायसराय लार्ड रिपन थे जिनके प्रयासों से नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस एक्ट 1883 पारित किया गया। एक्ट के अन्तर्गत ही प्रत्येक जनपद में एक जिला परिषद स्थापित किया जाता था। इसी प्रकार प्रत्येक जनपद को उपजनपदों में विभाजित किया था। प्रत्येक उपजनपद में एक स्थानीय परिषद का गठन किया गया था। सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए 1909 में शाही आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने सुझाव दिया कि प्रशासन का विकास एवं प्रबन्ध के लिए प्रमुख ग्राम में पंचायती राज का गठन किया जाय। सन् 1920 में ब्रिटिश सरकार द्वारा ''संयुक्त प्रान्त विपेज पंचायत अधिनियम 1920'' पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा

विभिन्न प्रान्तों ने अपने यहाँ पंचायती राज की स्थापना के लिए जनपद के जिलाधिकारी को अधिकार दे दिया गया।[10]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सन् 1910 में इलाहाबाद अधिवेशन में ब्रिटिश शासन के समक्ष ग्राम पंचायतों की स्थापना की मांग रखी गयी थी। इसी मांग में पार्टी द्वारा अपने अनेक अधिवेशनों में उठायी गयी। सन् 1917 के कलकत्ता अधिवेशन में ग्राम पंचायतों के महत्व की तरफ संकेत करते हुए कहा गया कि ''आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक पतन को केवल स्वस्थ और रूचिकर ग्रामीण जीवन की पुर्नस्थापना से ही रोका जा सकता हैं सन् 1922 में न्यायालयों के बहिष्कार के बाद यह निर्णय लिया गया कि विवादों का निपटारा पंचायतों द्वारा होनी चाहिए। यंग इण्डिया में राजगोपालाचारी ने लिखा है कि जनक्रान्ति का सर्वोत्तम साधन ग्राम पंचायतें ही है। महात्मा गाँधी द्वारा यह उद्‌गार व्यक्त किया गया कि भारतीयों पर शासन भारतीयों द्वारा किया जाय इसके लिए ग्राम पंचायते ही सबसे प्रमुख उपकरण है। सन् 1932 के गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस द्वारा उठायी गयी। सन् 1942 में गाँधी जी द्वारा ग्राम स्वराज्य की कल्पना लोगों के समक्ष रखी, जिसमें ग्राम पंचायतें स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में कार्य करेगी।11

पंचायत दो शब्दों पंच और आयत से मिलकर बना है। पंच का तात्पर्य पाँच जनप्रतिनिधियों से होता है जबकि आयत का अर्थ विस्तार से है। इस प्रकार पंचायत का शाब्दिक अर्थ प्रतिनिधियों का संगठन है जो व्यापक रूप में गाँवों की स्थानीय व्यवस्था के संचालन तथा विकास के लिए अस्तित्व में आया हुआ है। अतः ग्राम पंचायत का शाब्दिक अर्थ गाँव के पाँच प्रतिनिधियों की व्यवस्था है। जिसके निर्णय को सभी नागरिक स्वीकार करते हैं।

आजादी के बाद ग्राम पंचायतों को संविधान में स्थान दिया गया। इसे संविधान में नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 में रखा गया। इसमें कहा गया है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उनको इतनी शक्तियाँ एवं अधिकार देगा जो कि उन्हें स्वायन्त सरकार की इकाई के रूप में कार्य करने योग्य बना सके।'' श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने पंचायती राज व्यवस्था को लोकतन्त्र की नींव बतलाया है। संयुक्त प्रान्त में पंचायती राज व्यवस्था को प्रारम्भ करने के लिए सन् 1947 में अधिनियम बना, लेकिन इसे लागू नहीं किया जा सका। कुछ वर्षो बाद पंचायती राज व्यवस्था को लोकप्रियता बढ़ती गयी। सबसे पहले 2 अक्टूबर 1959 को गाँधी जयन्ती के अवसर पर राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज व्यवस्था को लागू किया गया।[12] स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, पानी, खेती, उद्योग धन्धे, भवन निर्माण, प्रशासन एवं न्याय की जिम्मेदारी पंचायतों को दी गयी। इसके बाद महाराष्ट्र एवं अन्य राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था को लागू किया गया। पंचायती राज अन्तर्गत ग्रामीण प्रशासन को तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया है। ग्राम स्तर पर पंचायत, ब्लाक स्तर पर ब्लाक समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद इकाइयाँ हैं। पंचायती राज का विषय नीति–निर्देशक तत्व में शामिल होने के कारण सरकारें इसे लागू करने के बाध्य नहीं थी, इसीलिए इसे संवैधानिक दर्जा देने का प्रयास किया गया। पंचायती राज व्यवस्था में सुधार के लिए कई समितियों का गठन किया गया। इन समितियों द्वारा समय–समय पर अपने सुझाव दिये गये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 महेन्द्र प्रताप वर्मा, स्वतन्त्रता आन्दोलन और भारतीय संविधान पृ0 247
2. ऋग्वेद, 7, 33, 3 तथा 9, 92, 6 एवं 10, 166, 4
3. कौटिल्य : अर्थशास्त्र
4. डॉ0 अजय सिंह, विजय प्रताप भल्ल, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान, पृ0 134
5. मनु, मनुस्मृति
6. डॉ0 अल्तेकर,
7. डॉ0 एम0पी0 वर्मा, भारत में राजनीतिक प्रक्रिया, पृ0 59
8. पूर्वोक्त
9. पूर्वोक्त
10. डॉ0 अजय सिंह, विजय प्रताप मल्ल, पूर्वोक्त पृ0 137
11. पूर्वोक्त, पृ0 138
12. डॉ0 बाबू लाल फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीति

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

ग्रामीण अनुसूचित जातियों में मद्यपान की समस्या

सुमित यादव
शोध–छात्र, समाजशास्त्र

प्रो0 अनिल कुमार श्रीवास्तव
अध्यक्ष– समाजशास्त्र विभाग
जवाहर लाल नेहरू स्मारक स्नातकोत्तर महा0, बाराबंकी (उ0प्र0)

मानव समाज का इतिहास प्रारम्भिक काल से विविध प्रकार की समस्याओं और चुनौतियों का इतिहास रहा है। प्रत्येक सभ्य–असभ्य, शिक्षित–अशिक्षित, विकसित–विकासशील समाज में सामाजिक समस्याएँ विद्यमान रही हैं। इन सामाजिक समस्याओं को सामाजिक विघटन का महत्वपूर्ण कारण माना जा सकता है। किसी भी समाज के स्थायित्व एवं निरन्तरता में इन सामाजिक समस्याओं की भूमिका केन्द्रीय होती है।

एक विषय के रूप में समाजशास्त्र के उद्भव, विकास एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि में सामाजिक समस्या की अवधारणा महत्वपूर्ण रही है। समाजशास्त्र का विकास समस्यामूलक परिवेश एवं परिस्थितियों का अध्ययन करने एवं इनके समाधान के प्रयासों के रूप में हुआ है। समाजशास्त्रियों एवं सामाजिक विचारकों ने अपनी रुचि के अनुसार समाज के स्वरूपों, संरचनाओं, संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक समस्याविहीन समाज की कल्पना असंभव है। इसी क्रम एवं सन्दर्भ में विश्लेषण किया जाए तो पता चलता है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक संरचना में मद्यपान एक सामाजिक समस्या के रूप में गम्भीर आकार ग्रहण कर रहा है, जिससे समाज एवं महत्वपूर्ण रूप से युवा पीढ़ी के लोग नकारात्मक रूप में प्रभावित हो रहे हैं। व्यक्ति, परिवार एवं समाज को विघटन की ओर ले जाने में सबसे महत्वपूर्ण कारकों की गणना में मद्यपान अवश्य ही अग्रणी कारक है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों में मद्यपान उनकी जीवन शैली का अंग बन गया है। मद्यपान की समस्या का विश्लेषण करने से पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मद्यपान क्या है?

वस्तुतः मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार विकार है, जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा का सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक एवं आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करती है (केलर एण्ड वेरा :1955)। जबकि **इलियट एवं मैरिल** (सोशल डिसआर्गनाइजेशन : 1954) का मत है कि अधिक मात्रा में मदिरा सेवन मद्यपान कहलाता है। कभी–कभी अथवा बहुत कम मात्रा में शराब पीना मद्यपान नहीं है।

वर्तमान समय में मद्यपान सामान्य व्यवहार की श्रेणी में माना जाने लगा है जबकि पहले शराब और शराब पीने वाले लोगों से शारीरिक एवं सामाजिक दूरी की भावना समाज में पाई जाती थी। **अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन** ने स्पष्ट किया है कि मद्यपान एक ऐसा व्यवहार विकार है जिसका प्रमुख लक्षण मद्यसार एल्कोहॉल को किसी न किसी रूप में पीने की शारीरिक व मानसिक विवशता है। इस प्रकार मदिरापान एक व्यसन या लत है। मदिरापान की विवशता मदिरासेवी व्यक्ति के जीवन में अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक असामान्यताओं तथा व्यवहार विकारों को जन्म देती है। अधिकांश समाज वैज्ञानिकों की विचारधारा है कि शराब की असामान्य और बुरी आदत ही मद्यपान है।

वर्ष 1964 में **योजना आयोग द्वारा नियुक्त मद्यनिषेध पर स्टडी टीम** द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में मद्यपान के विषय में कहा गया है कि मद्यपान से आशय एक बीमारी, आदत या व्यसन से है जो व्यक्ति की शारीरिक–मानसिक अवस्था के टूटने से पैदा होता है। यह विघटन दीर्घकाल तक लगातार और आदतन मद्यपान के परिणामस्वरूप होता है। **क्लाइम बेल** (1956 : 45) का मत है कि सत्तावाद, प्रकट अस्वीकरण, नीतिवाद एवं सफलता की पूजा जैसे प्रमुख कारणों से बच्चों में मद्यपान की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

मद्यपान के कारणों में 'मानसिक तनाव' को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है। **सिलन्डर** का विचार है कि, व्यक्ति मानसिक तनाव से मुक्ति की आवश्यकता महसूस कर शराब पीते हैं। किन्तु मद्यपान स्वयं ही असन्तुलन को जन्म देता है और इस तरह तनाव व लगातार मद्यपान से मानव दो समस्याओं के मध्य घिरकर बार–बार मद्य सेवन करने लगता है और मद्य–व्यसनी बन जाता है। कुछ लोग 'वंशानुक्रमण' से मद्यपान को प्राप्त करते हैं। **रिचर्ड वास्किन** (1964:362) का मानना है कि अधिक मद्यपान से व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, निर्विघ्न सामाजिक एवं आर्थिक कार्य करने की क्षमता मे बाधा पड़ती है।

जहाँ तक अनुसूचित जातियों में मद्यपान की बढ़ती प्रवृत्ति का प्रश्न है, आनुभविक अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इन वर्गों में मदिरा को आम पेय पदार्थ के रूप में लिया जाता है। ग्रामीण अनुसूचित जाति के छोटे–बड़े सभी व्यक्ति समान रूप से प्रायः या कभी–कभी उपलब्धता अथवा प्रयास के आधार पर मदिरा का सेवन करते हैं। इनमें मद्य का सेवन वंश परम्परा के अनुसार भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है। समाजशास्त्रीय कारणों में पर्यावरण से सम्बन्धित दबाव, मित्रों का दबाव एवं प्रबल उपसंस्कृति, मद्यपान को दैनिक व्यवहार में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भावनात्मक आघात के कारण भी व्यक्ति मद्यपान की ओर अग्रसर होता है। कुछ व्यक्ति तो इन आघातों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु कुछ अति संवेदनशील व्यक्ति भावनात्मक आघातों को सहन नहीं कर पाते हैं और मद्यपान की ओर प्रवृत्त होते हैं। जिन व्यक्तियों में स्नायु शक्ति की दुर्बलता पाई जाती है, वे छोटी–छोटी बातों एवं कठिनाइयों से घबरा जाते हैं। ये व्यक्ति जीवन की कठोरता को सहन करने में असमर्थ होते हैं। यह स्थिति भी उन्हें मद्यपान की ओर अग्रसर करती है। ग्रामीण अनुसूचित जातियों में व्यक्तिगत दुःख, पारिवारिक बजट, पारिवारिक क्लेश, मजदूरी की हानि एवं कठोर श्रम, राजस्व नीति, समायोजन का मनोविज्ञान इत्यादि कारणों से मद्यपान की प्रवृत्ति बढ़ाती है।

स्ट्रेकर और फ्रैंसिस ने मद्यपान के लिए 'जीवन के दायित्वों से पलायन' को कारण मानते हुए लिखा है कि सामान्यतः मद्यपान जीवन के दायित्वों से भागने के लिए किया जाता है। प्रायः मनुष्य अपने पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाता है और अपनी निर्बलताओं तथा कमियों को छिपाने के लिए मद्यपान की ओर प्रवृत्त होता है।

रैकलेश 'मद्यपान मौखिक परिपीड़नशीलता की प्रवृत्ति, यौन–विषयक निराशा और नपुंसकता, निरोधित समलिंग–कामुकता एवं आत्म–विध्वंसक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है।' जब व्यक्ति यौन रोगों का शिकार हो जाता है, तो उसकी यौन–क्षमता कम हो जाती है, जिससे उसमें निराशा एवं हीनता के भाव पैदा होने लगते हैं। इससे छुटकारा पाने हेतु मद्य का सेवन करने लगता है, क्योंकि मद्यपान साहस प्रदान करता है, यौन आकर्षण और पौरुष को बढ़ाता है तथा प्रसन्नता प्रदान करता है।

सेमुअल स्माइल व लेडी वेल ने इंग्लैण्ड में शराब और गन्दी बस्तियों के सहसम्बन्ध के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि गन्दी बस्तियों के कारण लोग अधिक शराब पीते हैं जिससे वे अपने घुटन भरे निवास को भूल सकें। विभिन्न प्रकार के मद्यों का सेवन करने से शारीरिक शक्ति एवं कार्यकुशलता में वृद्धि

की गलतफहमी से प्रेरित कठोर शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति मदिरा का अधिक मात्रा में सेवन करने लगते हैं।

आधुनिक युग में नैतिक मूल्यों में पतन के कारण स्वच्छन्दता में हुई वृद्धि एवं सिनेमा, साहित्य, मोबाइल, ऑनलाइन माध्यमों व पत्र–पत्रिकाओं में मद्यपान के प्रचार ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों में तथा व्यावसायिक पार्टियों में मद्यपान की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है।

ग्राम–नगर सम्पर्क में वृद्धि तथा नगरीकरण, होटल, क्लब, बार आदि के प्रसार ने मद्यपान के लिए अवसर सुलभ बना दिए हैं। ग्रामीण अनुसूचित जातियों में अधिक आय एवं उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने ऊपर आधुनिकता व पाश्चात्य संस्कृति का लेबल लगाने के लिए भी मदिरा का उपभोग फैशन के रूप में करने लगे हैं।

राज्य सरकारों द्वारा आबकारी राजस्व के रूप में प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि के प्रयास के लिए अधिकारियों पर निरन्तर दबाव बनाया जाता है तथा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस लक्ष्य एवं दबाव का अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रायः ग्रामीण अनुसूचित जातियों पर मद्यपान की प्रवृत्ति में वृद्धि के रूप में पड़ता है।

मद्यपान एक ओर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तो दूसरी ओर पारिवारिक विघटन, दुर्घटना, असुरक्षित यौन व्यवहार व अपराध को भी जन्म देता है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** के शब्दों में 'मद्यसेवी वह है जो शराब पर इतना निर्भर हो जाता है कि इसके कारण उस व्यक्ति का मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध तथा सामाजिक–आर्थिक जीवन पूर्णतः अस्थिर हो जाता है।' इस तरह मद्यपान वैयक्तिक, पारिवारिक एवं आर्थिक विघटन का आधार है।

ग्रामीण क्षेत्र में आवासित अनुसूचित जातियों का बहुत बड़ा समूह मद्यपान से सर्वाधिक दुष्प्रभावित है। अशिक्षा, गरीबी, उपेक्षा इत्यादि से तनावग्रस्त यह वर्ग अपनी आय का अधिकांश भाग मद्यपान में खर्च कर देता है। मजदूर, रिक्शाचालक, विभिन्न वाहनों के परिचालक इत्यादि मद्यपान करने वालों का पर्याय बन गए हैं। तनावयुक्त जीवन, पौष्टिक भोजन का अभाव तथा मद्यपान इनसे काम करने की क्षमता को छीन लेता है तथा इनके आय के स्त्रोत को धीरे–धीरे घटाकर इनकी रोजी–रोटी बन्द करवाने की स्थिति में ला देता है तथा इनके पतन का मार्ग प्रशस्त करता है।

वर्तमान समय में ग्रामीण अनुसूचित जातियों के लोग मद्यपान के व्यसनी हो गए हैं और निश्चित रूप से मद्यपान जब आदत का रूप धारण कर लेता है तो उसका स्वरूप भयंकर हो जाता है। व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों को इतना कमजोर कर देता है कि वह अपने दायित्वों से न केवल दूर भागने लगता है, बल्कि निर्दयता व क्रूरता का प्रदर्शन भी करने लगता है। शारीरिक व मानसिक रूप से विक्षिप्त प्राणी अपने होशोहवास खो बैठता है और परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को भूल जाता है तथा विरोध के प्रति अमानवीय रूप धारण कर लेता है। मद्यसेवी अपने परिवार को क्षति पहुँचाने का में किसी प्रकार का प्रयत्न करने से नहीं चूकता और अन्ततः उसका परिवार संस्कारविहीन हो जाता है तथा द्वेष, घृणा, कुण्ठा, निर्धनता, आक्रोश, कलह, असहयोग, अप्रेम आदि से पूर्णतया घिर जाता है और उसका वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। उक्त परिणाम तक ही मद्यसेवी अपने प्रभाव को सीमित नहीं रखता, बल्कि पड़ोस में भी गैर–इच्छित या गैर–मान्य व्यवहारों का प्रदर्शन करता है। अन्त में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हो जाता है जिससे समाज प्रभावित हो जाता है। कमोबेश ग्रामीण अनुसूचित जातियाँ इन्हीं स्थितियों से गुजर रही हैं। राजस्व संग्रह में निम्न एवं मध्यम वर्ग के लोगों का योगदान सर्वाधिक होता है, इसलिए कुछ सरकारें शराब को अपने प्रदेश में निषेधित नहीं कर रही हैं, परन्तु कुछ सरकारों ने मद्यपान पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में मद्यपान के ऋणात्मक प्रभाव से ग्रामीण अनुसूचित जातियों को दूर करने के लिए सरकार, समाज, परिवार एवं व्यक्ति को समग्र रूप में संगठित प्रयास करना होगा, जिससे इस संवर्ग का शैक्षिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास हो सके। इनके विकास से ही राष्ट्र के विकास का मार्ग गुजरता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची–

- आहूजा, राम :सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2016 ।
- आहूजा, रामः कॉलेज, यूथ एण्ड ड्रग एब्यूज : ए सोशियोलॉजिकल स्टडी ऑफ नेचर एण्ड इन्सीडेन्स ऑफ ड्रग एब्यूज एमन्ग कॉलेज एण्ड यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स इन जयपुर'', डिपार्टमेन्ट ऑफ सोशियोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान, जयपुर, 1978 ।
- केलर, मार्क एण्ड वेरा, एफ्रान : द प्रेवलेन्स ऑफ एल्कोहॉलिज्म, क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ स्टडीज ऑन एल्कोहॉल, दिसम्बर 1955 ।
- फेयरचाइल्ड, एच0पी0 : डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी ।
- मैबेल ए0 इलियट एण्ड फ्रांसिस ई0 मेरिल : सोशल डिसऑर्गनाइजेशन, हॉर्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, 1934 ।
- वास्किन, रिचर्ड : सोशल प्राब्लम्स, मैकग्रा हिल एण्ड कं0, न्यूयार्क, 1964 ।
- खान, एम0जेड0 : एल्कोहॉलिज्म एण्ड ड्रग डिपेन्डेन्स, इण्डियन जर्नल ऑफ क्रिमिनोलॉजी, जनवरी 1985 ।
- गग्रान्डे, के0डी0 : फाइटिंग ड्रग एब्यूज, योजना, दिसम्बर 1995 ।
- गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया : द रिपोर्ट ऑफ द स्टडी टीम ऑन प्रोहीबिशन, प्लानिंग कमीशन, 1965 ।
- गुडमैन, डी0डब्ल्यू0 : एल्कोहॉलिज्मः द फैक्ट्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961 ।
- चन्द्रसेन : मद्य निषेध : नशे का व्यसन, वाई0 डी0 पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010 ।
- दास, एस0के0 : एल्कोहॉल : इट्स हेल्थ एण्ड सोशल इम्पैक्ट इन इण्डिया, द नेशनल मेडिकल जर्नल ऑफ इण्डिया, 2006 ।
- देव, पी0सी0 एण्ड जिन्दल आर0एस0 : ड्रिंकिंग इन रूरल एरियाज–ए स्टडी इन सेलेक्टेड विलेजेज ऑफ पंजाब, पंजाब एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, लुधियाना, 1984 ।
- वर्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन : ग्लोबल स्टेटस रिपोर्ट ऑन एल्कोहॉल, 2014 ।
- शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा, आर0के0 : सामाजिक विघटन, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड ड्रिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1996 ।
- श्रीवास्तव, एस0पी0 : भारतीय सामाजिक समस्याएँ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1975 ।
- व्यास, शैलेन्द्र एवं शर्मा, एस0डी0 :भारतीय समाजः मुद्दे एवं समस्याएँ, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, 2013 ।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

जाट समुदाय की उत्पत्ति एवं उनकी बदलती हुई पहचान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

पंकज कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
इमेलः pankajmgkvp.31@gmail.com

सारांश :–

20वीं सदी के छठवें दशक तक बलूचिस्तान, राजस्थान और दिल्ली की आबादी के कुल जनसंख्या का पाँचवां हिस्सा जाटों का था और यदि इसमे पाकिस्तान को जोड़ दिया तो सिंघ, उत्तर –पश्चिमी सीमांत प्रान्त, हरियाणा और उत्तर प्रदेश की 2 से 5 प्रतिशत जनसंख्या जाटों की है। (न्यू इनसाक्लोपीडिया ब्रिटानिका)। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से पहले जाट ऐसे लोगों का एक सघन समूह था, जो रक्त, भावा और साझे धर्म के थे (के0आर0 क्यूनागो, हिस्ट्री ऑफ जाट्स, 1925)। एक कृषक समुदाय के रूप में जाट बहिविवाही, अभिजात के रूप में संगठित था। वर्तमान में जाटों का एक तिहाई हिस्सा मुसलमान, पॉचवा भाग सिख एवं शेष हिन्दू है (के0 आर0 क्यूनागो, हिस्ट्री ऑफ जाट्स, 1925)। उत्तर भारत में जाटों की बहुसंख्यक जनसंख्या पश्चिमी उत्तर प्रदेश विशेष रूप से रोहेलखण्ड मंडल एवं गंगा यमुना की केन्द्रीय दोआब में रहती है। जाटों का फैलाव राजस्थान सिंध (पाकिस्तान) और कश्मीर के कुछ उत्तरी जिलों में भी पाया जाता है। जाटों की कुछ बस्तियाँ दिल्ली और उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ मथुरा एवं आगरा जनपदों में भी पायी जाती है। इन क्षेत्रों में जाट भूमि से सम्बद्ध और कृषि कार्य में संगठन है। (रिजले, हरबर्ट, दि पिपुल ऑफ इण्डिया, 1915)।

कुँजी शब्द :–जाट, पहचान, क्षत्रित्व, किसानत्व, पिछड़ापन, कृषक, किसान यूनियन, संस्कृतिकरण।

प्रस्तावना

जाट समुदाय की उत्पत्ति

ए0एच0 बिगले के अनुसार – ''जाट राजपूतों के समय के ही आर्य हैं। यदु या यदु प्रजाति से सम्बन्ध रखते हैं जो वही प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल है जिससे श्रीकृष्ण सम्बन्धित थे।'' कुछ विद्वानों का मानना है कि ये इण्डो–सीयियन समूह से सम्बन्ध रखते हैं जिनकी पहचान पश्चिमी यूरोप की जिप्सी प्रजाति से होती है (ए0 एच0 बिगले, हिस्ट्री, कास्ट एण्ड कल्चर ऑफ जाट्स एण्ड गुजरर्स)।

जाटों की उत्पत्ति की व्याख्या करने के अनेक सिद्धान्त है (गिरीश द्विवेदी, ऑरिजिन ऑफ जाट्स, जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, वाल्यूम XLVIII**,** अगस्त 1970)। पेज 377–393। कनिंघम, इप्सटन और जेम्स टॉड का यह मानना है कि जाट इण्डो–सीयियन है जो पंजाब में ईसा के जन्म के एक शताब्दी पहले पंजाब आये। टॉड जाटों को राजपूतों की ही प्रजाति का मानते हैं, जबकि कनिंघम टॉड की इस व्याख्या से असहमत है कि राजपूत मूल आर्यों के वंश से संबन्धित है और जाट बाद में उत्तर–पश्चिम से आने वाले अप्रवासियों के समूह से सम्बन्धित है (सेन्सस ऑफ इण्डिया, 1901)। (Vol. -1 पेज– 77) (M.C. Prradhan, The Political System of the Jats of northern Indina) नेसफील्ड का यह मत है कि जाट शब्द यदु और जदु का आधुनिक हिन्दू उच्चारण है, जो वर्तमान समय के जाटों का प्रतिनिधित्व करते हैं। (Nesfield quoted in the political system of the jats of Narthern India) देशराज ने अपनी पुस्तक 'जाट इतिहास' में विभिन्न भारतीय और विदेशी विद्वानों की जाटों की उत्पत्ति की व्याख्या का निष्कर्ष निकालकर

यह बताया है कि जाट वास्तविक आर्य हैं और वह उसी समह से सम्बन्ध रखते हैं जिससे कि राजपूत (देशराज, जाट इतिहास, 1978, पेज–85–95) लेकिन के0 आर0 कानूनगो का यह मत है कि जाटों का प्राचीन संस्कृत साहित्य में कोई उल्लेख नहीं मिलता और जाट भारत के मूल निवासी हैं (कानूनगो, के0आर0 हिस्ट्री ऑफ जाट्स) वाल्यूम, पेज–6, जाटों की उत्पत्ति की व्याख्या करने वाले इन विरोधाभासी विद्वानों में ने तो किसी सही ठहराया जा सकता और न किसी को गलत। विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने जाटों का वर्णन प्रजाति/जनजाति या जाति के रूप में किया है। आधुनिक समय में जाटों को एक जाति के रूप में देखा जाता है जो सामाजिक स्तरीकरण के एक प्रणाली या व्यवस्था की ओर संकेत करता है जो वंशानुगत प्रस्थिति, अन्तःविवाह परम्पराओं, मान्यताओं, धर्म से संचालित और निर्देशित होता है।

उत्तर भारत में जाटों की बदलती पहचान

राष्ट्रवाद और नृजातीय संघर्ष के अध्येता इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भाषा या धर्म पर आधारित सामूहिक पहचानों में कुछ भी स्थायी जैसा नहीं होता (क्रिस्टोफर जेफरलॉट, रिलीजन, कास्ट पालिटिक्स इन इण्डिया 2010)। भाषाई समूह या धार्मिक समुदायों की सीमाएं नहीं दी गई हैं– जैसा कि आद्य समूह दावा करते हैं– लेकिन वे हमेशा बदलते रहते हैं। प्रश्नन यदि का नहीं किन्तु इसका कि कैसे और क्यों अस्मिताएँ पहचान अपने आप को किसी दूसरे चीज में रूपान्तरित कर लेती है? सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह तर्क देते हैं कि पहचाने केवल संकट के समय बदली जा सकती है। उदाहरण के लिए एंद्रिक एरिकसन किशोरावस्था को संकट काल की तरह देखते हैं जो पहचान के सर्वोत्कृष्ट रूपान्तरण की तरफ ले जाता है। (एरिकसन, 1972) दिलस्टास्प तथ्य यह है कि एरिकसन का विश्लेषण व्यक्ति के आन्तरिक संघर्षों तक ही सीमित नहीं है। उनके अनुसार किशोरावस्था का संकट 'अन्य' के साथ अन्तक्रिया में विकसित होता है।

यह हमारे त्रिआयामी प्रश्न के 'क्यों' आयाम तक पहुँचने के लिए मूलभूत कुँजी (Keyword) है कि पॉल रिकोर ने दर्शाया है कि पहचान निर्माण की प्रक्रिया दूसरे के साथ द्वन्दात्मक सम्बन्ध में खुद को प्रकट करती है। लेकिन कैसे ? जैफरलॉट ने इस प्रश्न को भारत में एक धार्मिक समुदाय/हिन्दुओं के धार्मिक आन्दोलन की व्याख्या करने के प्रयास में सम्बोधित किया है। (जेफरलॉट, 1990)। जेफरलॉअ ने यहाँ विशिष्ट जाति यानि जाटों के सम्बन्ध में उसी प्रश्न को सम्बोधित करना चाहा है। जबकि एलिस थॉर्नर ने इस विशेष समूह पर ध्यान नहीं दिया, भारतीय किसानों पर डेनियल भॉर्नर के साथ उनका काम कुछ ऐसे मुद्दों से सम्बन्धित है जिसका सामना जाटों को करना पड़ा– जैसे कि भूमि–सुधार और ग्रामीण भारत में वर्ग निर्माण की प्रक्रिया। (एलिस भॉर्नर, सेमी फ्यूडियलिज्म ऑर कैपटिलिज : द कन्टम्परेरी डिबेट ऑन क्लासेस एण्ड मोड्स ऑफ प्रोडक्शन इन इण्डिया, 1982 पृ0 19–72)। इस जाति के प्रायः स्वघोषित प्रवक्ताओं ने पिछले सौ वर्षों में तीन बेहद अलग–अलग प्रकार की पहचान प्रदर्शित की है। पहला उन्होंने दावा दिया कि जाट क्षत्रिय हैं, फिर यह कि वे किसान हैं और अन्त में यह कि वे पिछड़ी जातियों के हैं। समय के साथ ये तीनों पहचान एक–दूसरे से जुड़ गई। लेकिन जातीय नेताओं के विमर्श में स्पष्ट रूप से एक–दूसरे के साथ बनी रही। जेफरलॉट ने यह परिकल्पना कि यह उद्विकास अन्य प्रभुत्वशाली समूहों और राज्य के साथ जाटों के बदले सम्बन्धों के काल हुए। राजनीतिक क्षेत्र में जाटों की पहचान (परिवर्तन) और निर्माण प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

छोटू राम एवं जाटों का क्षत्रित्व से किसानत्व में संक्रमण

छोटू राम का जन्म 1881 में हुआ था। उनका जन्म रोहतक जिले के एक सामान्य जाट किसान परिवार में हुआ था। राम जी लाल हुड्डा ने उन्हें सार्वजनिक जीवन में दीक्षित किया था। छोटू राम पहले राजनेता थे जिन्होंने ग्रामीण और शहरी भारत के बीच विरोध को विश्लेषणात्मक शब्दों में व्यक्त किया।

1907 में उन्होंने 'दि इम्पीरियल फोर्ट नाइटली' में 'द इम्प्रूवमेन्ट ऑफ इण्डिया विपेज लाइफ' नामक लेख लिखा जिसमें उन्होंने तेजी से बदलते शहर की तुलना ठहरे हुए गाँवों से किया (राम, 1996 : 71)। छोटू राम चाहते थे कि व्यक्ति अपनी उद्यमिता की भावना का प्रयोग करें जो कि किसान की विचारधारा/विचार के सबसे बुनियादी सिद्धान्तों में से एक था छोटू राम का मानना था कि किसानों का अपने द्वारा जोती जाने वाली भूमि का स्वामी भी होना चाहिए। इस उद्यमशील व्यक्तिवाद को छोटू राम की आर्य समाजी निष्ठा का समर्थन प्राप्त था। लेकिन किसानों की मुक्ति के लिए उनके प्रयास ने इस प्रक्रिया में पंजाब में आर्यसमाज की भूमिका पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित किया।

छोटू राम ने आर्य समाज का विच्छेदन करके उसके मुख्य पात्र बनिया की आलोचना की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दासता, स्वार्थ एवं लालच उनकी (बनिया) की विशेषता थी। (यादव, 1996 : 74)। साथ ही, उन्होंने अपने समूह के हितों की रक्षा की। 1930 के दशक के मध्य में उन्होंने 'बेचारा जमींदार' शीर्षक के अन्तर्गत 17 लेखों की एक श्रृंखला प्रकाशित की, जहाँ जमींदार, वास्तव में शहरी उच्च जातियों द्वारा शोषण से पीड़ित गरीब किसान हैं (दत्ता, 1999 : 104)। छोटू राम का सबसे पहला प्रयास किसानो को उन व्यापारियों से बचाना था, जो कृषि उत्पादों को उनके उचित मूल्य पर नहीं खरीदते थे और लालची साहूकारों के रूप में काम करते थे।

1917 में छोटू राम कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये थे लेकिन उन्हें पता चला कि पार्टी शहरी आग्र समाजियों और विशेष रूप से बनियों के हाथ में थी। इसलिए उनका पंजाब के मुस्लिम नेता फजल–ए–हुसैन, जो पंजाब में किसानों को संगठित करने के लिए समान रूप से उत्सुक थे के साथ मेल मलाप हुआ। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने नेशनल यूनियनिस्ट पार्टी (N.U.P) का गठन किया। (N.U.P) की चुनावी सफलता के बाद फजल–ए–हुसैन पंजाब के मुख्यमंत्री एवं छोटू राम कृषि मंत्री बने। तब वह भू राजस्व अधिनियम में संशोधन करने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थे, ताकि लेखा/विनियमन बिल को पारित करा के सामान्य निपटान की अवधि 40 वर्ष और शुद्ध सम्पत्ति में राज्य की अधिकतम हिस्सेदारी 25 प्रतिशत तक सीमित कर सके। इस अधिनियम ने कर्जदारों को साहूकारों के अत्याचार से बचाया और पंजाब भूमि अलगाव अधिनियम को कृषकों के अधिक अनुरूप बनाया। (N.U.P) की सरकार ने पानी की दरों में भी कमी की ताकि किसानों को सिंचाई की बेहतर सुविधा प्राप्त हो सके। अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात पंजाब कृषि उपज विपण्न अधिनियम ने अधिनियम में मण्डियों की विपण समितियों में सुधार किया जिसमें किसानों को दो तिहाई एवं व्यापारियों को एक तिहाई स्थान दिया गया। गोकुल चन्द नारंग जो एक प्रसिद्ध आर्य समाजी और कई चीनी मिलों के संचालक थे, ने इस कानून का यह कहकर विरोध किया कि, 'इस कानून के माध्यम से समिति में करोड़पति महाजनों के साथ पैसे वाले किसान भी बैंठेगे।' जिसका उत्तर देते हुए छोटू राम ने कहा कि 'जाट, अरोड़ाओं से कम सम्मान के हकदार नहीं हैं.....वह समय दूर नहीं जब मेहनती किसान पैसे के उपासकों को बहुत पीछे छोड़ देंगे (दत्ता, 1999 : 108)।

यह उत्तर इस बात को स्पष्ट करता है कि छोटू राम किस तरह से जाटों की धारणा से हटकर 'किसानों की धारणा' आ गये। ये जिससे यह पता चलता है कि दोनों के मध्य में एक समीकरण स्वामित्व किया जा सकता है।

छोटू राम ने ग्रामीण एवं शहरी भारत में एक वैचारिक अन्तर स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इसे बाद में 'भारत बनाम इण्डिया' के विमर्श के रूप में जाना गया। उन्होंने राजनीति का एक नया मुहावरा 'किसान राजनीति' को विकसित किया। जो भारतीय समाज में सामाजिक–आर्थिक दरार पर विकसित किया। जो भारतीय समाज में सामाजिक–आर्थिक दरार पर जोड़ देता है। यह एजेंडा कृषक जातियों को सामाजिक मुक्ति की दिशा में एक वैकल्पिक पहचान प्रदान करने के लिए बाध्य था। एक अन्य

जाट, चरण सिंह ने स्वतन्त्रता पश्चात् इस किसान आधारित विचारधारा को और अधिक परिष्कृत तरीके से व्यक्त किया।

चरण सिंह एवं जाट

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार के प्रभारी मंत्री के रूप में चरण सिंह ने ग्रामीण और नगरीय भारत के बीच में अव्यक्त संघर्षों के बारे में गहरी जागरूकता प्रदर्शित की, जिसकी अभिव्यक्ति हमें उनकी नीतियों में देखने को मिलती है (गोयल, 1978 : 6–7)। 1939 के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा हमारे देश में जिन वर्गो के वंशजों का सर्वाधिक सेवाओं पर प्रभुत्व है, वे या तो वह वर्ग है जिन्हें अंग्रेजों द्वारा अद्वितीय प्रमुखत और महत्व प्रदान किया गया। उदाहरणार्थ साहूकार, बड़े जमींदार या ताल्लुकेदार, अढ़तिया या व्यापारी या वह जो नवीन औपनिवेशिक व्यवस्था के कारण अस्तित्व में आए। जैसे अधिवक्ता, डॉक्टर और ठेकेदार/पिछड़े दो सौ वर्षो से उन वर्गो ने विदेशियों के साथ अधीनस्थ सहयोग करके जनता का हर तरीके से शोषण किया।

इसलिए उन वर्गो के विचार और हित, स्पष्ट रूप से आम जनमानस के हितों और विचारों के विपरीत है। किसी गैर कृषक नगरीय वर्गो की सदस्यों का सामाजिक दर्शन ग्रामीण कृषक वर्गो के जीवन दर्शन से बिल्कल अलग है (सी0 सिंह, 1986 : 203)। चरण सिंह ने शोषित जनता की तुलना कृषक वर्गो से की और छोटू राम की तरह किसानें को एक समह के रूप में संवर्धित करने का प्रयास किया। हलांकि चरण सिंह को अपनी जाट पहचान पर गर्व था, फिर भी उन्होंने जातिगत पहचान को किसान एकजटता की भावना में समाहित करने का प्रयास किया। यह दृष्टिकोण निःसंदेह आंशिक रूप से इस तथ्य से निर्धारित था कि जाटों ने एक मध्य वर्गीय पद धारित कर लिया था और उनकी संख्या विशाल नहीं थी। हलांकि तकनीकी रूप से उन्हें शूद्रों के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए, लेकिन इनकी प्रभु जाति की सामाजिक स्थिति अन्य शूद्रों के साथ इनके संघर्षों का मुख्य कारण थी। दूसरा उत्तर प्रदेश की जनसंख्या में जाटां का आबादी केवल 10.2 प्रतिशत थी। अतः चरण सिंह के पास किसान पहचान पर जोर देने और किसानों तथा नगर वासियों के बीच में विरोध को रेखांकित करके किसान की पहचान या धारण में सभी जातीय विभाजनों के समाप्त करके एक नई पहचान स्थापित करने के पर्याप्त कारण थे– इस पहचान पर आधारित किसानों का एक ऐसा समूह जिसके नेता जाट होंगे चरण सिंह, सर्वोपरि एक ऐसे राजनीतिक उद्यमी थे जो चुनावी गठबंधन को आकार देने के लिए उत्सुक थे।

1959 के कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने कांग्रेस के द्वारा घोषित कषि सहकारी समितियों की परियोजना का कड़ा विरोध किया। उन्होंने 'ज्वाइन्ट फार्मिंग एक्सरेड' दि प्रोबल्म्स एण्ड इट्स सॉल्यूशन' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने वैश्विक विकास की एक वैकल्पिक का प्रस्ताव रखा। एक तरह से 'ज्वाइन्ट फार्मिंग एक्सरेड' स्वतन्त्रता के बाद के भारत में किसान राजनीति का पहला घोषणापत्र है। नेहरू द्वारा वकालत की गई तीव्र राज्य प्रायोजित औद्योगीकरण की आवश्यकता पर सवाल उठाते हुए चरण सिंह से कृषि को प्राथमिकता देने और छोटे किसानों की जोत विकसित करके इसे बढ़ावा देने का प्रस्ताव रखा। जो उनके अनुसार औद्योगिक निवेश के लिए आवश्यक अधिशेष उत्पन्न करने का एक मात्र प्रभावी तरीका था। उनके लिए कृषि सहकारी समितियों ने जमींदारी जैसे बिचौलिए के उन्मूलन से होने वाले उत्पादकता लाभ को सीमित कर दिया होता, क्योंकि सहकारी समितियों के ढाँचे से उनकी स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाती।

इस तरह चरण सिंह ने जाटों की पहचान में किसानत्व की तरफ परिवर्तन की उस प्रक्रिया को पूरा किया जिसकी शुरूआत छोटू राम ने की थी। यद्यपि कि एक व्यक्ति के रूप में चरण सिंह की पहचान और एक समूह के रूप में जाटों की पहचान केवल किसान उन्मुख नहीं थे। बल्कि उन्होंने निमन जातियों की

बदलती हुई पहचान को ध्यान में रखा, जो राज्य से सहायता प्राप्त करने के लिए अपने 'पिछड़ेपन' पर अधिक जोर दे रहे थे।

अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में जाट

जाटों की पहचान में तीसरा बदलाव प्राथमिकताओं के क्रम में मुख्यतः भौतिक प्रोत्साहनों की वजह से आया, कोटा राजनीति गति पकड़ रही थी और जाट आरक्षण की सम्भावनाओं में सबसे अधिक तीव्र हो गई। 1989 में चुनाव जीतने के पश्चात जनता दल के वी0पी0 सिंह ने मंडल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन को निचली जातियों के सामाजिक पिछड़ेपन के उपाय के रूप में प्रस्तुत किया। जनता दल रास्ता दिखाने के लिए तैयार थी और उसने आम–चनाव में 60 प्रतिशत टिकट समाज के कमजोर वर्गो को आवंटित करने का वादा किया था।' इससे पहले वी0पी0 सिंह ने 60 प्रतिशत आरक्षण को पार्टी तेंत्र पर लागू करने का वादा किया और था। यह 60 प्रतिशत कोटा पुराना समाजवादी विचार था, जिसे लोहिया ने 1960 के दशक में प्रचारित किया था। देवीलाल के विरोध के कारण जनता दल के राज्य पार्टी अध्यक्षों के नामांकन के समय इसे लागू नहीं किया जा सका (मुस्तफा, 1995 : 115)।

देवीलाल की नियुक्ति वी0 पी0 सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू कराने के लिए बनाई गई समिति के अध्यक्ष के रूप में की। लेकिन देवीलाल ने इसमें कोई विशेष रूचि नहीं ली (मुस्तफा, 1995 171)। यदि रिपोर्ट में जाटों को ओ0बी0सी0 के रूप में वर्गीकृत किया गया होता, तो उसे क्रियान्वित करने के लिए उन्हें मजबूत प्रेरणा का अनुभव होता। ऐसा लगता है कि उन्होंने इस बदलाव को सरकार द्वारा स्वीकार कराने की असफल कोशिश की। इसलिए देवीलाल ने इस रिपोर्ट के क्रियान्वयन के लिए एक दो से अधिक बैठकें नहीं की। वी0 पी0 सिंह ने सामाजिक कल्याण मंत्री और दलित नेता रामविलास पासवान से हय काम करने के लिए कहने का फैसला किया। सभी जाट मंत्रियों ने इसका पुरजोर विरोध किया और अपनी जातीय समह को ओ0बी0सी की सूची में सम्मिलित किये जाने की मॉग की। सांसदों के बीच में एक हस्ताक्षर अभियान प्रारम्भ किया गया, जिसमें 107 जाट और मुस्लिम सांसदों के हस्ताक्षर संकलित किये गये, जिनमें इन नेताओं ने अपने कुछ सहधर्मियों को ओ0बी0सी0 में शामिल करने की माँग की।

देवीलाल ने वी0 पी0 सिंह के इन सुधारों को कृषकों के हितों पर संकट/खतरे के रूप में देखा, क्योंकि ये निर्णय निचली जातियों के रियेदारों और खेतीहर मजदूरों की मुखरता को बढ़ावा देने के लिए बाध्य थे। देवीलाल के त्यागपत्र से वास्तव में चरण सिंह की गठबंधन टूट गई, दरअसल, वी0 पी0 सिंह ने जिस तरह से किसानों को विभाजित किया, उसके लिए चौधरी के शिष्यों ने उनकी आलोचना की (ब्रास, 1980 : 2090)। अंततः, कोटा की राजनीति किसान राजनीति पर हावी हो गई और देवीलाल को पृष्ठभूमि में जाना पड़ा।

निष्कर्ष :–

जबकि मण्डल आयोग ने जाटों को ओ0बी0सी0 के रूप में वर्गीकृत नहीं किया था। राज्यों द्वारा स्थापित पिछड़ा वर्ग आयोगों के निष्कर्ष अलग रहे। हरियाणा में गुरूनाम सिंह रिपोर्ट 1991 में जाटों को ओ0बी0सी0 की सूची में शामिल करने का समर्थन किया, इसी तरह राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में पिछड़ा वर्ग आयोगों ने समान सिफारिशें की।

आरक्षरण के मुद्दों को जाट महासभा द्वारा आज पेशेवर वकीलों, डॉक्टरों और सेवा निवृत्त नौकरशाहों के हाथ में है (लोढ़ा, 1999)।

एक सदी से भी अधिक समय में बदलती जाटों की पहचान, सामूहिक पहचान के लचीलपन का प्रासंगिक उदाहरण प्रस्तुत करता है और विशेष रूप से उन तरीकों के बारे में जिनसे 'पहचान' दूसरों के सम्बन्ध में खुद को बदलती है। यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था में अन्तर्निहित है क्योंकि संस्कृतिकरण के तंत्र में

निम्न जाति के लिए, उच्च जातियों का अनुकरण करना और 'नीचे' पदस्थिति वाले लोगों से खुद को अलग करना शामिल है। इसलिए जिसे ओलीवर हरेंस चिक्त ने 'छोटे मतभेदों के साथ हिन्दू जुनून' (हिन्दू ऑब्सेखन विद स्मॉल डिफरेन्सेस) कहा है (ओलीवर हैरेंसचिक्त, 1996, 14)। यह 19वीं सदी के अंत में और 20वीं सदी की शुरूआत में आर्य समाज के प्रभाव में जाटों की पहचान बनाने की प्रक्रिया की प्रमुख कुंजी थी, जब उन्होंने दावा किया कि वे क्षत्रिय थे।

तब जाट नेताओं ने अन्य उच्च जातियों मुख्य रूप से बनिये और ब्राह्मणों के साथ उन्हें परस्पर विरोधी सम्बन्धों पर जोर देकर अपनी जाति की पहचान की फिर से व्याख्या की। व्यापार और राजसत्ता पर एकाधिकार रखने वाले लोगों को जाट किसानों का वास्तविक शोषक बताया गया है। छोटू राम ने ग्रामीण और शहरी भारत के बीच अन्तर उजागर करने और जाटों को 'ग्रामीण' के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने में अग्रणी भूमिका निभाई है। अपने लामबन्दी के शुरूआती दिनों के सहयोगी, उच्च जाति वाले आर्य समाजी अब इनके प्रतिद्वन्दी बन गए मुस्लिम किसान मित्र बन गये। चरण सिंह के नेतृत्व में यह पहचान छोटू राम की अपेक्षा और अधिक सबल हुई। चरण सिंह ने 'किसान' की विचारधारा/पहचान को अपने पीछे कृषि करने वाली जातियों को लामबंद करने के लिए सबसे प्रासंगिक उपकरण मानते थे। स्पष्ट है कि जाट पहचान को राजनीतिक उद्यमियों ने न केवल दूसरों के प्रति शत्रुता (Hostility) के कारण बदल दिया बल्कि राज्य सत्ता के लिए लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा के औचित्य के लिए भी बदला।

इस सम्पूर्ण विमर्श का दूसरा निष्कर्ष यह है कि जब भी राज्य, 'राज्य निर्माण' की प्रक्रिया पर जोर देती है तो सामूहिक पहचान राज्य के सम्बन्ध में भी खुद को बदल देती है। यह तब सर्वाधिक स्पष्ट होता है, जब राज्य समाज पर सीधा हस्तक्षेप करता है। उदाहरण के लिए 'सकारात्मक कार्यवाही' के माध्यम से जो समूहों को एकजुटता की ओर ले जाता है (उदाहरणार्थ, ओ0बी0सी0 पहचान के आधार पर लामबन्दी), या दूसरे का विरोध करने के लिए (जैसे जाट बनाम ओ0 बी0 सी0)। लेकिन राज्य निर्माण प्रक्रिया का सामाजिक प्रभाव सत्त के लिए प्रतिस्पर्द्धा से भी स्पष्ट होता है। विशेष रूप से लोकतांत्रिक संदर्भ में, जहां नेताओं और पार्टियों को समूहों की पहचान करने और बिजयी गठबंधन को आकार देने उन्हें लामबंद करने की आवश्यकता होती है। जाति का राजनीतिकरण (राजनीति का जातिकरण) इस घटना का एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ भी राज्य की राजनीति का प्रभाव समय के साथ अलग–अलग रूप ले सकती है जैसा कि उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है।

अंत में इन विश्लेषणों से यह स्पष्ट होता है कि पहचान परिवर्तन किस निश्चित अनुक्रम में नहीं होता बल्कि समय के साथ आच्छादित होती रहती है। यह धारण कि जाट मुख्य रूप से किसान थे। 19वीं सदी में पहले से ही विद्यमान थे। यह विचार की जाट पिछड़े थे और उन्हें राज्य के सहायता की आवश्यकता थी, हमें छोटूराम के लेखों में देखने को मिलता है। 'पहचाने' परस्पर अनन्य नहीं बल्कि बहुआयामी होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. Datta, N. (1999a), Forming an Identity: A Social History of the Jats, Delhi: Oxford University Press.
2. (1999b), 'Backward Caste Movement Gains Ground', Economic and Political Weekly, p. 2630.
3. (1999c), 'Jats: Trading Caste Status for Empowerment, Economic and Political Weekly, p. 3172.
4. Erikson, E.H. (1972), Adolescence et Crise. La Quête de L'identité, Paris: Flammarion. Fickett Jr., L.P. (1971), 'The Politics of Regionalism in India, Pacific Affairs, Vol. 44, No. 2, pp. 201-3.
5. Gopal, M. (1977), Sir Chhotu Ram: A Political Biography, Delhi: B.R. Publishing Corporation.
6. Goyal, S.S. (1978) (ed.), Profile of Chaudhary Charan Singh, New Delhi: Ompal Singh.
7. The Changing Identity of the Jats in North India Goverment of India (1953), Report of the Backward Classes Commission Vol. 1, New Delhi: Government of India Press.
8. Government of Uttar Pradesh (1977), Report of Mest Backward Classes Commission, Lucknow: Government of Uttar Pradesh (Hindi).
9. Gupta, D. (1988), 'Country-Town Nexus and Agrarian Mobilisation: Bharatiya Kisan Union as an Instance, Economic and Political Weekly, 17 December, pp. 2692-3. (1997), Rivalry and Brotherhood: Politics in the Life of Farmers in Northern India, Delhi: Oxford University Press.
10. Jaffrelot, Christophe (2010), Religion Caste & Politics and India, Primus Pub., New Delhi.
11. Jaffrelot, Christophe (1996), "Of Nations and Nationalism, Seminar, Vol. 442, pp. 31-6. (1999), The Hindu Nationalist Movement and Indian Politics, New Delhi.
12. Lodha, S. (1999), 'Election 1999, Rajasthan, Caste and Two-Party System, Economic and Political Weekly, p. 3347.
13. Lok Sabha Secretariat (1982), Lok Sabha Debates Vol. 31, New Delhi: Government of India Press.
14. Mustafa, S. (1995), The Lonely Prophet, V.P. Singh: A Political Biography, New Delhi: New Age International.
15. Pradhan, M.C. (1966), The Political System of the Jats in North India, London: Oxford University Press.
16. Ram, Chhotu (1996), The Improvement of Indian Village Life, Appendis to K.C. Yadav (ed.), The Crism in India: Reflections of Sir Chhotu Ram, Kurukshetra: Haryana Historical Society.

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

दलितों को प्राप्त संवैधानिक संरक्षण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

आदित्य कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

स्वतन्त्र भारत में अनुसूचित जातियाँ राजनीतिक शक्ति केन्द्र के रूप में भी स्थापित हुयी है। महात्मा गाँधी ने इन्हें (हरिजन) नाम दिया, जिसका तात्पर्य ईश्वर का व्यक्ति है। यह नाम परम्परागत जातीय सम्बन्धों से भिन्न था। भारत के कुछ क्षेत्रों में विशेष रूप से महाराष्ट्र में इसकी आलोचना की गयी, जिसका आधार यह प्रस्तुत किया गया कि हरिजन का अर्थ नाजायज सन्तान भी है। कुछ अन्य लोगों का कहना था कि यह नाम दया का प्रतीक है, समता का नहीं। स्वतन्त्रता के पूर्व तत्कालीन भारत सरकार ने इन जातियों की सामाजिक और आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए पहली बार इनकी संख्या सुनिश्चित करने की दृ ष्टिकोण से 1930 की जनगणना में इन्हें एक अलग अनुसूची में परिगणित किया। चूंकि तत्कालीन भारतीय जनसंख्या में अधिकांश लोग निर्धन और पिछड़े हुए थे. ऐसी स्थिति में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न था कि मूलभूत दशाओं और विशेषताओं को स्पष्ट किया जाए।

प्रमुख शब्दावलीः—अधिकार, अनुच्छेद, संविधान, जाति, भेद—भाव, उत्थान, अस्पृस्यता आदि।

आधुनिक भारत में अनुसूचित जातियों की प्रस्थिति भारतीय संविधान के अन्तर्गत अस्पृश्य जातियों को अनुसूचित जाति की संज्ञा दी गयी है। संविधान के मूल अधिकारों और राज्य के नीति के निदेशक तत्वों में अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए स्पष्ट विधान प्रस्तावित किये गये हैं। नगरीकरण और औद्योगीकरण के प्रतिफल में अनुसूचित जाति के लोगों के लिए व्यवसाय के नये अवसर प्राप्त हुये हैं, जिससे इनकी प्रस्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।जनगणना प्रतिवेदन 1931 में संकलित तथ्यों के आधार पर अनुसूचित जातियों की सूची को भारत सरकार के आदेश, 1935 के द्वारा पहली बार प्रकाशित किया गया। इसे बाद में भारत का संविधान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश 1950 में जोड़ा गया। इस अधिनियम के स्वीकृत होने के उपरान्त सम्बन्धित सूची में दिये गये सभी जातियों को अनुसूचित जाति कहा जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 के भाग एक में कहा गया है कि राष्ट्रपति किसी भी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य है यहाँ उसके राज्यपाल के परामर्श करने के पश्चात्य, लोक अधिसूचना द्वारा, उन जनजातियों, मूलवंशों या जनजातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा। इस सूची के प्रकाशित होने के उपरान्त केवल संसद ही उसमें किसी जाति को जोड़ या घटा सकती है। इस सूची को 1956 में संशोधित किया गया था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने यह अधिसूचना प्रकाशित कर दी कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को जो हिन्दू या सिख धर्म को मानने वाला नहीं होगा, उसे अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जायेगा।

स्वतन्त्रता के साथ ही भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जाति के सदस्यों की सामाजिक आर्थिक दशा को सुधारने के लिए विभिन्न रणनीतियों के माध्यम से अनेक प्रयास प्रारम्भ किया जा रहा है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, भाव, विश्वास, पूजा की स्वतन्त्रता, प्रस्थिति और अवसर की समानता, भातृत्व के विकास, व्यक्ति के सम्मान और राष्ट्रीय एकता के संरक्षण पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य द्वारा किसी व्यक्ति को धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी आधार पर भेदभाव नहीं किया

जायेगा और नहीं उसे व्यवसाय, पूजा आदि से वंचित किया जायेगा । अनुच्छेद 15 के अनुसार सभी नागरिकों को रोजगार और राज्य के कार्यालय में नियुक्ति के समान अवसर सुलभ होगा। अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया है और इसे दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। अनुच्छेद 25 के अंतर्गत राज्य को सामाजिक कल्याण के लिए विधि पारित करने का अधिकार प्रदान किया गया है और सभी हिन्दू मंदिरों को सार्वजनिक प्रकृति का घोषित किया गया है, जिसमें सभी वर्ग के लोग प्रवेश करने के अधिकारी होगें, लेकिन इन सबका हिन्दू होना आवश्यक है। हिन्दू के अन्तर्गत सिख, जैन और बौद्ध धर्म को मानने वाले लोगों को सम्मिलित किया गया है। अनुच्छेद 29 (2) के अंतर्गत धर्म प्रजाति जाति भाषा या इनमें से किसी भी आधार पर राज्य या राज्य की सहायता से संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्था में प्रवेश से प्रतिबन्धित नहीं किया जायेगा। इन अनुच्छेदों के अतिरिक्त राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त अनुसूचित जाति के सामाजिक और आर्थिक हितों के यथोचित प्रबन्ध से युक्त हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माता अनुसूचित जाति की विशिष्ट प्रकृति एवं पिछड़ेपन से पूर्णतः भिन्न थे।

संविधान में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति के सदस्यों को प्रदत्त सुविधाओं के लिए विभिन्न राज्यों द्वारा कई उपाय किये गये हैं। सामाजिक निर्योग्यताओं को दूर करने के लिए संवैधानिक उपायों को लागू करने के संदर्भ में कई विधियाँ पारित की गयी है। इनके प्रभाव का मूल्यांकन अनुसूचित के सदस्यों की सामाजिक, आर्थिक, प्रस्थिति में हो रहे परिवर्तन और समाज की मुख्य धारा में उनके समन्वय की स्थिति पर निर्भर करता है।अनुसूचित जाति के लोगों के प्रति अत्याचार की घटनाएँ भी उनके सामाजिक प्रस्थिति का मानक है। भारत के विभिन्न प्रभागों में अस्पृश्य लोगों के उत्पीड़न की कुछ घटनाएँ प्रकाश में आती रहती है, तो कुछ स्थानीय स्तर पर दबा दी जाती है। पिछले कुछ दशकों से समाचार पत्र और सम्प्रेषण साधनों में विकास के कारण इस प्रकार की घटनाओं का अधिक से अधिक विवरण उपलब्ध हो रहा है। साथ ही साथ अस्पृश्य जाति के लोगों में जागृति भी उनके उत्पीड़न को घटनाओं को सामाजिक स्तर पर लाने में प्रमुख रही है।

अनुच्छेद 46: अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बंधी हितों की अभिवृद्धि–

राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के विशिष्टता, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

अनुच्छेद 330: लोकसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण– (1) लोक सभा में– क. अनुसूचित जातियों के लिए,ख. (असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर अन्य अनुसूचित जनजातियों के लिए और) ग. असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे।

(2) खंड (1) के अधीन किसी राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, लोक सभा में उपराज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) को आवंटित स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो यथास्थिति, उस राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) की अनुसूचित जातियों की अथवा उस राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) की या उस राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) के भाग की अनुसूचित जनजातियों की, जिनके संबंध में स्थान में इस प्रकार आरक्षित है. जनसंख्या का अनुपात उस राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) की कुल जनसंख्या से है।

(3) खंड (2) में किसी बात के होते हुए भी, लोकसभा में असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या या अनुपात, उस राज्य की आवंटित स्थानों की कुल संख्या के उस अनुपात से कम नहीं होगा जो उक्त स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है।

अनुच्छेद 332: राज्यों की विधान सभाओं अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों को आरक्षण–

(1) प्रत्येक राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जातियों के लिए और (असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर) अन्य अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे।

अनुच्छेद 335: सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावे संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप में सम्बंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा।

अनुच्छेद 338: अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों आदि के लिए विशेष अधिकारी–

(1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से सम्बंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन रक्षोपायों के कार्यकरण के सम्बंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

(3) इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि इसके अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश, जिनको राष्ट्रपति अनुच्छेद 340 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे और आंग्ल–भारतीय समुदाय के प्रति निर्देश भी है।

अनुच्छेद 338: अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में संघ का नियंत्रण–

(1) राष्ट्रपति, राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन के लिए आयोग की नियुक्ति, आदेश द्वारा, किसी भी समय कर सकेगा और इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर करेगा। आदेश में आयोग की संरचना शक्तियों और प्रक्रिया परिनिश्चित की जा सकेगी और जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक या वांछनीय समझे ।

(2) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (किसी राज्य) को ऐसे निर्देश देने तक होगा जो उस राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए निर्देश में आवश्यक बताई गई स्कीमों के बनाने और निष्पादन के बारे में है।

अनुच्छेद 341: (1) राष्ट्रपति, किसी राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) के सम्बंध में और जहाँ वह राज्य है यहाँ उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा, उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों, अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए (यथास्थिति) उस राज्य (या संघ राज्यक्षेत्र) के सम्बंध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा।

(2) संसद, विधि द्वारा, किसी जनजाति या जनजाति समुदाय को अथवा किसी जनजाति या जनजाति समुदाय के भाग या उसमें के यूथ को खंड (1) के अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में सम्मिलित कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय उक्त खंड के अधीन निकाली गई अधिसूचना में किसी पश्चातुवर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

भारतीय समाज में यह एक सर्वमान्य धारणा है कि जाति व्यवस्था में परम्परा से ही कुछ जातियां पददलित और उपेक्षित रही हैं, इन्हें समाज की मूल धारा से जोड़ने के सभी प्रयास सतही रहे हैं। आधुनिक भारत में

अनुसूचित जाति के सदस्यों में निर्धनता, बेरोजगारी, भूमिहीन स्थिति, निरक्षरता, अस्पृश्यता, सामाजिक निर्योग्यता आदि कुछ विशिष्ट स्थितियां रही हैं, जिसके कारण इनकी सामाजिक प्रस्थिति में गतिशीलता धीमी रही है। आधुनिक भारत की राजनीतिक व्यवस्था के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक स्वरूप में हुए परिवर्तन का प्रभाव अनुसूचित जातियों पर सबसे अधिक पड़ा है। विकास के प्रतिफल में व्यवसायों की विविधता बढी है। कार्य और आय के नये अवसर सुलभ हुए हैं। अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध के रूप में स्वीकृत किया गया है। सेवाओं में आरक्षण, निःशुल्क शिक्षा, उच्च प्रशासकी सेवाओं के लिए निःशुल्क प्रशिक्षण, छात्रवृत्ति, स्व–रोजगार हेतु अनुदान आदि प्रयासों के माध्यम से अनुसूचित जाति के लोगों की सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति में उत्थान के सरकारी प्रयास निरन्तर किये जा रहे है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. अग्रवाल, जी.के. (2016) भारतीय समाजः मुद्दे एवं समस्याएं, प्रकाशक एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस आगारा पृष्ठ सं0 59
2. शीलप्रिय, बौद्ध (2018) भारत में जातियॉ, प्रकाशक सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ सं0 19
3. रावत हरिकृष्ण (2006) सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशंस जयपुर पृष्ठ सं0 70
4. अग्रवाल, जी.के. (2021) भारत में समाजः संरचना, संगठन, परिवर्तन, प्रकाशक एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस आगारा पृष्ठ सं0 227–228
5. श्रीनिवास, एम.एन. (2019) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, 20वां संस्करण, राज प्रकाशक प्रा0लि0 नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 86

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

महिला सशक्तिरण : एक विमर्श

डॉ0 कंचन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय पी.जी. कालेज
नैनी, प्रयागराज
डॉ0 सतीश चन्द्र जैसल
असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश –

महिला सशक्तिरकण एक महवपूर्ण समकालीन विमर्श है। महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं का पुरुषों के समान वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायतता है। अर्थात् महिलाओं में इस प्रकार की क्षमता का विकास करना है। जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह अपनी इच्छानुसार कर सकें। महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शक्तिविहीन शक्ति संपन्न होने का प्रयास करता है।, शक्तिकरण व्यक्ति या समूह की क्षमता को बढ़ाना है ताकि वह अपनी इच्छानुसार से कार्यों को चुनने और संपादित कर सकें। डॉ.डी एन. मजूमदार के शब्दो में,हिन्दू परिवार में सबसे अधिक रूढ़िवादी तत्व महिला है और परम्परागत रूढ़ियों का पालन इनके द्वारा ही कराया जाता है। डा. के.एम. परिक्कर इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि "हिन्दू समाज में पुत्री के अस्तित्व को कानून द्वारा हटा दिया गया, पत्नि पति के परिवार का एक अंग हो गई और विधवाओं को मृततुल्य मान लिया गया।

मुख्य शब्द – महिला सशक्तिकरण, प्रस्थिति, भारतीय समाज, सामाजिक व्यवस्था, समानता

भारत में महिलाओं की प्रस्थिति में वर्तमान समय महिला सशक्तीकरण का दौर माना जा रहा है प्रत्येक क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान पर विचार हो रहा है। प्राचीन भारतीय समाज मे महिला का स्थान बहुत ऊँचा था ऐसी मान्यताओं को यथार्थ की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है। यदि यह स्वीकार कर लें कि प्राचीन युग में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा उनका स्थान ऊँचा था तो उनकी उच्चता के प्रेरक तत्व कौन–कौन से थे तथा उसका ह्रास कब हआ, यह समझने के लिए इतिहास पर नजर डालना अनिवार्य है। भारतीय समाज व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति एक लम्बे समय से विवाद का विषय रही हैं। हालांकि पश्चिमी विद्वानों ने यहाँ तक माना है कि महिला के कुछ ऐसे जन्मजात दोष है जिनके कारण वह पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती है। महिलाओ मे जन्म से ही अंसगति और परस्पर विरोध का दोष होता है जबकि फ्रायड ने यहाँ तक कह दिया है कि यह स्वीकार करना होगा कि महिलाओं मे न्याय की भावना बहुत कम होती है क्योकि उनके मस्तिष्क में ईर्ष्या भरी रहती है। भारतीय समाज में ऐसी कोई धारणा नही पाई जाती है। हमारी मौलिक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को सम्पत्ति, ज्ञान, और शक्ति का प्रतीक माना गया है जिसकी अभिव्यक्ति के रुप मे लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती रही है।

महिला सशक्तिकरण की विचारधारा की शुरूआत 1980 के दशक में उनके अधिकारों को लेकर हुई थी। इसका पहला उद्देश्य तत्कालीन असमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना को चुनौती देना था एवं दूसरा अनिवार्य उद्देश्य आमूल–चूल परिवर्तन करना है। सन् 1990 के लगभग विकास की कुछ संस्थाओं द्वारा इस अवधारणा को विकास के एक वैकल्पिक उपागम के रूप में अपनाया गया।

सेन और ग्राउने ने सन् 1987 में अपनी 'पुस्तक विकास, संकट और वैकल्पिक दृष्टियाँ (परिप्रेक्ष्य) में सर्वप्रथम 'एम्पारवमेण्ट' शब्द का प्रयोग किया। इसके बाद विकासात्मक समाजशास्त्रियों और महिलाओं के जीवन सुधार में रूचि रखने वाले विद्वानों ने इसका प्रयोग लिंग सम्बन्धों में किया। सशक्ति्करण की विचारधारा को मात्र लिंग सम्बन्धों के साथ जोड़ना उचित नहीं है। यह न केवल एक लैंगिक मुद्दा है बल्कि यह एक विकासात्मक मुद्दा है, जो स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। परन्तु आम तौर यह हासिये पर जो समूह है। जिसमें (विशेषकर महिलाएँ) हैं, उनसे सम्बन्धित एक मुद्दा है। महिलाओं के आत्म–विश्वास, आत्म सम्मान और शक्ति की अनुभूति तथा विस्तृत सन्दर्भ में एक–दूसरे से सम्मान प्राप्ति के अधिकार को योग्यतम मानने का भाव का मुद्दा है। सशक्तिकरण व्यक्तिगत सम्बंधात्मक और सामूहिक त्रिस्तरीय मुद्दा है, इसके माध्यम से महिलाओं के शक्ति एवं अधिकार में वृद्धि होती है। सशक्तिकरण में इसकी व्याख्या कई ढंग से की गयी है शाब्दिक अर्थ के अनुसार सशक्तिकरण का अर्थ है 'किसी व्यक्ति या समूह को अधिकार या कानूनी शक्ति देना, किसी को कार्य करने के लिए शक्ति, विश्वास एवं किसी व्यक्ति या समूह को अपने कार्य करने के लिए स्वतंत्र क्षमता प्रदान करना है।

रिचार्ड कार्बर के अनुसार सशक्तिकरण का अर्थ उस स्वतंत्रता से है जो कार्य करने के सबसे अच्छे तरीके के साथ जुड़ी हुई है। सशक्तिकरण की अवधारणा प्रायः अलग–अलग तरीकों में अलग समझ ली जाती है। इसलिए सशक्तिकरण की स्पष्ट अवधारणात्मक व्याख्या आवश्यक है। सामाजिक सन्दर्भों में शक्ति का अर्थ वह प्रक्रिया है जो शासन, नियंत्रण, निर्देशन तथा प्रभाव के साथ जुड़ी हुई है। जिसका कार्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से सुरक्षा प्रदान करना और जनता का विकास करना है। रिचार्ड कार्बर सशक्तिकरण को व्यक्तियों के लिए उस प्रोत्साहन के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं जो समान लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया उस संस्कृति का निर्माण करती है, जिसमें प्रत्येक स्तर का व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह अन्तरों के विपरीत उस विश्वास और क्षमता को प्राप्त कर सके, जिससे महिलाओं के सामाजिक विकास में सहयोग प्रदान होगा।

भारतीय महिलाओं की चर्चा करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि महिलाओं की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन 19 वीं सदी के बाद प्रारम्भ हुआ वाह्य दृष्टि से इस परिर्वतन के लिए अंग्रेजी राज्य को उत्तरदायी माना जा सकता है। हमें यह विचार करना होगा कि ऐसी कौन सी जटिलतायें थी कौन से दबाव व नियन्त्रण थे जिनके कारण महिलाओं के स्थान एवं दर्जे में पिछले तीन चार हजार वर्षों में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हो सका ? इन सब समस्याओं के समाधान के लिये हम विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण कर सकते है।

महिला सशक्तिकरण को वैश्विक स्तर पर प्रकाश डालें तो अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च, 1910 को डेनमार्ग में मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में मानव के मौलिक अधिकार संरक्षण व संवर्धन का उद्देश्य स्पष्ट कर महिला–पुरुष दोनों को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रिम विकास यात्रा को प्रारम्भ किया गया। मानव समाज में सम्पूर्ण विकास हेतु उपेक्षित महिला वर्ग के लिए विशेष प्रयत्नों के आवश्यकता की अनुभूति करते हुए अलग से 'मानव अधिकार घोषणा पत्र' के अतिरिक्त महिला हितों की रक्षा करने के लिए 1946 में ही स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करने हेतु एक आयोग का गठन किया गया, जिसको 'कमीशन आन टू स्टेट्स ऑफ वीमेन' का नाम दिया गया। सन् 1948 में मानवाधिकारों को वैश्विक घोषणा पत्र द्वारा घोषणा की गई। तत्पश्चात् 1967 में भी संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के प्रति हो रहे भेदभाव को समाप्त करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित करके घोषणा की गई थी। जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, विवाह या विवाह विच्छेद, शैक्षणिक या व्यवसायिक किसी भी क्षेत्र में महिला व

पुरुष में भेदभाव वर्जित है। इसी क्रमबद्ध तरीके से पुनः 1970 में प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें मुख्यतः घोषणा की गई कि महिलाओं के उत्थान में विकास के सभी संसाधनों का उपयोग किया जाये।

महिलाओं के कल्याण के सन्दर्भ में सम्पूर्ण विश्व में महिला उत्थान व विकास के प्रति चेतना जगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा की 18 दिसम्बर 1972 की बैठक में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग घोषणा करने का निर्णय लिया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग के उपलक्ष्य में 1977 में मेक्सिको सिटी में महिलाओं का प्रथम विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में तीन केन्द्रिय बिन्दु निर्धारित किये गये– समता, प्रगति व शान्ति जो आगामी वर्षों में संगठन द्वारा महिलाओं के विकास के लिए किये गये प्रयास एक आधार के रूप में प्रस्तुत हो सकें। वर्ष 1976 से 1985 का समय संयुक्त राष्ट्र महिला दशक का रहा। इस दशक के दौरान महिलाओं की विकास आवश्यकताओं से हटकर ध्यान इस मान्यता पर केन्द्रित हुआ है कि विकास प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान विकास के लिए अनिवार्य है। महिलाओं के विकास और अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसम्बर 1979 को महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने के विषय में प्रस्ताव पारित किया गया जो 3 सितम्बर 1981 से प्रभावी हुआ। 1980 के संयुक्त राष्ट्र महिला दशक के रूप में कोपेन हेगन में आयोजित द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार पर विशेष बल दिया गया।

सन् 1985 में नौरोबी में महिलाओं पर हुए तृतीय विश्व सम्मेलन ने इस दशक के दौरान हुई उपलब्धियों तथा अड़चनों का पुनः अवलोकन किया गया। प्रथम संयुक्त राष्ट्र महिला दशक का समापन हुआ इसमें महिलाओं को शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु प्रोत्साहन देते हुए सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों की भूमिका में वृद्धि कर पुरुषों के समान भागीदारी निभाने की भविष्य रणनीति तय किया गया। सन् 1986 से 1995 के मध्य महिलाओं के समर्थन को संगठन की सभी एजेन्सियों व निकायों के विकास प्रयत्नों को प्राथमिकता प्रदान किया गया। महिलाओं के विकास के मुद्दे पर इस काल में शिक्षा, बच्चो की स्थिति, पर्यावरण, संरक्षण, मानवाधिकार, जनसंख्या तथा सामाजिक विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलनों के परिणामों से प्रतिबिंबित हैं।

महिला सशक्तिकरण को गति प्रदान करने हेतु सितम्बर 1995 में चीन की राजधानी बीजिंग में चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें महिलाओं के मानवाधिकार पर बल दिया गया और लिंग समता के प्रति सभी नीति निर्माता व योजना के सभी स्तरों पर लैंगिकता के आधार पर समानता पर बल दिया गया है। 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की घोषणा की गयी जिसमें महिलाओं के विरूद्ध विभेदीकरण के विभिन्न प्रकार निषेध की घोषणा किया गया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिरकण से तात्पर्य मूल रूप से महिलाओं के लोकतांत्रिक अधिकारों एवं उनके मानवाधिकारों का प्रश्न से हैं, जो आंशिक रूप से सार्वभौमिक एवं आंशिक रूप से सांस्कृतिक निष्ठ है। यह भी सत्य है कि 1950 से 1960 के दशकों को विकास के दशकों के रूप में गौरवान्वित किया गया किन्तु 1970 मे एस्टर बोसरुप के अध्ययन 'वोमन्स रोल इन इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट' ने यह उजागर किया कि अनेक विकास परियोजनाओं का परिणाम महिलाओं की प्रस्थिति को बेहतर बनाने के बजाय उनके लिए अवसरों की वंचनाओं में हुआ है। महिलाओं के विकास को प्रक्रिया के अन्तर्गत लाने के लिए प्रयास किये गये। यह दृष्टिकोण उदारवादी विकास प्रतिमान का ही प्रतिरूप था। जिसमें स्त्री–पुरुष समानता के वैधानिक, औपचारिक आयामों पर बल दिया गया था।

उक्त दोनों प्रक्रियाओं में महिलाओं की बुनियादी आवश्यकताओं–जीविका, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण व विमर्श प्रभावशाली रहा है। महिलाओं के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए 1974 में भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति

पर प्रकासित रिपोर्ट 'समता की ओर पहली बार समग्र' दृष्टि से महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय स्तर पर संवैधानिक तथा कानूनी प्रावधानों के सन्दर्भ में महिलाओं के अधिकारों की वास्तविक स्थिति पर प्रश्न उठाये गये। उसके बाद 1975 में सम्पूर्ण स्त्रियों की शताब्दी की घोषणा से स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की स्थिति का विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन का प्रयास किया गया। सन् 1975 के बाद समिति की अनुशंसाओं के अनुरूप एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग एवं भारतीय महिला आन्दोलन की पुनः सक्रियता के फलस्वरूप महिला स्थिति में सुधार के अनेका नेक नीतिगत निर्णय लिए गये।

महिला सशक्तिरकण को विशेष वरीयता प्रदान करने के लिए 6वीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के सन्दर्भ में पहली बार अलग से कुछ विशेष प्रावधान किये गये। 1976 में महिला के विकास के लिए राष्ट्रीय कार्यवाही योजना बना और यह सिलसिला लगातार जारी रहा। इसी रिपोर्ट के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय सन्दर्भ योजना' (1980–2000) तैयार की गयी, जिसमें महिलाओं को राष्ट्र के विकास में मुख्यधारा में शामिल करने के लिए बहुउद्देशीय नीतियों का निर्माण किया गया। स्वरोजगार में कार्यरत महिलाओं तथा अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग की व्यापक रिपोर्ट 'श्रम शक्ति 1988' में अनौपचारिक क्षेत्र में महिला कामगारों से सम्बन्धित मामलें पर विचार किया गया और महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशों की गयी।

महिला सशक्तीकरण के आयाम

महिला सशक्तीकरण का तात्पर्य महिलाओं को अधिक शक्ति या सत्ता दिया जाना है अर्थात महिला को अधिक सुविधा पूर्वक कार्य करने देने के लिये उनमें चेतना एवं उन क्षमताओं का विकास किया जाना ताकि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सहभागिता निभा सकें।

महिला सशक्तीकरण के दो आयामों की चर्चा आवश्यक है, पहला पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा उसकी स्वीकृति और दूसरा स्वंय के द्वारा स्वंय की स्वीकृति। पहली स्वीकृति में परिवार, शिक्षा, परिवेश, कानून, संविधान, सबकी भूमिका सम्मिलित है और दूसरी में आत्मविश्वास और आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास है। ये सभी क्षेत्र इतिहास, संस्कृति, धर्म, नैतिकता और अर्थ के विविध स्तरों से जुड़े है। इन सबका समन्वय और सामंजस्य ही स्त्री को सशक्त बना सकता है, लेकिन स्थितियां इससे कुछ अलग ही परिलक्षित हुई है। पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियां बाहरी खतरों एवं चुनौतियों के प्रतिक्रिया स्वरूप पनपी है और इनके बीच कार्य कारण का सम्बन्ध है पितृसतात्मक उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्षरत महिलाओं को सफलता भी मिली है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिला सशक्तीकरण पर पड़ा है। आज महिला सशक्तीकरण और उससे जुड़ी राजनीति का एक रूप पुरूष सत्तात्मक समाज के एकाधिकारवादी प्रवृति के विरूद्ध स्त्रियों के अधिकारों उनकी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिये चलाये जाने वाले आन्दोलनों में दिखायी देता है। महिला सशक्तीकरण के लिये महिलाओं में शिक्षा आर्थिक स्वावलम्बन राजनीतिक सहभागिता आदि पर विशेष जोर दिया जाता है और इसके लिये सरकार के स्तर पर अनेक कार्यक्रम, योजनायें, विधि उपाय तथा संवैधानिक व्यवस्थायें भी की गयी है। निःसन्देह राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे प्रयासों के परिणाम देश काल परिस्थिति के सापेक्ष सकारात्मक बदलाव के रूप में देखे जा सकते हैं। इन प्रयासों की निरन्तरता अभी भी महिला कल्याण एवं सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- यादव, सुबास सिंह, यादव सत्यभान (1997) ''ग्रामीण विकास का आधुनिक दर्शन'' सब्लाइम पब्लिकेशन जयपुर,
- लवानिया, एम0एम0, भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र, रिसर्च, पब्लिकेशन, जयपुर
- सिंह, कटार, (2011) ''ग्रामीण विकास सिद्धान्त, नीतियाँ एवं प्रबन्ध'', रावत पब्लिकेशन जयपुर,
- सिंह, एन0वी0, सिंह जनमेजय (2013) नारीवाद, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर,
- अनामिका (2001), स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली,
- मारिस, फोर्थ (2001), ऐतिहासिक भौतिकवाद, कोर बुक डिपों, कानपुर,
- सरला, माहेश्वरी (1998), नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
- भारत (2001), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

स्वस्थ्य तन एवं स्वस्थ्य मन

डॉ0 रणधीर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग
डॉ0 राम मनोहर लोहिया पी0जी0 कॉलेज
भैरोतालाब, राजातालाब, वाराणसी

सारांश

मनुष्य के पास मन की संकल्प शक्ति यह एक महत्वपूर्ण अस्त्र है, जिसके दम पर स्वास्थ्य सहित हर क्षेत्र में बड़ी जीत हासिल की जा सकती है। तन और मन दोनों की स्वस्थ्यता, जीवन में सफलता के साथ–साथ आनंदमय जीवन जीने का भी सूत्र है। अच्छा स्वास्थ्य सर्वोतम धन है। स्वस्थ्य एवं दक्षतापूर्ण जीवन हमारे दैनिक जीवन को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करता है। स्वस्थ्य रहने का अर्थ रोग रहित तन का होना ही नहीं अपितु तनावमुक्त, कुंठामुक्त, दबावमुक्त तथा चिंतामुक्त मन का होना है। यदि एक व्यक्ति अस्वस्थ्य तन रखता है तो वह अपने शरीर एवं मन को कभी भी स्वस्थ्य नहीं रख सकता। शरीर एवं मन दोनों की स्वस्थता जीवन में सफलता के साथ आनन्दमय जीवन जीने का सूत्र है। अच्छा मानसिक स्वास्थ्य हमें अच्छा महसूस करने के साथ शारीरिक क्षमता और आत्मविश्वास प्रदान करता है। अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य हमारी समस्याओं में मदद करता है वहीं खराब शारीरिक स्वास्थ्य हमें अत्यधिक कमजोर बनाता है।

मुख्य शब्द– स्वस्थ्य तन एवं स्वस्थ्य मन, आनन्दमय जीवन, भोजन।

स्वस्थ्य तन एवं स्वस्थ्य मन रखने के लिए निम्नलिखित क्रियाओं को अपने दैनिक जीवन में अपना सकते हैं–

1. सही सोच से बढ़ेगी आपकी सेहत :–

आज खुद को स्वस्थ रखना पहले की तुलना में कई गुना आसान है और मुश्किल भी। पर, हमारा सेहत पर ध्यान तब जाता है, जब हम बीमार होने लगते हैं। लंबी और स्वस्थ पारी खेलने के लिए तनव व मन दोनों पर लगातार काम करने की जरूरत है।

हम जीवन से बहुत कुछ पाना चाहते हैं, नाम, शौहरत, दौलत, प्यार, दोस्त, परिवार लेकिन भूल जाते हैं कि इन सबको पाने का केवल एक ही टूल है.... शरीर। महत्वाकांक्षी होना बुरा नहीं है, पर सेहत की कीमत पर नहीं। ठीक समय पर खाना न खाना, पूरी नींद न लेना, घंटों गेज्ट्स पर काम करना, शरीर को रोगी बना रहा है। मधुमेह, कैंसर, किड़नी, हृदय तंत्र से जुड़े रोग जीवनशैली से जुड़े हैं, जो मृत्यु के प्रमुख कारणों में है। युवा भी तेजी से इनके शिकार हो रहे हैं।

2. शुगर कोलेस्ट्रॉल को रखें कंट्रोल :–

अचानक भूख–प्यास बढ़ गई है, पेशाब बहुत कर रहे हैं, पैरों में झनझनाहट है तो शुगर जांच कराएं। परिवार में डायबिटीज का इतिहास है, तो युवावस्था से हर पांच साल में जांच कराते रहें। कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना हृदय रोगों का खतरा बढ़ाता है। धमनियों का संकरापन व असामान्य हो जाना, हार्ट अटैक व स्ट्रोक की आशंकाएं बढ़ती है। 20 साल की उम्र से कोलेस्ट्रॉल पर नजर रखें परिवार में हृदय रोगों का इतिहास है तो हर पांच साल में जांच कराएं।

3. सक्रिय रहें, व्यायाम करें :–

शारीरिक सक्रियता की कमी हमें जीवनशैली से जुड़े रोग जैसे, मोटापा, उच्च रक्तचाप, डायबिटीज और हृदय रोगों का शिकार बना रही है। आपको जिम पसंद नहीं है तो पैदल चलें। तैराकी, साइकलिंग या खुले में कोई भी खेल खेलें। खुद से काम करने, सीट से उठने और पैदल चलने के बहाने खोज। घंटों गलत पॉस्चर में बैठे हुए काम करना युवाओं में कमर व गर्दन दर्द, कमजोर मांसपेशियों के मामले बढ़ा रहा है। थोड़ा ध्यान देकर इनसे बचा जा सकता है।

4. सामान्य बनाए रखें ब्लड प्रेशर :–

हमारा ब्लड प्रेशर इससे निर्धारित होता है कि हमारा हृदय कितनी मात्रा में रक्त पंप करता है और जब रक्त धमनियों में बहता है तो उसे कितने प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। रक्तदाब का सामान्य रहना सेहत के लिए जरूरी है। आज हर पांच में से एक व्यक्ति का ब्लड प्रेशर असामान्य होता है। यह जांच 15 वर्ष की आयु में शुरू कर देनी चाहिए। पर, अगर ब्लड प्रेशर सामान्य से कम या अधिक है तो हर छह महीने में जांच करा लेनी चाहिए।

90 / 60 या कम	निम्न रक्तदाब
120 / 80 या कम	सामान्य रक्तदाब
140 / 90 या	अधिक उच्च रक्तदाब

5. मोटापे से बचें :–

भारत में मोटापे के मामले विश्व में औसत से अधिक तेजी से बढ़ रहे हैं। आंकड़ों की मानें तो, 1998–2015 के बीच मोटापे के कुल मामले 2.2 प्रतिशत से बढ़कर 5.1 प्रतिशत हो गए हैं। मोटापा के कारण, फेफड़े, किडनी, लीवर, जोड़ आदि हर अंग पर दबाव बढ़ जाता है। खानपान व जीवनशैली पर ध्यान दें। सब्जियां, फल व साबुत अनाज खाएं। रात और सुबह के खाने में 10–12 घंटे का अंतर रखें।

6. पूरी नींद है जरूरी :–

महानगरों में रहने वाले लगभग 50 प्रतिशत लोग पूरी नीद नहीं ले पाते हैं, जो तनाव बढ़ाता है। लगातार कृत्रिम रोशनी में रहना मेलेटोनिन को प्रभावित होता है, जिससे अनिद्रा बढ़ती है। कमरे का वैटिलेशन अच्छा रखें। नींद, पूरी न होना मोटापा व न्यूरो समस्याओं को बढ़ा देता है।

7. नए चलन का प्रभाव :–

मिनी मील्स का ट्रैंड : दिन में 5–6 बार मिनी मील खाने का चलन बढ़ा है, जो अच्छा है पर, ध्यान रहे कि कैलोरी का इनटेक न बढ़े। अंतर्राष्ट्रीय जनरल ओबेसिटी में छपे अध्ययन के अनुसार, उन लोगों में वसा का जमाव अधिक होता है जो कम बार में अधिक भोजन खाते हैं।

8. सप्लीमेंट्स के प्रति बढ़ता क्रेज :–

इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड एड बेसिक मेडिकल रिसर्च में छपे अध्ययन के अनुसार, 30 प्रतिशत लोग बिना डॉक्टर के कहे मल्टीविटामिन्स व प्रोटीन सप्लीमेंट्स खा रहे है। पोषण भोजन से प्राप्त करें, सप्लीमेंट्स से नहीं।

धूमपान की तरह खतरनाक है बैठने की लत : स्वास्थ्य विशेषज्ञ ज्यादा देर बैठने की धूमपान जितना ही खतरनाक मान रहे हैं। आज सेडेटरी बिहेवियर या अत्यधिक बैठने का चलन बहुत बढ़ गया है। लगातार 30 मिनट तक बैठने से मेटाबॉलिज्म 90 प्रतिशत तक धीमा हो जाता है।

एयरप्यूरिफायर का बढ़ा चलन : बाहर के साथ घर के अंदर प्रदूषित हवा के बढ़ते स्तर के कारण एयरप्यूरिफायर्स का चलन बढ़ा है। खासतौर,, पर हवा जनित रोगों के बढ़ने व कमजोर इम्युनिटी के कारण फेफड़ों के संक्रमण के मामले बढ़ने से इनकी मांग तेजी से बढ़ी है।

9. संगीत का रसास्वादन :–

स्वस्थ्य मन को रखने के लिए नियमित रूप से संगीत का रसास्वादन किया जाना चाहिए। लाइट संगीत एवं लाइट गज़ल हमारे मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाते है तथा हमारे मस्तिष्क में हैप्पी हार्मोन्स का स्त्रावित करते है, संगीत शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए औषधि है।

निष्कर्ष :–

साथियों बात अगर हम स्वस्थ्य तन और स्वस्थ्य मन की करें तो स्वस्थ्य व तंदरूस्त रहना हमारे दैनिक कार्यों को करने में मदद करता है। स्वस्थ्य रहने का अर्थ रोग रहित तन का होना ही नहीं अपितु तनावमुक्त, कुंठामुक्त, दबावमुक्त तथा चिंतामुक्त मन का होना भी है। शरीर और मन दोनों की स्वस्थता जीवन में सफलता के साथ–साथ आनंदमय जीवन जीने का सूत्र है। आज आवश्यकता है मनुष्य को अपने शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी ठीक एवं खुशहाल रखकर आनंदमय जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. कुरूक्षेत्र, हिन्दी मासिक पत्रिका।
2. दैनिक जागरण, समाचार पत्र।
3. दैनिक सम्पादकीय।
4. योजना हिन्दी मासिक पत्रिका।
5. हिन्दुस्तान जागरण पत्र।
6. हिन्दुस्तान सम्पादकीय।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

पारिस्थितिकी पर्यटन की समस्याएँ एवं समाधान

डॉ0 दीक्षा मिश्रा
पूर्व शोध छात्रा
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

सारांश –
पर्यटन की विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ पर्यावरण को प्रभावित करती है। पर्यावरण तथा पर्यटन एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। पर्यटन आर्थिक एवं सामाजिक विकास का साधन हैं, परन्तु बढ़ते हुए पर्यटन के कारण पर्यावरण को बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारत में निर्धनता एवं आर्थिक वृद्धि दोनों ही पर्यावरणीय चुनौती प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान में मनुष्य अपने आने वाले कल के परित्याग तथा अपने पर्यावरण के अति उपयोग के लिए विवश हो गए हैं। विकासशील देशों में यह चिंता का विषय इसलिए भी हो जाता है क्योंकि जनसंख्या का अधिकांश भाग प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर करता है। कुछ देशों में तो विदेशी मुद्रा अर्जित करने का सबसे बड़ा स्रोत पर्यटन है। समूचे विकासशल उच्चकटिबंधीय क्षेत्रों में संरक्षित क्षेत्र प्रबन्धकों और स्थानीय समुदायों को आर्थिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता के बीच संतुलन कायम करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

मुख्य शब्द : पर्यटन, परिस्थितिकी तंत्र, आवश्यकताएँ, गतिविधियों का प्रभाव, समस्याएँ।

भारत के प्राचीनकाल के शैक्षिक एवं धार्मिक पर्यटन से वर्तमान के पारिस्थितिकी पर्यटन का विकास कई कालखण्डों में हुआ है। प्राचीन से लेकर वर्तमान भारत में लगभग हर काल में पर्यटकों की सुविधा का ख्याल रखा गया है। अशोक सम्राट ने भी पथिकों के आश्रय की व्यवस्था की थी। बाद में समुद्रगुप्त के काल में और उसके बाद शेरशाह के काल में भी इन यात्री सुविधाओं का ध्यान रखा गया था। आधुनिक काल में पर्यटन को लेकर पहला वास्तविक प्रयास 1945 में हुआ जब तत्कालीन शिक्षा सलाहकार सर जॉन सर्रेन्ट के अध्यक्षता में पर्यटन विकास के लिये समिति बनाई गई। स्वतंत्रता के बाद इस क्षेत्र में पहला कदम 1956 में दूसरी पंचवर्षीय योजना का समय उठाया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना ने भारत में पर्यटन के क्षेत्र में एक नये युग की स्थापना की, जब पर्यटन को सामाजिक समरसत सामाजिक एकता और आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूण साधन माना गया है।

आधुनिक भारत में पर्यटन का वास्तविक विकास 1960 के दशक में हुआ। 1980 के बाद पर्यटन को लेकर राष्ट्रीय पर्यटन नीति की घोषणा 1982 में हुयी। 1989 में पर्यटन निगम की स्थापना की गयी ताकि पर्यटन सहयोग कार्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जा सके। नई पर्यटन नीति 1997 में आई सेंटर और राज्य जनसंपर्क सार्वजनिक निगमों और निजी निगमों की भूमिका तय की गयी, साथ ही अनैच्छिक राज, परिवार, स्थानीय संस्थान, गैर सरकारी संस्थान और स्थानीय छात्राओं की चर्चा को अधिकारिक रूप में शामिल किया गया। विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार ''पारिस्थिकी पर्यटन के अन्तर्गत अपेक्षाकृत आबाधित प्राकृतिक क्षेत्रों की ऐसी यात्रा सम्मिलित है, जिसका निर्दिष्ट लक्ष्य प्रकृति का अध्ययन तथा समादर करना एवं जीव जन्तुओं के दर्शन का लाभ उठना तथा साथ ही इस क्षेत्रों में सम्बद्ध सांस्कृतिक पहलुओं (अतीत व वर्तमान दोनों) का अध्ययन करना है।'' संक्षेप में परिस्थितिक पर्यटन में तीन पहलुओं को रेखांकित किया गया है। प्रकृति, पर्यटन, स्थानीय समुदाय।

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र पर्यावरण पर्यटकों के लिये अनोखे एवं बेजोड़ स्थल प्रस्तुत करता है, जहाँ वे क्षेत्रीय, पर्यावरण सम्बन्धी, नस्ल संबंधी, जलवायु संबंधी, भाषायी, सांस्कृतिक तथा परिधान संबंधी भिन्नताएँ देख सकते हैं इस प्रकार की विविधता पूर्वोत्तर क्षेत्र के अरूणाचल प्रदेश, असम, मिर्जापुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैण्ड तथा सिक्किम में देखने को मिलती है। पारिस्थितिकी पर्यटन का सार चूँकि प्रकृति की प्रशंसा तथा बाहरी मनोरंजन है अतः इसके अन्तर्गत ट्रैकिंग, हाइकिंग, पक्षी–पर्यवेक्षण, नौकायन, पर्वतारोहन, जैव वैज्ञानिक खोज तथा वन्य जीव अभ्यारण्यों की यात्रा जैसी व्यापक गतिविधियाँ सम्मिलित है। इस प्रकार से यह साहसिक पर्यटन के सदृश है लेकिन उससे भिन्नता इस दृष्टि से है कि साहसिक पर्यटन में यहाँ रोमांच की प्रमुखता होती है वही पर्यावरण पर्यटन में संतुष्टि पर बल दिया जाता है। इसमें प्रेरणात्मक तथा भावनात्मक पहलू मूल्यवान है क्योंकि इसका लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास करना नहीं है।

पारिस्थितिकी पर्यटन से होने वाली समस्यायें :

पर्यटन गतिविधियों के कारण पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव के बहुत से उदाहरण उपलब्ध है। जैसे– रामेश्वरम के पास का कुरोडेई द्वीप जो किसी समय समुद्री जीव वैज्ञानिकों के लिए स्वर्ग माना जाता था। आज वह द्वीप किसी भी प्रकार के शैक्षिक एवं शोध गतिविधि के लायक नहीं बचा क्योंकि अत्यधिक पर्यटन आगमन के कारण वहाँ के कोरल एवं अन्य समुद्री जीवन समाप्त हो गया है। इन सबके अलावा पर्यटन गतिविधियों के कारण जन्तु के जीवन एवं आदतों पर भी असर पड़ता है।

पारिस्थितिकी पर्यटन द्वारा क्रियाओं द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को उजागर करना अति आवश्यक है। जो निम्नलिखित है।

1. कई विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा शिक्षा के उद्देश्य से यात्राएँ आयोजित की जाती है। कई बार इन यात्राओं के कुछ प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ते हैं। जैसे– अध्ययन की दृष्टि से कुछ पौधों का जमीन से बाहर निकालना या अनजाने में ही कुछ छोटे–छोटे महत्वपूर्ण पौधों को कुचला जाना, इस प्रकार की गतिविधियाँ जैव विविधता को नुकसान पहुँचाती है।
2. नदी या समुद्र के किनारे अवस्थित पर्यटन सुविधाओं से निकलने वाला संसाधित विषाक्त मल–जल इन जल–थल स्रोतों को प्रदूषित करता है जिसका सीधा प्रभाव जलीय जीवों, तटीय क्षेत्रों तथा उस जल स्रोतों के आस पास निवास करने वालों पर पड़ता है।
3. पर्यटक स्थलों पर कचरे या अपशिष्ट का निपटान भी बहुत बड़ी समस्या है। कई स्थानों पर यह समस्या इतनी गम्भीर है कि उन स्थानों का स्वरूप ही बिगड़ गया है।
4. पर्यटकों द्वारा वन्य जीवन का अवलोकन उनके दैनिक कार्यकलापों में बाँधा पहुँचाता है विशेषकर उनके चारण एवं प्रजनन में।
5. इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण हमारे आसपास उपलब्ध है। भविष्य में पर्यटन के विस्तार के साथ ऐसे और उदाहरण बढ़ते जायेंगें, पर्यटन एवं पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धें का अवलोकन आवश्यक है। पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तंत्रों के लिये एक विशिष्ट योजना तथा प्रबन्धन की आवश्यकता है जो इन समस्याओं को नियन्त्रण कर सकें।

पर्यटन गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव :

जल	कूड़े–कचरे एवं मल जल की निकासी झीलों, नदियों और समुद्री तटों में।	सन्दूषण, स्वास्थ्य के लिये संकट, समुद्रि पौधे ओर जीव जन्तु का विनाश।
	पर्यटन पोत या नौकाओं से तेल की निकासी आदि।	जलाशयों में विशाक्तता की वृद्धि, समुद्री खाद्य में सन्दूषण आदि।

वायुमण्डल	पर्यटन स्थल की ओर यात्रा में वृद्धि, मोटर, कार, जहाज, ट्रेन (वायुयान)	वायु और ध्वनि प्रदूषण, पौधों के जीवन पर हानिकारक प्रभाव, मनोरंजन के मूल्यों की क्षति।
वनस्पति	मनोरंजन स्थल के निर्माण हेतु वृक्षों की कटाई, उद्यानों और वनों में आग का विचारहीन इस्तेमाल, उद्यानों और वनों में बढ़ता यातायात, फूलों और पौधों और कवक का संग्रहण।	वन्य सम्पदा की क्षति, पौधों का निरन्तर विनाश, वन्य क्षेत्रों में अग्निकाण्ड, पौधों के जीवन पर प्रभाव।
मानव बस्तियाँ	होटलों, दुकानों आदि का निमार्ण और विस्तार।	जनविस्थापन, यातायात का संकुलन, बढ़ा हुआ प्रदूषण आदि।
स्मारक	मनोरंजन के उद्देश्यों के लिये इस्तेमाल, पर्यटकों को देखने महत्त्वपूर्ण स्थानों का अत्यधिक उपयोग	अति संकुलता, विरूपण सुरक्षा के लिये बाधा आदि।

समाधान : प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना उत्तरदायित्वपूर्ण पर्यटन के विकास हेतू पर्यटन से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। वन क्षमता के मूल्यांकन तथा आवश्यक सुविधाओं जैसे परिवहन, ईधन, स्वास्थ्य, जल आदि के आधार पर पर्यटन को प्रोत्साहन दिया जाये। पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल तथा स्थानीय लोगों की जीवन शैली को प्रभावित किये बिना पर्यटन को विकसित किया जाए। पर्यटन के अविवेकपूर्ण विकास पर प्रतिबंध लगाया जाए तथा संवेदनशील क्षेत्रों जैसे द्वीपों, तटीय क्षेत्रों, पहाड़ी ढ़ालों, अभ्यारण्यों की आवश्यकता है। अतः प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति पहुँचाये बिना उत्तरदायित्वपूर्ण पर्यटन के विकास हेतू निम्नांकित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

1. वहन क्षमता के आधार पर पर्यटन को प्रोत्साहन देना।
2. पर्यावरणीय परिस्थितियों अर्थात् पारिस्थितिकी के अनुसार एवं स्थानीय लोगों की जीवन शैली को प्रभावित किये बिना पर्यटन को बढ़ावा देना।
3. पर्यटन के अविवेकापूर्ण विकास पर प्रतिबन्ध और संवेदनशील क्षेत्रो जैसे संरक्षित अभ्यारण्यों, पहाड़ी ढ़ालों इत्यादि में पर्यटन के नियमों को सही प्रकार से लागू करना।
4. पर्यटन में जागरूकता बढ़ाना।
5. पर्यावरणीय संसाधनों के लिये समर्थन जुटाना।
6. व्यक्तिगत व्यवहार में परिवर्तन।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. द्विवेदी पी0 आ0 गुरदीपराम (2002), पर्यावरण पारिस्थतिकी, आकाशदीप पब्लिकेशन हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली
2. Singh, T.S., Singh S.P. and Gupa S.R. (2017) Ecology, Environmental Science and Conversation, S. Chand Publication.
3. कौशिक अनुभा एवं कौशिक सी0पी0 (2020) पर्यावरण अध्ययन, न्यू एज इण्टरनेशनल पब्लिकेशन
4. वार्षिक रिपोर्ट 2014–2015 पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार
5. www.Ibef.org
6. www.incredibleindia.org
7. www.pib.ni.in/feature.html.

*****

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

Climate Change and Sustainable Development : A Sociological Study

Shivangi Singh
Research Scholar
Department of Sociology
University of Lucknow

Abstract
Earth's climate has been changing and this is an undisputed fact today. The uniqueness of the present climate change is its time span. In about a hundred years the climate has changed noticeably. Various disciplines have been researching on the causes and impact of climate change as well as the ways to adapt and mitigate it. It has been revealed by recent studies that the present climate change is anthropogenic. Why is it so? Which human activities have triggered environmental change in such a massive scale? The present paper attempts to answer this question by bringing "sustainable development" to the forefront of analysis. The paper examines the historical and contemporary economic factors which explain the crisis of climate change in recent time. The paper also tries to highlight some topics which are necessary to mitigate this crises.

Keyword – Climate Change, Sustainable Development, Culture, Mitigation.

Climate Change-

Climate change is the long-term shift in the Earth's average temperatures and weather conditions.The average temperature of the Earth'ssurface is now about 1.1°C warmer than it was in the late 1800s (before the industrial revolution) and warmer than at any time in the last 100,000 years. The last decade(2011-2020) was the warmest on recordand each of the last four decades has beenwarmer than any previous decade since1850.

Many people think climate change mainly means warmer temperatures. But temperature rise is only the beginning of the story. Because the Earth is a system, where everything is connected, changes in one area can influence changes in all others.

Climate is sometimes mistaken for weather. But climate is different from weather because it is measured over a long period of time, whereas weather can change from day to day, or from year to year. The climate of an area includes seasonal temperature and rainfall averages, and wind patterns. Different places have different climates. A desert, for example, is referred to as an arid climate because little water falls, as rain or snow, during the year. Other types of climate include tropical climates, which are hot and humid, and temperate climates, which have warm summers and cooler winters.

Climate change is the long-term alteration of temperature and typical weather patterns in a place.In polar regions, the warming global temperatures associated with climate change have meant ice sheets and glaciers are melting at an accelerated rate from season to season. This contributes to sea levels rising in different regions of the planet. Together with expanding ocean

waters due to rising temperatures, the resulting rise in sea level has begun to damage coastlines as a result of increased flooding and erosion.

Generating electricity and heat by burning fossil fuels causes a large chunk of global emissions. Most electricity is still generated by burning coal, oil, or gas, which produces carbon dioxide and nitrous oxide – powerful greenhouse gases that blanket the Earth and trap the sun's heat. Manufacturing industry produce emissions, mostly from burning fossil fuels to produce energy for making things like cement, iron, steel, electronics, plastics, clothes, and other goods. Mining and other industrial processes also release gases, as does the construction industry. Producing food , over consumptions, carbon footprints cause climate change Climate change is directly contributing to humanitarian emergencies from heatwaves, wildfires, floods, tropical storms and hurricanes and they are increasing in scale, frequency and intensity. Research shows that 3.6 billion people already live in areas highly susceptible to climate change. Between 2030 and 2050, climate change is expected to cause approximately 250 000 additional deaths per year, from undernutrition, malaria, diarrhoea and heat stress alone.Climate change presents a fundamental threat to human health. It affects the physical environment as well as all aspects of both natural and human systems – including social and economic conditions and the functioning of health systems. As climatic conditions change, more frequent and intensifying weather and climate events are observed, including storms, extreme heat, floods, droughts and wildfires.

The consequences of climate change now include, among others, intense droughts,water scarcity, severe fires, rising sea levels,flooding, melting polar ice, catastrophic.Climate change can affect our health, ability to grow food, housing, safety and work.Some of us are already more vulnerable toclimate impacts, such as people living insmall island nations and other developing countries. Conditions like sea-level rise and saltwater intrusion have advanced to the point where whole communities have had torelocate, and protracted droughts areputting people at risk of famine. In thefuture, the number of people displaced by weather-related events is expected to rise.For example, parts of East Africa have sufferedtheir worst drought in 40 years, putting morethan 20 million people at risk of severe hunger. In 2022, European heatwaves led to anabnormal increase in deaths.

Sociological views on climate change

Anthony Giddens in his book "The Politics of Climate Change" comprehensively dealt with the environmental problem, particularly leading global warming and climate change. His arguments build from 'Gidden's paradox'. It states that,since the dangers posed by global warming are not tangible, immediate or visible in course of day to day life., however awesome they appear, many will sit on their hands and do nothing of a concrete nature about them. Yet waiting until they become visible and actuate before being stirred to serious action will, by definition, be too late.

Radhakamal Mukherjee argued that population increase leads to environmental problems because natural resources are heavily plundered. He says increasing population will bring in more significance of relationship between human beings and the entire range of ecological forces.

The green thinkers have been lamenting on excessive growth model, resource depletion, and pumping toxicity. They disagree with the notion of G.N.P. as an indicator of welfare particularly in the developed countries. On one hand oil and gas prices are growing up and other hand globalwarming and climate changeare intensify, hence attention should be given toincreasingly green factors. It is a question of responsibility and accountability Which lies with the politicians. Giddens supports the idea of "Limits to Growth" and"Polluter Pay". Brian Davey ecological economist wrote that Giddens does not like risk managementapproaches and green emphasis on localism, decentralization and participated democracy. He does not like a typically green distrust of corporate interest. He provides a list of new ideas for an establishment real politics approach to climate change.

Riley E. Dunlapand Robert J. Brulle in "Climate Change and Society: Sociological Perspective "are set out to engage climate change through a sociological lens by (a)examining the contributors to and impacts ofclimate change; (b) exploring equitable mitigationand adaptation strategies; (c) investigating thesocio-political dynamics of advocacy; and (d)looking at public opinion, social theory, and methodology.

Sustainable Development -

Sustainable Development is a complex concept that has started with theconcern for the environment .In time,it has been enriched with an economicand social dimensions. In the beginning sustainable development was meant to be the solution to theecological crisis caused by heavy industrial exploitation of resources andcontinuous environmental deterioration. Its main goal was to preserve thequality of the environment. At present, it also embraces the quality of lifeboth from the economical and social perspective.The concept of sustainable development is the totality of socio-economicdevelopment forms and methods not only on the short or medium term, butalso on the long term. The basis of these methods is the balance between thesocio-economic systems and elements of the natural capital. SustainableDevelopment as a concept has materialized during decades within theframework of thorough international scientific debates, and assumed politicalpotential through globalization.

The relationship between mankind and the environment became a matter ofgreat concern for international community at the first United Nation Conference on the Human Environment(Stockholm, 1972) and was givenconcrete form in the work of the World Commission on Environment andDevelopment created in 1985. The commission report, entitled Our CommonFuture, was presented by G.H Brundtland in 19876 and provided the firstaccepted and often quoted definition of sustainable development asdevelopment that meets the needs of the present without compromising theability of future generations to meet their own needs."

The concept of sustainable development is the result of the integratedapproach of political and decisional factors, in which environmentalaprotection and long-term economic growth are considered to becomplementary and interdependent. The complex matters of sustainabledevelopment acquired a global political dimension as they were debated at thesummit- level Earth Summit on Environment and Sustainable DevelopmentSummit (Rio de

Janeiro, 1992).the special session of the United NationGeneral Assembly which adopted Millennium Goals (2002) and the worldSummit on Sustainable Development held in Johannesburg (2002).

The central principle behind sustainable development are equity and fairnessamong countries and generation, the long term vision on the developmentprocess, systematic thinking and interconnection between economy, societyand environment. Sustainable development, has come as a sigh of relief in the light of largeScale depletion of forest cover. Brundtland Commission firmly put forward that all must ensure that sustainable development must meet the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their needs. It tells us about the use of eco-friendly technology and at the global level agreements have been reached upon among the nations to respect each other's needs. It also focuses on population, resources, environment and development.

Two main problems of sustainable development are (a) people do not believe in an alarming future where resources are finished and (b) political parties in power always see spectacular achievements now and inaugurate many projects.Witnout any proper social cost-benefit analysis. Further, economic inequality persists and it is increasingly found with the rising globalization of culture. Sustainable development is quite significant in the discussion of economics and other social and environmental sciences. There is a consensus among scientists from various disciplinary backgrounds that the central concentration of development should be improvement in the state of human well-beings of a society over time and that the natural environment has a determining role in such a state of affairs.

The Sustainable Development Goals are the blueprint to achieve a better and more sustainable future for all. They address the global challenges we face, including those related to poverty, inequality, climate change,environmental degradation, peace and justice. The 17 Goals are all interconnected, and in order to leave no one behind, it is important that we achieve them all by 2030.

1. No poverty
2. Zero hunger
3. Good health and well-being
4. Quality Education
5. Gender equality
6. Clean water and sanitation
7. Affordable and clean energy
8. Decent work and economic growth
9. Industry, innovation and infrastructure
10. Reduced inequalities
11. Sustainable cities and economies
12. Responsible consumption and production
13. Climate action
14. Life below water

15. Life on land
16. Peace, justice and strong institutions
17. Partnership for the goals.

Sociological view on Sustainable Development –

S.L Sharma in his article(2006) " Rethinking Sustainable Development – Ecology and Culture in India's development context" brings in focus the ecological unsustainability of present mode of development. On the ecosystem the existing development startegy has exerted four negative effects: global warming, ozone depletion, toxic pollution and erosion of biodiversity. Accordingly, there is a need to refashion development strategy that becomes ecologically sustainable.

A.K Sharma in his paper (2006) "Sustainable Development shift from population to cultural paradigm" put focus on the aspect of sustainable development. How earlier practices of development differ from present practices. Initially development strategies were made in the context of population and they were applicable to everywhere but now it is shifted to culture. The paradigm shift from population to culture has given more priority to holistic development of people rather than focusing on one aspect. According to Sharma, Ghandhian perspective is quite useful for this.

Baviskar (2014) in her paper " The Political uses of Sociology, Ecology and development India: A field and it's future" analyzed the emergence of " environmental sociology " in India and it's relationship with developmental sociology. Environmental sociology, though young is not a marginal specialization. It has wider scope as it can explain that human practices effected environment and vice- versa.

Martha Nussbaum (2011) in his article "Creating Capabilities: The Human Development Approach " said that although some nations are more developed than others. All nations are constantly developing because each nation struggles with perpetuating disparity, inequalities, and unequal access to fundamental rights and freedoms.

James Paul in his article " Assesing Cultural Sustainability: Agenda 21 for Culture " said that there are four dimensions to Sustainable Development economic, environmental, social and cultural. The agenda 21 for Culture say culture is the fourth pillar of sustainable development. The circle of sustainability approach distinguishes the four domain of economic, ecological, political and culture sustainability.

Conclusion

Climate Change is the burning topic. Climate change can affect our health, abilityto grow food, housing, safety and work.Some of us are already more vulnerable climate impacts, such as people living small island nations and other countries. Conditions like sea-level rise saltwater intrusion have advanced to point where whole communities have had relocate, and protracted droughts putting people at risk of famine. In future, the number of people displaced weather-related events is expected to rise.

An interdisciplinary approach that considers the social dimensions climate change can have a great impact on and wider relevance for policy formulation mitigation/adaptation strategies, especially when the causal influence of climate changeanthropogenic in nature.

Social science disciplines, especially sociology, can improve the state of climate adaptation policies and their corresponding practices by examining the underlying related to social vulnerabilities, inequities, and tensions between and within nations.Research on social classes and diversity has created understanding of risk perception, social vulnerability,and the adaptive capacities of various groups within society. Sociological theories, with research on social movements and collective actions, have been vital to the origins, dynamics, and impacts that have promoted or resisted adaptation to mitigation of climate change.

Providing more attention to wider field of socialscience can provide alternative viewpoints, which will expand the scope of policies and theimplementation of programs that are sensitive to the intricacies of social dynamism political conflicts. The assemblage of powerful sociological insights not only sets the for sociological input to understand and address climate change, but also provide solutions. Gandhian Perspective also emphasizes on self development over material prosperity. Development of villages, rural industries and working at the grass root level over modern machinery, technology and Mill.

We can conclude that to mitigate the effect of climate change sustainable development is the solution. Sustainable Development Goals(SDGs) , Conferences on climate change are some of the examples. Nations are taking positive steps towards sustainable development by moving towards green energy, focus on people's happiness, conscious use of resources**.**

Reference –

- Sharma, S.L 2006 "Rethinking Sustainable Development: Ecology and Culture in India's Context", in Sukant K Chaudhury (ed.) 2006. *Culture, Ecology and Sustainable Development.* New Delhi: Mittal Publications
- Sharma, A. K. 2006. " Sustainable Development – Shift from Population to Cultural Paradigm", in Sukant K. Chaudhury (ed.)*Social Ecology*. New Delhi: Oxford University Press
- Reddy, A.K.N. 2000. "Technology, Development and Environment: An Analytical Framework ", in Ramchandra Guha(ed.) *Social Ecology.* New Delhi: Oxford University Press.
- Giddens, Anthony. 2009.*The Politics of Climate Change.* Cambridge: Polity Press Publications
- Baviskar, Amita. 1995. *In the Belly of the River: Tribal Conflicts over Development in Narmada Valley* . New Delhi: Oxford University Press.
- Dunlapand , Riley E & Brulle, Robert J. 2015.*Climate Change and Society: Sociological Perspective*. USA: Oxford University Press.

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

ग्रामीण विकास और इलेक्ट्रॉनिक संचार : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

धर्मेन्द्र कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

ग्रामीण विकास का अर्थ लोगों में आर्थिक सुधार तथा सामाजिक बदलाव दोनों ही माना जाता है। आधुनिक युग सूचना क्रान्ति का युग माना जाता है सूचना क्रान्ति ने हमारे जीवन के हर एक पहलू को प्रभावित किया है आमतौर पर तकनीकी पर इसकी छाप संचार के नये–नये विकसित हो रहे माध्यमों में मिल जाती है यह कहने की कोई जरूरत नही होगी कि इंटरनेट इस नये माध्यमों का केन्द्रबिन्दु है। सूचनाओं का आदान–प्रदान और पलक झपकते ही सूचना को देश एक के कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाना अब बेहद आसान हो गया है। अनुमानतः भारत देश में जून 2015 की आखिरी तक 35.4 करोड़ इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले उपभोक्ता हो गये है। किन्तु यह चित्र का केवल एक पहलू है चित्र का दूसरा पहलू यह है कि देश कि अधिकांश ग्रामीण आबादी की पहुँच से ऐसे माध्यम अभी दूर है। इस बारे में यह कहना गलत है कि भारत देश हमेशा से आधुनिक संचार तकनीकों और माध्यमों का लक्ष्य लोगों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तौर पर सशक्त बनाना तथा उसका विकास करना रहा है। आजादी से पहले भी प्रिंट तकनीक के प्रयोग में राष्ट्रवादी प्रेस की अवधारणा ही विद्यमान थी। स्वतंत्रता के बाद इस केन्द्रीय लक्ष्य को देश के नीति निर्माताओं ने भी अपने नजरों से दूर नहीं होने दिया क्योंकि दूर–दूर के क्षेत्रों और ग्रामीण जनसंख्या तक विकास योजनाओं को पहुँचाना ही आधुनिक इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का उद्देश्य होना चाहिए। भारत देश में इलेक्ट्रानिक संचार के विकास की स्थिति में अमूलचूक परिवर्तन हुए है। रेडियो के अलावा नगरीय क्षेत्रों का संचार माध्यम माना जाने वाला टी0वी0 की लोकप्रियता में भी अब ग्रामीण इलाकों/क्षेत्रों में बहुत वृद्धि हुई है। नेशनल सैम्पल सर्वेक्षण के आँकड़ों ने यह हमेशा दिखाया है कि भारत में ग्रामीण लोगों में सूचना को संकलित करने के लिए टी0वी0 जैसी आधुनिक संचार माध्यमों पर खर्च करने की इच्छा बढ़ी है। अनुमानतः भारत देश में वर्तमान समय में 1.1 करोड़ टी0वी0 सेट है जिसमें से लगभग आधे टी0वी0 सेट ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के पास है अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि नगरीय क्षेत्रों के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्र भी कदम से कदम मिला कर चल रहा है।

वर्तमान समय में मोबाईल के माध्यम से गाँव के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। मोबाईल क्रान्ति ने आम आदमी के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी बहुत परिवर्तन ला दिया है। वास्तव में मोबाईल हमारे सामाजिक – आर्थिक जीवन का प्रमुख हिस्सा बन गया है और इसने हमारे काम करने सोचने बातचीत करने तथा हमारे जीवन शैली में बहुत हद तक बदलाव किया है। अब तो मोबाईल के बिना जिन्दगी की कल्पना करना भी कठिन प्रतीत हो रहा है। आज का युग तकनीकी का युग है एक राष्ट्र के सामाजिक – आर्थिक विकास के लिए दूरसंचार मोबाईल सेवाओं को सम्पूर्ण जगत भर में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। भारत गाँवों का देश है यहाँ कि लगभग 68.64 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। कृषि प्रधान देश होने के कारण गाँव का शहर से सीधा सम्पर्क न होने के कारण विकास में बाधा उत्पन्न हो रहा है। लेकिन मोबाईल क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व को एक साथ मिला दिया है। आज हर योजना, सूचना, घटना, जानकारी, शासकीय नीतियों इत्यादि का सूचना सीधे मोबाइल के माध्यम से हर एक गाँव में हर एक व्यक्ति से लगभग जुड़ी हुई है। आज के समय में

शासकीय तथा अशासकीय सारे काम को सीधे मोबाईल के माध्यम से जोड़ा गया है। चाहें वह ग्रामीण क्षेत्र से जुड़ा हुआ क्यों न हो। मोबाईल के माध्यम से इंटरनेट, कम्प्यूटर, बैंक की सभी कार्यप्रणाली, किसानों से जुड़ी योजनाएँ, मेल, एस0एम0एस0,(SMS) आदि सभी कार्य मोबाईल के माध्यम से ही किये जा रहें है। शुरूआती दौर में दूरसंचार सेवाओं का प्रयोग केवल मुख्यतः सरकारी, व्यापारिक एवं उद्योगों के क्षेत्र में किया जाता था। स्वतंत्रता के बाद इस संचार के क्षेत्र में तेजी आई और दूरसंचार उपकरणों का निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र में भी किया जाने लगा और इसके बाद तो दूरसंचार सेवाओं का विस्तार सरकारी कार्यालयों, व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो गया।

इस समय ग्रामीण परिवेश में खेती सम्बन्धित जानकारी, मंडी के भाव इत्यादि की जानकारी के लिए दूरसंचार सेवाओं का प्रयोग किया जा रहा है। अब ग्रामीण क्षेत्र में भी लगभग हर एक घर में दूरदर्शन और मोबाईल फोन की सुविधा उपलब्ध है। देश के हर एक गाँव को दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ने की दिशा में लगातार कामयाबी मिल रही है इसका स्पष्ट छाप ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई देता है। देश के ग्रामीण क्षेत्र में मोबाईल एवं इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या लगभग 35 करोड़ के पार पहुँच गई है सेल्यूलर मोबाईल आपरेटरों के संगठन (सी0ओ0ए0आई0) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राहकों की संख्या 36.9 लाख से बढ़कर 35 करोड़ 1 लाख पर पहुँच गयी है। हम सभी लोग अपने बचपन से सुनते व पढ़ते आए है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। अर्थात भारत गाँवों का देश है, क्योंकि देश की लगभग 68.64 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। गाँवों के सम्पर्क की मूलभूत आवश्यकताएँ मसलन सड़क, बिजली, पानी जैसी आवश्यक सुविधाओं के साथ अब तो सब डिजिटल नेटवर्क की बातचीत करने लगे हैं। कृषक समाजों को डिजिटल सुविधाओं से लैस करने के लिए सरकार भी कदम से कदम मिलाकर चल रही है। वह कृषकों के लिए चाहे मोबाईल एप्प हो या फिर इंटरनेट के जरिए पंचायत स्तर तक कामकाजों को जोड़ना हो, किन्तु इसके बावजूद भी जब हम ग्रामीण सम्पर्क की बात करते है तो ऐसा लगता है कि अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी का अभाव है। किन्तु इस समस्या के निवारण के लिए सरकार द्वारा अनेकों प्रयास जारी है। भारतीय ग्रामीण विकास और जुड़ाव की बाते जब हम करते हैं, तब सर्वप्रथम हमारा ध्यान खेतों पर जाता है। जहाँ खिलखिलाती फसलों को समय पर सिंचाई की जरूरत होती है। किन्तु यह दुःख की बात है कि यहाँ किसानों के हाथ निराशा ही लगती है। हालांकि केन्द्र सरकार हर खेत तक सिंचाई की सुविधा पहुँचाने की लगातार योजना बना रही है। तथा डिजिटल नेटवर्क की सुविधाओं के माध्यम से किसानों को शिक्षित किया जा रहा है, ताकि किसान अपने–अपने खेतों में सिंचाई तथा बुआई को समय पर खेतों में प्रयोग करें जिससे पानी की प्रत्येक बूँद के बदले में अधिक पैदावार हो। कृषि उत्पादों को एक बाजार से दूसरे बाजार तक पहुँचाने, मंडी के अनेक शुल्क से बचाने तथा उचित मूल्य पर किसानों को कृषि के वस्तुओं को मुहैया कराने के लिए आनलाइन मंच पर राष्ट्रीय कृषि बाजार विकसित करने का एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया गया है। इसके लिए एक ई0 प्लेटफार्म तैयार किया गया है जो सितम्बर तक 250 से ज्यादा कृषि मंडियों तक पहुँच चुका है, तथा मार्च, 2018 तक कुल 585 मंडियों में ऐसी प्रणाली विकसित की जा चुकी है। ताकि किसान देश के किसी भी मंडी में अपनी फसल या पैदावार को उचित मूल्यों पर बेच सके।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने देश के हर गाँव में ऐसे सार्वजनिक और सामुदायिक सूचना केन्द्र स्थापित किया है, जहाँ कम्प्यूटर और इंटरनेट जैसी आधुनिक इलेक्ट्रानिक संचार माध्यम की सुविधाएँ उपलब्ध है, यहाँ रेलवे आरक्षण से लेकर किसानों की खेती के लिए मौसम तक की जानकारी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है। 21 जनवरी, 2004 को किसान कॉल सेन्टर की पहल की गयी थी जो कि एक सफल प्रयास रहा तथा इसके सुखद परिणाम भी सामने आये। देश

भर में फैले किसान कॉल सेन्टरों में किसान अब हेल्प लाइन न0 1800–180–1551 पर कॉल करके कृषि सम्बन्धित जानकारी मुफ्त में प्राप्त कर रहें हैं। इन सेन्टरों पर प्रतिदिन 15 हजार से अधिक किसानों के कॉल आते हैं जिसके द्वारा उन्हें उचित जानकारी दी जाती है तथा उनकी समस्याओं का समाधान आसानी से हो जाता है। इस वजह से किसानों के खेतों में फसलों की पैदावार अच्छी होने लगी और फसलों के उचित मूल्य भी मिलने लगे हैं।

ग्रामीण विकास का तात्पर्य है कि गाँवों का विकास या प्रगति आमतौर पर ग्रामीण विकास को सामुदायिक विकास के समान माना जाता है सामुदायिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास एक ऐसी योजना है जिसके द्वारा ग्रामीण समाज के सामाजिक आर्थिक जीवन को नए संसाधनो की खोज करके बदला जा सकता है।

भारत देश की आत्मा गाँवो की बसती है अपनी आबादी का 3/4 से अधिक की आबादी गाँवों मे निवास करती है गाँवों के जीवन की अपनी कुछ अलग ही विशेषताएं होती है यह विशेषताएँ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक इत्यादि क्षेत्रो मे विद्यमान है। भारत मे ग्रामीण विकास के लिए कृषि कार्य की स्थिति मे सुधार करना अति आवश्यक था सामाजिक–आर्थिक संरचना को बदलना चाहिए। किसानो को कृषि कार्य हेतु भूमि उपलब्ध करानी चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा मे सुधार करना चाहिए, कमजोर वर्गो को विशेष सुविधा उपलब्ध कराना। उपरोक्त लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए विकास योजनाओ के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्र के निचले स्तर के लोगो के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी पर जोर दिया गया था इसे देखते हुए 31 मार्च 1952 मे सामुदायिक परियोजना प्रशासन संगठन को सामुदायिक विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए योजना आयोग के तहत स्थापित किया गया था।

प्रो0 ए0 आर0 देसाई के शब्दो में, "समुदायिक विकास योजना एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजनाएँ ग्रामों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करने का प्रयत्न करती है।" इसका तात्पर्य है कि सामुदायिक विकास एक माध्यम है जिसके पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा निर्धारित ग्रामीण प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

रेना (R.N. Raina) का कथन है कि, "सामुदायिक विकास एक ऐसा सम्बन्धित कार्यक्रम है जो ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओ से सम्बन्धित है तथा धर्म, जाति, सामाजिक अथवा आर्थिक असमानताओं को बिना कोई महत्व दिये यह सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय पर लागू होता है।"

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम सभी वर्गो की एक प्रणाली है जिसके द्वारा ग्रामीण जीवन के सम्पूर्ण विकास के लिए प्रयास रत्न है। इस योजना मे जहाँ एक तरफ शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, लघु उद्योग के विकास, कृषि, संचार तथा समाज सुधार पर बल दिया जाता है, वही यह गाँवो के लोगो के विचारो, दृष्टिकोणो तथा रूचियों में भी ऐसा बदलाव लाना चाहती है जिससे ग्रामीण लोग अपना विकास खुद करने के लायक बन सके।

ग्रामीण की इस योजना को सामुदायिक विकास योजना का नाम दिया गया और 2 अक्टूबर 1952 को यह योजना 55 विकास खण्डों की स्थापना करके शुरू की गयी थी। कृषि को इस व्यापक कार्यक्रम का आधार बनाया गया। ग्रामीण विकास का शाब्दिक अर्थ समुदाय का विकास या प्रगति करना है आमतौर पर ग्रामीण विकास को सामुदायिक विकास का पर्याय माना जाता है योजना आयोग की रिपोर्ट मे समुदायिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक ऐसी योजना है जिसके द्वारा ग्रामीण समाज के सामाजिक और आर्थिक जीवन को नए साधनो की खोज करके बदला जा सके।

भारत सरकार ने इस योजना के कुछ उद्देश्य बताये है

- गाँव में जिम्मेदार तथा कुशल नेतृत्व का विकास

- ग्रामीण लोगो के मानसिक दृष्टिकोण में बदलाव
- आत्मनिर्भरता एव प्रगति
- ग्रामीण समुदाय के स्वस्थ्य की सुरक्षा करना
- ग्रामीण उद्योगो में कृषि और विकास का आधुनिकीकरण करना
- ग्रामीण युवाओं के व्यक्तित्व का विकास
- इन सभी उद्देश्यो को स्पष्ट करते हुए यदि एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण समुदाय की सोई हुई क्रान्तिकारी शक्ति को जगाना है।

प्रो0 एस.सी. दूबे ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम के निम्न उद्देश्य बताएँ है–

1. देश के कृषि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि का प्रबन्ध करना और संदेश वाहन की व्यवस्था, ग्रामीण स्वास्थ्य और स्वच्छता तथा ग्रामीण शिक्षा मे उन्नति करना।

2. गाँव के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को परिवर्तित करने के उद्देश्य से एक संक्षेप में सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रारम्भ व निर्देशित करना। इस प्रकार संक्षेप मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्वयं गांव वालो के सहयोग व प्रयत्नो और सरकार की सहायता से गाँवो का सम्पूर्ण विकास करने का उद्देश्य लेकर सरकार के निर्देशो मे गाँव वालो द्वारा ही संचालित की जाती है।

सामुदायिक विकास योजना मे प्रमुख कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये है वे निम्नलिखित है–

1. कृषि विकास
2. पशुपालन की व्यवस्था
3. सिंचाई की व्यवस्था
4. सहकारिता का विकास
5. औद्योगिक विकास
6. सामाजिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा का विकास
7. स्वस्थ्य सुरक्षा और सफाई तथा चिकित्सकीय सुविधाओं का विकास।
8. रोजगार
9. आवास
10. प्रशिक्षण
11. यातायात, संदेशवाहक के साधन का विकास
12. परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम
13. समाजकल्याण कार्यक्रम।

उक्त कार्यक्रमो के अतिरिक्त निर्धनता उन्मूलन एव बेरोजगारी की समस्या के भी विभिन्न कार्यक्रमों को भी ग्रामीण सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से क्रियान्वित किया जाता रहा है। इसका लाभ ग्रामीण समुदाय के सभी वर्गो को देने का प्रयास सरकार द्वारा किया जाता रहा है।

वर्तमान भारतीय विस्तार प्रणाली कई दबावो में है जहाँ विस्तार कार्यकर्ताओं को न केवल विस्तार आबादी को पूरा करना है वरन् प्रशासनिक, चुनाव, इनपुट आपूर्ति और अन्य कामो को भी पूरा करना है इन स्थितियो में विस्तार कार्यकर्ता और किसान सभी समस्याओं का समाधान नही कर पा रहे है इसलिए इस दिशा मे ग्रामीण जनसंख्या की सेवा करने के लिए जनसंचार माध्यमो की दक्षता का दोहन किया जा सकता है संचार प्रणालियों मे विद्युतीकरण एव मशीनीकरण ने सूचना को बहुत तेजी से और बार–बार एक्सेस करने का अवसर प्रदान किया है। पहुँच से बाहर पहुचने के लिए

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आधुनिक इलेक्ट्रानिक सामग्री और व्यवस्था प्रस्तुत किया गया है। भारत सरकार ने ग्रामीण आबादी के लिए इन इलेक्ट्रानिक उपकरणो की आवश्यकता एव महत्व को महसूस किया है इसलिए साइबर विस्तार, डिजिटल इंटरैक्टिव, दूरस्थ शिक्षा, आनलाइन नेटवर्क, मल्टीमीडिया के बड़े पैमाने पर कार्यक्रम इंटरनेट और मुफ्त आनलाइन टेलीफोन आदि किसानो के लिए शुरू किए गये है वर्तमान समय मे कुछ विस्तार प्रौद्योगिकी प्रणालियों और दृष्टिकोणों का प्रयोग किया जा रहा है। जैसे किसान काल सेन्टर (1551) साइबर एक्सटेंशन, कम्प्यूटर–इंटरनेट कनेक्टविटी इत्यादि। कृषि कार्य हेतु संचार न केवल किसानो को सूचित करते है बल्कि उनके बीच जागरूकता भी पैदा करते है तथा खेती करने के तरीके को भी नये–नये आयाम सुझाते है ग्रामीण विस्तार कार्यकर्ता किसानो को नई प्रौद्योगिकी के विषय मे जानकारी देते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. पाठक, धीरेन्द्र, लाल, मनोहर : (2016), मीडिया एवं समाज, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशेन 22/4735 प्रकाश दीप बिल्डिंग, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
2. कश्यप, आलोक कुमार : (2012), ग्रामीण जन चेतना में संचार माध्यम, ओमेगा पब्लिकेशन 4378/4 बी0जी0 4 जे0एस0डी0 हाउस गली मुरारीलाल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. भनावत, संजीव : (2009), इलेक्ट्रानिक मीडिया, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्लाट नं0 1 झालाना सांस्थनिक क्षेत्र, जयपुर–302004
4. सरदाना, चन्द्रकांत, मेहता, कृ0शि0, : (2004), जनसंचार कल, आज और कल तान गंगा, 205सीव, चावडी बाजार, दिल्ली–110006
5. गुप्ता, बृजमोहन : (1992), जसंचार विविध आयाम, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा0 लिमिटेड 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002
6. पचौरी, सुधीर : (1994), दूरदर्शन, दशा और दिशा प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली।
7. मेहता, आलोक : (2006), भारत में पत्रकारिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, ए5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली– 110016
8. कुरूक्षेत्र : वर्ष 62अंक, फरवरी, 2016
9. कुरूक्षेत्र : वर्ष 65 अंक 12, फरवरी, 2019
10. ठाकुर, विजय : (2005), चमत्कारी प्रगति का संचार : देर संचार योजना मई,
11. पंकज, विष्णु : (1991), भारतीय पत्रकारिता और जनसंचार, विवेक पब्लिकेशन हाउस, जयपुर,
12. कोठारी, गुलाब : (1995), पत्रकारिता जनसंचार और विज्ञापन, युनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर,
13- Dharamvir (1990) : Poltical Behavior and mass India: the Indian Experince,
14- Dube, S.C. (1964) : Communication, Innovation and Plamed change in India. International devolopment Institution Honolulu, east and west center press,
15- Sharma, S.C. (1990) : Sociological approch to Communication and Society edited by Kamlesh Mahajan classical new Delhi,

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

ग्रामीण समाज की महिलाओं में स्वास्थ्य शिक्षा एवं उपचार सम्बन्धी चेतना : (धन्नेपुर ग्राम सभा का अध्ययन)

डॉ0 संदीप कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग)
बयालसी पी0जी0 कालेज, जलालपुर, जौनपुर

सारांशः–

ग्रामीण समाज की महिलाओं में स्वास्थ्य शिक्षा एवं उपचार सम्बन्धी चेतना जानने के लिए धन्नेपुर ग्रामसभा का अध्ययन सुविधापूर्ण निदर्शन पद्धति के द्वारा किया गया है, धन्नेपुर एक मध्यम आकार का गाँव है, जो कि जौनपुर जिले के सदर तहसील के अन्तर्गत आता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ 345 परिवार रहते हैं इस ग्राम सभा की जनसंख्या लगभग 1910 है। जिसमें 1053 पुरूष एवं 857 महिलाएं है। आँकड़ों का संकलन 40 परिवारों की महिलाओं से प्रत्यक्ष साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। अध्ययन से पता चला कि सर्वाधिक बीमार होने की स्थिति में ग्रामीण महिलाएं इलाज के लिए अस्तपाल जाती है। अतः वे अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही बरतती हैं।

शब्द कुंजीः– महिलाएं, स्वास्थ्य, उपचार, पोषण, शिक्षा।

किसी भी सामाजिक संरचना में दो वर्ग होते है, महिला और पुरूष। भारत एक पुरूष प्रधान देश है। अतः यहाँ समाज में महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा निम्न दर्जा प्राप्त है। अतः उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य पोषण व देखरेख जैसी आधारभूत सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता है। इसका विपरीत प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। महिलाओं की स्वास्थ्य को तभी अहमियत दी जाती है जब वह गर्भवती होती है। इसलिए महिलाओं को उनके स्वास्थ्य के प्रति सचेत करने के लिए स्वास्थ्य शिक्षा पर विचार करना आवश्यक है। स्वास्थ्य शिक्षा से तात्पर्य लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण समाज की महिलाओं में स्वास्थ्य एवं उपचार सम्बन्धी चेतना के विषय में जानने का प्रयास किया गया है।

हमारे समाज में आज भी अनेको महिलायें अपने स्वास्थ्य को लेकर उपेक्षा की शिकार हैं। स्वास्थ्य केन्द्रों का उपलब्ध न होना भी स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल परिस्थिति पैदा करता है। महिलाओं को बर्दाश्त (सहन) करने की शिक्षा घर परिवार के सदस्यों के द्वारा ही दी जाती है। अतः महिलायें डाक्टर के पास तभी जाती है जब स्थिति बर्दाश्त के बाहर हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व में स्वास्थ्य के प्रति सजगता और जागृति के उद्देश्य से 7 अप्रैल को विश्व स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है लेकिन स्वास्थ्य दिवस की सार्थकता केवल तभी है जब समाज की केन्द्रीय इकाई महिला और बच्चे स्वस्थ हों। महिलाओं में मुख्य रूप से निम्नलिखित बिमारिया पाई जाती हैं।

(1) बुखार और सामान्य इन्फेक्शन
(2) श्वास सम्बन्धी संक्रमण
(3) मोतियाबिन्द
(4) खून की कमी
(5) गर्भावस्था की समस्यायें
(6) कुपोषण
(7) पीठ में दर्द
(8) जनन सम्बधी समस्यायें

(9) उक्त रक्तचाप

इन बिमारियों से होने वाले खतरों के बारे में जानते हुये भी अपने इलाज में लापरवाही बरतने वाली औरतों का प्रतिशत सबसे ज्यादा है। यह तथ्य पूर्ण रूप से सत्य है कि महिलायें पूरे समाज तथा पूरे परिवार का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ हैं, अतः उन्हे पूरी तरह से स्वस्थ रखना समाज की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है।

साहित्य समीक्षा

हमारे देश में महिलाओं के स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक अध्ययन हुये हैं परन्तु महिलाओं में स्वास्थ्य शिक्षा से सम्बन्धित शोध कार्यों की अत्यन्त कमी है। इस विषय पर कुछ प्रमुख अध्ययन निम्न है।

''मीरा मिश्र''– ने अपने अध्ययन में बताया कि ज्यादातर महिलाओं का वनज एवं लम्बाई कम होती है और उनममें खून की कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप वे कमजोर बच्चों को जन्म देती हैं और स्वयं भी कुपोषण का शिकार हो जाती हैं।

''शुभांकर बनर्जी''– ने अपने अध्ययन में बताया कि सामाजिक विकास के बावजूद आज भी ऐसी करोड़ों महिलायें हैं जो अपनी अनेक सामाजिक आर्थिक मानसिक असमर्थता के कारण मजबूर होकर कुपोषित हैं।

''ए0एल0 श्रीवास्तव''– ने बताया कि विभिन्न प्रकार के रोग वातावरण से व्यक्ति अथवा स्त्री को मिलते हैं और नारी उपचार एवं निदान में समाज में मनोवैज्ञानिक कारकों को विशेष महत्व प्रदान किया जाने लगा है।

''मंजूलता छिल्लर''– ने बताया कि आजादी के इतने वर्ष बाद भी महिलाओं के प्रति समाज में ज्यादा बदलाव नहीं आया है और आज भी महिलाओं के स्वास्थ्य और सेहत को लेकर लापरवाही बरती जाती है।

अध्ययन का उद्देश्यः–

(1) ग्रामीण महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता लाना

(2) ग्रामीण महिलाओं में स्वयं के प्रति उपचारात्मक दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

शोध प्रविधिः–

अध्ययन के लिए हमने जौनपुर जनपद के सदर तहसील के अन्तर्गत आने वाले एक ग्राम सभा धन्नेपुर का चुनाव सुविधापूर्ण निदर्शन पद्धति के द्वारा किया है। प्रस्तुत अध्ययन में 50 ग्रामीण महिलाओं को शामिल किया गया है जिनकी आयु क्रमशः 20 वर्ष से 50 वर्ष तक है, आकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची व अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा द्वितीयक तथ्यों के लिए शोध पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तक व इण्टरनेट का प्रयोग किया गया है।

सारणी संख्या–1.1

उत्तरदात्रियों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता

क्रमांक	स्वास्थ्य के प्रतिजागरूकता	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	20	40
2	न्हीं	30	60
	योग–	**50**	**100**

सारणी संख्या–1.1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 60 प्रतिशत महिलाएं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं हैं बल्कि 40 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जो अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं, इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति कम जागरूक हैं।

सारणी संख्या : 1.2

बीमार पड़ने पर सूचनादात्रियों द्वारा किये गये उपचार का प्रकार

क्रमांक	बीमार पड़ने पर किये गये उपचार का प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
1	घरेलू उपचार	10	20
2	डाक्टर को बताकर घर पर दवा मंगवा लेती है।	20	40
3	अस्पताल जाती है।	15	30
4	अन्य उपाय	5	10
	योग–	**50**	**100**

सारणी संख्या–1.2 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं बीमार पड़ने पर घर पर ही दवा मंगवा लेती हैं। डाक्टर को बताकर, जबकि 20 प्रतिशत महिलाएं घर पर ही पहले अपना इलाज करती है घरेलू नुस्खों से और 30 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं, जो बीमार पड़ने पर अस्पताल जाती हैं और 10 प्रतिशत महिलाएं अन्य उपायों का सहारा लेती हैं। अतः उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ज्यादातर ग्रामीण महिलाएं बीमार पड़ने पर घर पर ही परिवार के किसी सदस्य से दवा मंगवा लेती हैं।

सारणी संख्या : 1.3

उत्तरदात्रियों में बीमारी के कारण के प्रति अभिवृद्धि

क्रमांक	बीमारी का कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	काम की अधिकता	25	50
2	असंतुलित खान–पान	15	30
3	पोषक तत्वों की कमी	05	10
4	अन्य कारण	05	10
	योग–	**50**	**100**

सारणी संख्याः 1.3 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अधिकतम 50 प्रतिशत महिला उत्तरदात्रियां बीमारी का कारण काम की अधिकता को मानती हैं। 30 प्रतिशत असंतुलित खान–पान को मानती हैं तथा 10 प्रतिशत महिलाएं अन्य कारणों को मानती हैं। इस प्रकार ज्यादातर महिलाओं की बीमारी का कारण काम की अधिकता है।

सारणी संख्या : 1.4

उत्तरदात्रियों में इलाज के प्रति अभिवृत्ति

क्रमांक	इलाज के प्रति अभिवृत्ति	आवृत्ति	प्रतिशत
1	बच्चों से हाथ पैर व कमर दबवाती हैं।	25	50
2	डाक्टर के पास जाती हैं।	15	30

3	सिंकाई करती हैं।	05	10
4	अन्य उपाय	05	10
	योग–	**50**	**100**

सारणी संख्याः 1.4 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अधिकांश 50 प्रतिशत महिलाएं सिर दर्द, कमर दर्द एवं बीमार होने पर बच्चों से हाथ, पैर, कमर दबवाती हैं, 30 प्रतिशत महिलाएं इलाज के लिए डाक्टर के पास जाती हैं, 10 प्रतिशत महिलाएं सिंकाई करवाती हैं एवं 10 प्रतिशत महिलाएं अन्य उपायों से अपना इलाज करवाती हैं। इस प्रकार अधिकांश महिलाएं घर पर ही अपना इलाज करती हैं।

निष्कर्षः–

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि धन्नेपुर ग्राम सभा की महिलाएं स्वास्थ्य के प्रति कम जागरूक हैं, वे अपने स्वास्थ्य, पोषण एवं देखभाल के प्रति सक्रिय नहीं हैं। इसका मूल कारण अज्ञानता है जो उन्हें आज भी रूढ़िवादी परम्पराओं से बाहर निकलने नहीं देता। ग्रामीण क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव भी इसका कारण हो सकता है और महिला डाक्टर का अभाव भी इनका अस्पताल न जाने का कारण हो सकता है, ये लम्बे समय तक किसी बड़ी बिमारी का इलाज भी नहीं करवा पाती इसलिए दिन–प्रतिदिन इनकी कार्य क्षमता कम होती जाती है।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग नहीं रहती हैं। ये काम की अधिकता के कारण अस्वस्थ रहती हैं तथा अधिक बीमार होने पर ही अस्पताल जाती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन बीजिंग, 1995, पृ. 84
2. छिल्लर मंजूलता, 'भारतीय नारी : शोषण के बदलते आयाम', वर्ष 2010
3. बनर्जी, शुभांकर, महिला कुपोषण : एक राष्ट्रीय समस्या, कुरूक्षेत्र, वर्ष 61, अंक 2, दिसम्बर 2005, पृ. 36–38
4. बरेली, उ.प्र., समाज विज्ञान संस्थान, राधाकमल मुखर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 19, अंक–2, जुलाई–दिसम्बर, 2017
5. मिश्रा, मीरा, कुपोषण की रोकथाम : महिला स्वास्थ्य की भूमिका, योजना । वर्ष 60, अंक–2, फरवरी 2016, न्यू दिल्ली, पृ. 40–42
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन, द वर्ल्ड हैल्थ रिपोर्ट, 2016 जिनेवा, डब्लू.एच.ओ., 2016
7. श्रीवास्तव, अखिलेश्वर लाल, चिकित्सा सामाजिक विज्ञान की रूपरेखा, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 **ISSN : 2394-2878**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

सोशल नेटवर्किंग साइट्स का युवाओं पर प्रभाव

डॉ0 ज्योती गप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
मदनमोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कालाकांकर, प्रतापगढ़

सारांश–

आज के संदर्भ में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का सकारात्मक पहलू समाज एवं देश के विकास के ग्राफ को ऊँचाइयों तक पहुँचाने में सहायक है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ही वह माध्यम है जो घटना की तह में जाकर उसकी वास्तविकता एवं सच्चाइयों से समाज को रूबरू कराता है। एक निरीह एवं निःसहाय व्यक्ति की आवाज को विश्व पटल पर रखने में सक्षम साबित होती है। आज के दौर में सोशल नेटवर्किंग साइट्स जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन चुका है जिसके सहारे सूचनाएं प्रदान करना, मनोरंजन करना और शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयामों की जानकारी उपलबध करना आसान हो गया है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे संसार को जोड़े रखता है। इसके माध्यम से द्रुत गति से सूचनाओं का आदान–प्रदान करना आसान हो गया है। इस पत्र में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का युवाओं पर प्रभाव का अध्ययन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य–शब्दः *सोशल नेटवर्किंग साइट्स; समाज; युवा वर्ग; प्रभाव।*

परिचय

वर्तमान में सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक ऐसा माध्यम है जिसकी पहुँच का दायरा विश्वव्यापी है। आज न्यूज सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर ब्रेक होकर समाचार चैनलों एव पत्र–पत्रिकाओं की सुर्खियां बन रही है। सेल्फी अपलोड करने की होड़ आम से लेकर खास सभी में लगी हुई है। कॉरपोरेट जगत से लेकर सार्वजनिक संस्थान अपने प्रचार–प्रसार के लिए सोशल नेटवर्किंग साइट्स का प्रयोग कर रहे हैं।सोशल नेटवर्किंग साइट्स मार्केटिंग ने बाजार को एक क्लिक तक सीमित कर दिया है। जहाँ एक तरफ सोशल नेटवर्किंग साइट्स की पहुँच एवं प्रायोगिक क्षमताएँ लोगों की जीवनशैली को आसान बना रही हैं वहीं बढ़ता साइबर क्राइम लोगों के लिए तमाम मुसीबतें भी पैदा कर रहा है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऑनलाइन मीडिया का अभिन्न अंग है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स 2.0 वेब तकनीक पर आधारित ऑनलाइन वेबसाइट के जरिए लोगों को जुड़ने का मंच प्रदान करती है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स टेक्स्ट, ऑडियो और वीडियो तीनों ही प्रकार की सामग्री को प्रेषित करती है। इन साइट्स से जुड़ने के लिए सोशल नेटवर्किंग साइट्सपर एकाउंट बनाना पड़ता है। एकाउंट क्रिएट करने के लिए किसी भी ई–मेल सर्विस देने वाली वेबसाइट जैसे जीमेल, याहू आदि का ई–मेल एकाउंट होना चाहिए, जिसे सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर रजिस्टर कर सोशल नेटवर्किंग साइट्स एकाउंट बना सकते हैं। आज विश्व की हजारों किलोमीटर में फैली आबादी एक क्लिक से एक–दूसरे के आमने–सामने आ जाती है और व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों ही प्रकार से अपने विचारों को व्यक्त कर पाती है। सूचना प्रौद्योगिकी ने सभी सीमाएँ लांघ कर अपने को विश्व पटल पर सर्वोत्तम् स्थान प्रदान कर दिया है। वर्तमान में समाज के छोटे से छोटे मुद्दों को विश्व स्तर का मंच प्राप्त है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने लोगों की दिनचर्या में अपना स्थान बना लिया है, लोग इसे जीवन का अहम हिस्सा मानने लगे हैं। यह उन्हें लोगों से जोड़ कर विश्व स्तर पर पहचान देती है। यह माध्यम आज के युग का सबसे लोकप्रिय माध्यम बनता जा रहा है। लोग सोशल नेटवर्किंग साइट्स से जुड़ने के लिए ही इंटरनेट की दुनिया में प्रवेश करते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि लोगों का जीवन सोशल नेटवर्किंग साइट्स के बिना अधूरा है। सोशल नेटवर्किंग प्रदान करने में फेसबुक, ब्हाटसएप, गुगल, ट्वीटर, लिंक्ड–इन, ऑरकुट तथा यू–ट्यूब आदि नेटवर्किंग साइट्स मौजूद हैं।

मानव समाज की हमेशा से ही अपनी बात को एक–दूसरे तक पहुँचाने की लालसा रही है। साथ ही समाज में सूचना के प्रवाह में माध्यमों की महती भूमिका रही है। वर्तमान में सोशल नेटवर्किंग साइट्स व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार की सूचना संप्रेषण का लोकप्रिय माध्यम माना जाता है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स की बढ़ती लोकप्रियता एवं पहुँच समाज में शिक्षा, सूचना, स्वास्थ्य एवं जागरूकता के प्रसार में अहम भूमिका का निर्वहन कर रहा है। डिजिटल इंडिया, ई–क्रांति जैसी योजनाएँग्रामीण अंचलों में इंटरनेट की सुविधा मुहैया कराने के लिए प्रतिबद्धता से कार्य कर रही हैं, साथ ही साथ सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए गवर्नेंस की पहल लोगों को एक ही स्थान पर शॉपिंग, बैंकिंग, टिकटिंग, लर्निंग एवं सूचना हस्तांतरण की सुविधा मुहैया करा रही है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया है। इसके बिना अब कोई नहीं रह सकता।

आज अधिकांश घर के बच्चे एवं युवा वर्ग घंटों अपना समय सोशल नेटवर्किंग साइट्सपर बिताते हैं। कुछ तो इसका सदुपयोग करते हैं परन्तु कुछ इसका दुरूपयोग भी करते हैं। इस पर सिनेमा एवं अश्लील चित्र आदि देखकर अपना समय नष्ट करते हैं। लड़कियाँ एवं महिलाएँ भी इसके गिरफ्त में आ रही है। पारिवारिक संरचना, नातेदार सब सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर सिमटते जा रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने रोजगार में अभिवृद्धि की है। साइबर कैफे कम्प्यूटर सेंटर एवं मोबाइल दुकान खोलकर लोग रोजगार तो प्राप्त कर ही रहे हैं साथ ही घर बैठे भी सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से अपना व्यवसाय चला रहे हैं।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। जाने–माने जनसंचारशास्त्री विद्यावाचस्पति ने कहा है कि पत्रकारिता पांचवा वेद है। अर्थात समाज के समावेशी विकास में जनमाध्यमों की सक्रियता महती भूमिका रखती है। समाज के विकास में सूचना प्रसार मुख्य जरूरत है। लोकत्रांत्रिक समाज की मुख्य कड़ी जनमाध्यम हैं। लोकतंत्र में जनता के हितों की परिचायक मीडिया होती है। साथ ही साथ सरकार की बात को जनमानस तक एवं जनमानस की बात सरकार तक पहुँचाने का कार्य मीडिया करती है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स को जनचेतना मंच के नाम से संबोधित किया जाता है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक ऐसा माध्यम है जहां जनता स्वयं अपने विचार बिना किसी रोक–टोक के विश्व के किसी भी कोने में व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से प्रेषित कर सकती हैं।सोशल नेटवर्किंग साइट्स की वैश्विक ग्राम की अवधारणा ने इसे वर्तमान में सबसे लोकप्रिय माध्यम बना दिया है। भ्रष्टाचार के विरोध में अन्ना हजारे का शंखनाद हो या चीन जैसे देश में अभिव्यक्ति की आवाज को आयाम देना रहा हो सभी इसके उत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है। अरब में सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए जैसमीन रेवोल्यूशन जैसे उदाहरण हों या भारतीय रेल में ट्वीटर के जरिए मदद की गुहार हो, सभी समाज को एकजुट करने में सोशल नेटवर्किंग साइट्स की भूमिका को प्रदर्शित करते हैं। आज बहुत से विश्वविद्यालय सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए फ्री ऑनलाइन रिसोर्सेज विकसित कर रहे हैं। साथ ही विभिन्न वेबसाइट्स ऑनलाइन ट्यूटोरियल चला रही है जिससे जुड़कर लोग सीख पा रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म मुहैया करा रहा है जिसके जरिए लोग अपने व्यवसाय को विश्व स्तर पर पहचान दिला पा रहे हैं। कॉर्पोरेट कम्युनिकेशन में सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने बड़े बदलाव किए हैं। आज कॉर्पोरेट हाउसेस मीटिंग के लिए वीडियो कांफ्रेंसिंग एवं पत्र व्यवहार के लिए ई–मेल का प्रयोग कर रहे हैं। देश की मुख्य धरोहर मानी जाने वाली कृषि के विकास के लिए सरकार द्वारा सोशल नेटवर्किंग साइट्स का प्रयोग किया जा रहा है। इस क्रम में सरकार द्वारा कई ऑनलाइन पोर्टल शुरू किए गए हैं, जिनके द्वारा कृषि से संबन्धित विभिन्न जानकारियों को साझा किया जा रहा है। साथ ही साथ अनाज के अपडेट बाजार भावों को किसान को मुहैया करने के लिए मोबाइल एप भी विकसित किया गया है। धनुष का कोलावेरी डी हो या दामिनी को इंसाफ दिलाने की मुहिम बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जो सोशल नेटवर्किंग साइट्स के समाज के विकास में सकारात्मक भूमिका को उजागर करते हैं।

प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं। ऐसे ही सोशल नेटवर्किंग साइट्स के बहुत से सकारात्मक प्रभाव हैं तो नकारात्मक प्रभाव भी नजर में आए हैं।सोशल नेटवर्किंग साइट्स में आतंकवाद एक बड़ी समस्या है। एक रिपोर्ट के मुताबिक आईएस आतंकी संगठन सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए दुनिया भर से 30 हजार लड़ाकों की भर्ती कर चुका है। इसके अलावायदि बात करें तो अश्लील सामग्री भी सोशल नेटवर्किंग साइट्स के लिए एक बड़ी चुनौती है। जो कि एक बड़े बिजनेस में तब्दील हो रहा है। भारत में वयस्क फिल्म देखने की उम्र सीमा 18 वर्ष है, लेकिन सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से किशोर एवं बच्चे भी वयस्क फिल्में आसानी से देख रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए अफवाहों को फैलाना आम सा हो गया है। असम की हिंसा हो या मुजफ्फरनगर दंगे, अफवाहें सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए ही फैली। इस तरह के कई उदाहरण हैं जो सोशल नेटवर्किंग साइट्स के समाज पर नकारात्मक उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं। स्पष्ट है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक ऐसा माध्यम है जिसने आम नागरिक को अपने विचार व्यक्त करने का आसान मंच प्रदान किया है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स की इस आजादी ने जहां एक तरफ जन चेतना जाग्रत की है वहीं कुछ समाज विरोधी ताकतों ने इसका गलत इस्तेमाल भी किया है।सोशल नेटवर्किंग साइट्स के सकारात्मक पहलुओं को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है तो इसके जरिए बढ़ रहे साइबर क्राइम से भी इंकार नहीं किया जा सकता है।

आज हमें जरूरत है सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रयोग के तरीके के प्रति जागरूकता फैलाने की, जिससे आंदोलनों को स्वर देने वाले मंच, आतंकवाद, अश्लीलता एवं धोखा–धड़ी जैसे तमाम नकारात्मक पहलुओ को नियंत्रित किया जा सके। वर्तमान समय मेंसोशल नेटवर्किंग साइट्स के रूप में आम आदमी को ऐसा तकनीक मिल गया है जिसके जरिये वह अपनी बात एक बड़ी आबादी तक सुगमतापूर्वक पहुंचा सकता है। इसे सोशल नेटवर्किंग साइट्स की लोकप्रियता ही कहा जाए कि आज आम आदमी से लेकर खास आदमी भी इससे जुड़ा हुआ है। गौरतलब है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स का यह प्लेटफार्म न सिर्फ व्यक्तिगत जानकारियों के लिए ही प्रयोग में लाए जाते हैं बल्कि राजनीतिक और सामाजिक मामलों में भी इनका प्रयोग हो रहा है। सशक्त लोकपाल बिल की मांग कई दशकों से चली आ रही थी, लेकिन अन्ना हजारे के नेतृत्व में जिस तरह से भारत में इसकी मांग ने जोर पकड़ी और उसमें लोगों का जनसमर्थन मिला, वह केवल सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से ही संभव हुआ। 16वीं लोकसभा चुनाव के दौरान भी हमने देखा कि किस तरह विभिन्न राजनीतिक पार्टियों ने सोशल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग किया, परन्तु जिस तरह श्री नरेन्द्र मोदी जी की अगुआई में भाजपा ने सोशल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग किया और जिस तरह भाजपा के खाते में बम्पर जीत आई, वह विस्मयकारी थी। मोदी जी ने फेसबुक, ट्विटर और यू–ट्यूब के जरिए जिस तरह लोकप्रियता हासिल की, वह एक नया इतिहास बना।

वर्तमान युग को सोशल नेटवर्किंग साइट्सका दौर कह सकते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्समें स्वयं की सक्रिय भागीदारी होती है जिससे प्रयोक्ता अधिक अपनापन महसूस करता है वह खुलकर अपनी बात रख सकता है तथा दूसरों की प्रतिक्रियाएँ जानना चाहता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सकी ही देन है कि फेसबुक, ऑरकुट, ब्हाटस ऐप आदि को विश्व का सर्वाधिक लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइट कहा जाता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सद्वारा हम अपने सम्पर्कों का दायरा बढ़ाते हुए अधिक से अधिक लोगों तक अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक तरह की वेबसाइट्स हैं जिससे जुड़कर हम इस साइट पर पहले से जुड़े अन्य लोगों से भी जुड़ सकते हैं। इन लोगों में हमारे वर्तमान और कई बरसों पहले पिछड़े हुए दोस्त तथा हजारों किमी दूर रह रहे हमारे परिजन तथा मित्र भी हो सकते हैं। इन साइटों पर जुड़कर हम बिना किसी शुल्क के चाहे जितनी देर तक विचार विमर्श कर सकते हैं। यही नहीं हम एक दूसरे के फोटो और विडियों भी देख सकते हैं। विडियो कॉल के जरिये हम दूर रहकर भी आमने सामने बात कर सकते हैं। अन्य किसी माध्यम की अपेक्षा ये सस्ते तथा सुलभ होते हैं। इसलिए सोशल नेटवर्किंग साइट्सकाफी लोकप्रिय होती जा रही है।[1]

सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक अपरम्परागत मीडिया है। यह एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसमें इंटरनेट के माध्यम से पहुँच बना सकते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे संसार को जोड़े रखता है। यह संचार का एक बहुत अच्छा माध्यम है। यह द्रुत गति से सूचनाओं के आदान–प्रदान करने, जिसमें हर क्षेत्र की खबरें होती हैं, को समाहित किए होता है।

सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक तरह से दुनिया के विभिन्न कोनों में बैठे उन लोगों से संवाद कर सकते हैं जिनके पास इंटरनेट की सुविधा है। इसके जरिए ऐसा औजार पूरी दुनिया के लोगों के हाथ लगा है, जिसके जरिए वे न सिर्फ अपनी बातों को दुनिया के सामने रखते हैं, बल्कि वे दूसरी बातों सहित दुनिया की तमाम घटनाओं से अवगत भी होते हैं। यहाँ तक कि सेल्फी सहित तमाम घटनाओं की तस्वीरें भी लोगों के साथ शेयर करते हैं। इतना ही नहीं, इसके जरिए यूजर हजारों लोगों तक अपनी बात महज एक क्लिक की सहायता से पहुँचा सकता है। अब तो सोशल नेटवर्किंग साइट्ससामान्य संपर्क, संवाद या मनोरंजन से इतर नौकरी आदि ढूंढ़ने, उत्पादों या लेखन के प्रचार–प्रसार में भी सहायता करता है।[2]

पिछले दो दशकों से सोशल नेटवर्किंग साइट्सने हमारी जीवन शैली को बदलकर रख दिया है और हमारी जरूरतें, कार्यप्रणालियाँ, अभिरूचियाँ और यहाँ तक कि हमारे सामाजिक मेल–मिलाप और संबंधों का सूत्रधार भी किसी हद तक सोशल नेटवर्किंग साइट्सही है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सके ताने–बाने को रचने में कम्प्यूटर तथा मोबाइल की भूमिका आज किस हद तक है, इसे इस बात से जाना जा सकता है किघर बैठे लोग दुनिया भर के अनजान और अपरिचित लोगों से संबंध बना रहे हैं। ऐसे लोगों से भी गहरी छन रही है, अंतरंग संवाद हो रहे हैं, जिनसे आपकी वास्तविक जीवन में अभी मुलाकात नहीं हुई है। इतना ही नहीं, यूजर अपने स्कूल और कॉलेज के उन पुराने दोस्तों को भी अचानक खोज निकाल रहे हैं, जो आपके साथ पढ़े, बड़े हुए और धीरे–धीरे दुनियाँ की भीड़ में कहीं खो गए।

दरअसल, इंटरनेट पर आधारित संबंध–सूत्रों की यह अवधारणा यानी सोशल नेटवर्किंग साइट्सको संवाद मंचों के तौर पर माना जा सकता है, जहाँ तमाम ऐसे लोग जिन्होंने वास्तविक रूप से अभी एक दूसरे को देखा भी नहीं है, एक दूसरे से बखूबी परिचित हो चले हैं। आपसी सुख–दुख, पढ़ाई–लिखाई, मौज–मस्ती, काम–धंधे की बातों सहित सपनों की भी बातें होती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह स्वयं को अधिक से अधिक लोकप्रिय दिखाने का शौक रखता है। व्यक्ति अपने किसी विचार पर तत्काल बहुत से लोगों की प्रतिक्रियाएँ जानना चाहता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स में भी ऐसे टू–वे–कम्यूनिकेशन की अपेक्षा की जाती है। ये साइटें तत्काल प्रतिक्रिया और तारीफें दिलाकर मनुष्य के इस मनोविज्ञान की पूर्ति करती हैं। दुनिया में दो तरह के संस्कृतिकरण हैं –
1. वर्चुअल 2. फिजीकल। सोशल नेटवर्किंग साइट्सइसी वर्चुअल सिविलाइजेशन का रूप है।

सोशल नेटवर्किंग साइट्स सूचना व संचार का सशक्त माध्यम है जिसमें लोग अपनी बात निःसंकोच कह पाते हैं। यहीं से सोशल नेटवर्किंग साइट्सका स्वरूप विकसित हुआ है। इसके कई प्रकार हैं जैसे – इंटरनेट फोरम, वेबलॉग, सामाजिक ब्लॉग, माइक्रो ब्लागिंग, विकीज, सोशल नेटवर्क, फोटोग्राम, चित्र, चलचित्र आदि। सोशल नेटवर्किंग साइट्सके लिए कई संचार प्रौद्योगिकी उपलब्ध है।

बेनसेट के अनुसार – ''सोशल नेटवर्किंग साइट्सके अधिकाधिक उपयोग को अवसाद, चिन्ता और आत्ममुग्धता से जोड़ा गया है लेकिन इसके कारणों को अच्छी तरह से समझाया नहीं गया है। उन्होंने अपने रिसर्च में पाया कि इसकी प्रमुख वजह 'जेलेसी की भावना' है उनके अनुसार यात्राओं के दौरान खींची गई तस्वीरें इस जेलसी की जननी होती है जो उनके फेसबुक मित्रों को उनकी तस्वीरों से बेहतर तस्वीर डालने के लिए प्रेरित करती है।''[3]

सोशल नेटवर्किंग साइट्सपर इस तरह से जिन्दगी का अवास्तविक चित्रण लोगों को प्रेरित करने के लिए नहीं किया जाता वरन् दिखावे तथा जेलसी के उद्देश्य से किया जाता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सकी कार्यक्षमता जेलेसी उत्प्रेरण व्यवहार को प्रोत्साहित करती है जिसमें बदलाव की अपेक्षा कम की जाती है।

बेनसेट ने कहा है कि ''लोगों में अपनी जिन्दगी से जुड़ी घटनाओं और तस्वीरों को सोशल नेटवर्किंग साइट्सपर प्रकाशित करना एक आदत बन चुकी है। इससे दूर जाना बहुत ही कठिन है। बहुत से लोग इनका प्रयोग अपने अच्छे–बुरे विचारों के प्रसार हेतु कर रहे हैं तथा इनके जरिये अपना समय और धन का दुरूपयोग भी कर रहे हैं।''[4]

सोशल नेटवर्किंग साइट्सकी अवधारणा

विश्व की पहली वेबसाइट 6 अगस्त 1991 को शुरू हुई। इसका नाम info.vern.ch था। इस वेबसाइट को एटमी शोध के यूरोपियन संगठन सर्न (CERN) के लिए बनाया गया था। वर्ल्ड वाइड वेब के जन्मदाता एवं ब्रिटिश कम्प्यूटर वैज्ञानिक टिमोथी जॉन टिम बर्नर्स ली ने इस वेबसाइट की शुरूआत की थी।[5] डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू (WWW) संरचना के निर्माण से ही वेबसाइटों का अस्तित्व साकारा हो पाया। इसके बाद नित्य नई–नई वेबसाइटें बनने का सिलसिला शुरू हो गया।[5]



सोशल नेटवर्किंग साइट्स की संरचना

पिछले एक दशक में डिजिटल क्रांति ने दुनिया भर में एक ऐसे मीडिया को जन्म दे दिया है जो न केवल पुराने माध्यमों से भिन्न है बल्कि सही मायने में ग्लोबल भी है। कम्प्यूटर आधारित इस माध्यम को सायबर मीडिया, वेब मीडिया, इंटरनेट मीडिया जैसे अनेक नामों से जाना जाता है।[6] सूचना संचार प्रौद्योगिकी के युग में सोशल नेटवर्किंग साइट्सशब्द जाना पहचाना सा हो गया है। विश्व पटल पर अपनी पहुँच और प्रायोगिक क्षमताओं के बल पर सोशल नेटवर्किंग साइट्सने संचार जगत की तस्वीर बदल दी है। व्यक्ति की भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में तेज रफ्तार सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक बूटी की भांति है। संचार आवश्यकताओं के साथ सामाजिक और व्यावसायिक दोनों ही दृष्टियों से सोशल नेटवर्किंग साइट्सका प्लेटफार्म व्यक्तियों को विचार प्रकट करने का सरल मंच प्रतीत होने लगा है।

विगत कुछ ही वर्षों में सोशल नेटवर्किंग साइट्सने साइबर स्पेस में मुख्य स्थान ग्रहण कर लिया है। विश्व में लगभग 3,012,781,684 सक्रिय इंटरनेट उपभोक्ता हैं जिनमें प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है। इन उपभोक्ताओं में लगभग 70 प्रतिशत उपभोक्ता ऐसे हैं जो प्रतिदिन साइबर स्पेस में इसलिए प्रवेश करते हैं कि उनको सोशल नेटवर्किंग साइट्सका प्रयोग करना होता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सइंटरनेट वेबसाइटों में से वे वेबसाइटें हैं जो उपभोक्ताओं को आभासी जगत में प्रवेश प्रदान करती है।[6]

सोशल नेटवर्किंग साइटों के समूह ने सोशल नेटवर्किंग साइट्सकी संरचना को आधार प्रदान किया है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सनाम से स्पष्ट है कि समाज की मीडिया अर्थात् जिसमें विचारों और सूचनाओं का संप्रेषण स्वयं समाज करे। यह व्यक्तियों को आपस में जुड़ने व वैचारिक आदान–प्रदान करने का अनूठा माध्यम प्रदान करती है। आज विश्व की हजारों किलोमीटर में फैली आबादी एक क्लिक से एक–दूसरे के आमने–सामने आ जाती है और व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों ही प्रकार से अपने विचारों को व्यक्त कर पाती

है। आज सूचना प्रौद्योगिकी ने सभी सीमाएँ लांघ कर अपने को विश्व पटल पर सर्वोत्तम स्थान पर स्थापित कर दिया है। आज समाज के छोटे–से–छोटे मुद्दों को विश्व स्तर का मंच प्राप्त है।

बदलते परिवेश में सूचना संचार तकनीक के व्यापक प्रसार ने व्यक्तियों की दिनचर्या में अपना स्थान बना लिया है। साथ ही साथ यह व्यक्तियों के जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग बनती जा रही है। सूचना संचार क्रांति की देन सोशल नेटवर्किंग साइट्स व्यक्तियों को विश्व स्तर पर उनकी पहचान दिला रही है। सोशल नेटवर्किंग साइट्सवर्तमान में सबसे लोकप्रिय माध्यम बनता जा रहा है। वेब की दुनिया में सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक प्रभावी जनसूचना माध्यम के तौर पर उभर रही है। बहुतायत में लोग सिर्फ सोशल नेटवर्किंग साइट्ससे नाता जोड़ने के लिए ही वेब की दुनिया में प्रवेश करते हैं।

वर्तमान समय में सोशल नेटवर्किंग साइट्सके बिना वेब अधूरा है। सोशल नेटवर्किंग साइटों में प्रवेश के लिए ई–मेल खाता होना आवश्यक है, जिससे सोशल साइटों पर रजिस्टर कर सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर खाता बना कर वर्चुलिज्म की अनोखरी और स्वतंत्र दुनिया में अपने विचार, डिजिटल फोटोग्राफी तथा वीडियों संप्रेषित किया जा सकता है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर स्पेस की कमी जैसी कोई बात नहीं है, बस इस्तेमाल करने वाले के पास सामग्री होनी चाहिए। वर्चुलिज्म का यह संसार व्यक्तियों को भावनात्मक रूप से आकर्षित कर उनके जीवन का अहम हिस्सा बनने की अपार क्षमता रखता है।

सोशल नेटवर्किंग प्रदान करने में फेसबुक, ब्हाट्स ऐप, टवीट्र, गूगल प्लस, ऑरकुट, लिंक्ड–इन तथा यू–ट्यूब आदि तमाम साइटें मौजूद है। वर्तमान में भारत में फेसबुक तथा ब्हाट्स ऐप यूजर्स की संख्या अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है, जिसमें युवाओं की संख्या सबसे अधिक है। वर्चुअल रियलिटी की यह दुनिया युवाओं को आकर्षित करने में सक्षम रही है। इसके जरिये वे अपने विचार व्यक्त करने के साथ–साथ फोटो तथा विडियो सभी को साझा कर पाते हैं। यहाँ पर जितनी भी सामग्री उपलब्ध है उसे पसन्द व नापसन्द कर सकते हैं। साथ ही साथ उस पर टिप्पणी भी कर सकते हैं। इस प्रकार से वह इससे जुड़कर उन तमाम लोगों से इन्ट्रेक्ट कर सकते हैं जिनको वह सोशल नेटवर्किंग साइट्सके मंच से आमंत्रित कर अपने खाते में जोड़ते हैं या फिर उनसे जुड़ते हैं।[7]

सोशल नेटवर्किंग साइट्सएक वर्चुअल संसार है जिसमें सीमाओं की कोई सीमा नहीं है। परस्पर परिचित न होते हुए भी वे अपने को इस संसार से जुड़े व्यक्तियों से अलग नहीं समझते तथा उनसे अपने बारे में खुल कर बातचीत करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। इसकी संदेश भाषा ने भी अपने को बहुत ही अनोखा बना रखा है, जो मनो–मस्तिष्क पर गहरी छाप बना लेती है। बातचीत के दौरान यूजर्स कोड का प्रयोग कर संदेश को सूक्ष्म बना देते हैं, जिससे वे कम से कम शब्दों में अपनी बात कह पाते हैं और संदेश की स्पष्टता में भी कोई कमी नहीं आती है।[7]

शोध–विधि

प्राथमिक तथ्यों का संकलन मुख्य रूप से साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर साक्षात्कार प्रक्रिया द्वारा की गई है। इसके अतिरिक्त असहभागी अवलोकन पद्धति का भी उपयोग आवश्यकतानुसार किया गया है।

साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का सारणीयन निम्न रूप में किया गया है:

तालिका 1

क्या सोशल नेटवर्किंग साइट्स शिक्षा से संबंधित ज्ञानार्जन प्राप्त करने का सबसे बड़ा साधन है?

क्र0सं0	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	18 वर्ष से 19 वर्ष	30	15.00	00	00.00	30(15)
2	19 वर्ष से 20 वर्ष	42	21.00	00	00.00	42(21)
3	20 वर्ष से 21 वर्ष	50	25.00	00	00.00	50(25)
4	21 वर्ष से 22 वर्ष	44	22.00	00	00.00	44(22)
5	22 वर्ष से 23 वर्ष	18	09.00	00	00.00	18(09)
6	23 वर्ष से 24 वर्ष	16	08.00	00	00.00	16(08)
7	कुल	200	100.00	00	00.00	200(100)

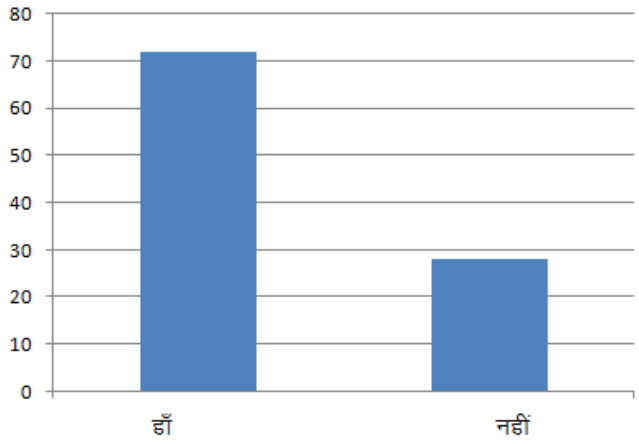
साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाताओं से अनुसूची के तहत प्राप्त तथ्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सभी उत्तरदाता इस बात का समर्थन करते हैं कि वर्तमान समय में सोशल नेटवर्किंग साइट्स शिक्षा से संबंधित ज्ञानार्जन प्राप्त करने का सबसे बड़ा साधन है। इसकी मदद से छात्र अपनी शिक्षा से संबंधित तथ्यों की जानकारी आसानी से प्राप्त करते हैं।

तालिका 2

क्या सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से युवाओं को रोजगार प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हो रही है?

क्र0सं0	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	18 वर्ष से 19 वर्ष	20	10.00	10	05.00	30(15)
2	19 वर्ष से 20 वर्ष	30	15.00	12	06.00	42(21)
3	20 वर्ष से 21 वर्ष	36	18.00	14	07.00	50(25)
4	21 वर्ष से 22 वर्ष	34	17.00	10	05.00	44(22)
5	22 वर्ष से 23 वर्ष	14	07.00	04	02.00	18(09)
6	23 वर्ष से 24 वर्ष	10	05.00	06	03.00	16(08)
7	कुल	144	72.00	56	28.00	200(100)

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से युवाओं को रोजगार प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हो रही है, जबकि 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से युवाओं को रोजगार प्राप्त करने में सहायता प्राप्त नहीं हो रही है।

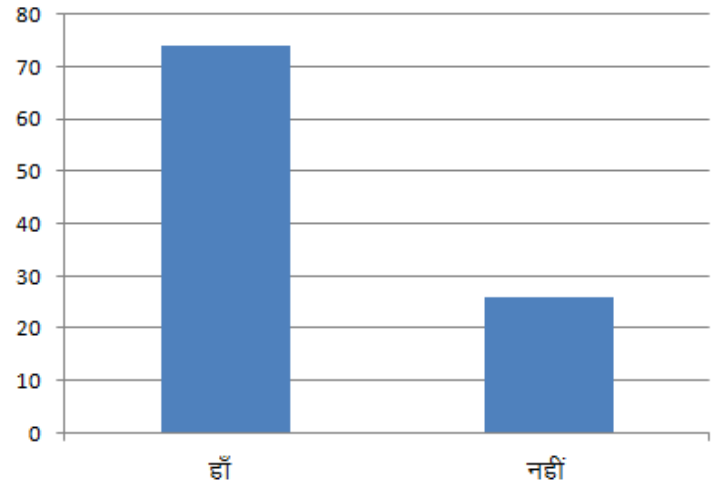


तालिका 3

क्या सोशल नेटवर्किंग साइट्स पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों को मजबूत एवं अटूट बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है?

क्र0सं0	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	18 वर्ष से 19 वर्ष	18	09.00	12	06.00	30(15)
2	19 वर्ष से 20 वर्ष	26	13.00	16	08.00	42(21)
3	20 वर्ष से 21 वर्ष	40	20.00	10	05.00	50(25)
4	21 वर्ष से 22 वर्ष	38	19.00	06	03.00	44(22)
5	22 वर्ष से 23 वर्ष	14	07.00	04	02.00	18(09)
6	23 वर्ष से 24 वर्ष	12	06.00	04	02.00	16(08)
7	कुल	148	74.00	52	26.00	200(100)

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं (74 प्रतिशत) के अनुसार सोशल नेटवर्किंग साइट्स पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों को मजबूत एवं अटूट बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहाहै जबकि 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार सोशल नेटवर्किंग साइट्समजबूत एवं अटूट पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों को नष्ट कर रहा है।



निष्कर्ष

सोशल नेटवर्किंग साइट्सका सकारात्मक प्रभाव युवा वर्ग पर पड़ रहा है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग युवा ज्ञान विस्तार तथा अध्ययन में आने वाली कठिनाइयों के समाधान के रूप में कर रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स की मदद से युवा अपने दोस्तों तथा शिक्षकों के साथ किसी टॉपिक पर विचार–विमर्श करते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स न कि सिर्फ चैटिंग, लेख, वीडियो, फोटो आदि शेयर करने के लिये एक प्रसिद्ध (प्लेटफार्म) मंच है। बल्कि सामाजिक विषयों पर विचार–विमर्श करने के लिये भी एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करता है। युवा इन सोशल साइट्स पर कई सामाजिक विषय जैसे – भ्रष्टाचार, मानवाधिकार के उल्लंघन से जुड़े विषयों के बारे में आवाज उठाते हैं। स्पष्ट है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स का सकारात्मक प्रभाव युवा पर पड़ रहा है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स दुनिया भर के समाज और समाज के ज्ञान को प्राप्त करने में युवा पीढ़ियों की सहायता करता है, साथ ही इसकी मदद से वे वास्तविक समय में समाचार, घटनाओं पर अपडेट हो पाते हैं। यह मनोरंजन का एक रूप है जब तक यह अतिभारित नहीं होता, तब तक उनको फायदा होता है। इसकी मदद से युवा अपने दोस्तों के साथ तुरन्त संपर्क स्थापित कर पाते हैं।

संदर्भ सूची–

1. डोमिनिक, आर0 जोसफ, (1993), ''दी डायनेमिकस ऑफ मास कम्यूनिकेशन'' मैकग्रॉहिल दिल्ली, पृ0 71
2. अग्रवाल, वीर बाला (2002), ''मीडिया एण्ड सोसायटीः चैलेन्जेज एण्ड अपोर्च्यूनिटीज'' कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, जयपुर, पृ0 89
3. वही, पृ0 90
4. आइजेन्सटेडः एस.एन. (1985), चैजिंग पेटर्नस ऑफ यूथ प्रोब्लेम्स इन कन्टेम्परेरी सोसायटी, जॉन विले एण्ड संस, न्यूयार्क, पृ0 109
5. फेड्रिक एण्ड विटनी, जे.के ब्लेक (1983), ''इन्ट्रोडक्शन ऑफ मास कम्यूनिकेशन'', प्रिन्ट इन यू0 एस0 ए0, पृ0 44
6. गुप्ता, बृजमोहन, (1992), जनसंचार : विविध आयाम, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 39
7. हेबरमास (1986), ''दी थ्योरी ऑफ कम्यूनिकेशन एक्शन सेज पब्लिकेशन'', लन्दन, पृ0 18

JSECR, Vol. 9, No. 18, Jan.-June, 20223 ISSN : 2394-2878
Peer Reviewed Journal, Impact Factor: 8.375 (IIFS)

सोशल मीडिया और माध्यमिक शिक्षा

सत्येन्द्र कुमार सिंह
प्रवक्ता–समाजशास्त्र
चौधरी लक्ष्मी नारायण इण्टर कालेज
मण्डी श्याम नगर, गौतमबुद्धनगर
एवं
डॉ0 सतीश चन्द्र जैसल
असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश–

सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है कि सह इंटरनेट आधारित अनुप्रयोग का एक ऐसा समुह है, जो प्रयोक्ता–जनित सामग्री के सृजन और आदान प्रदान की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी से ऐसे क्रियाशील मंचों का निर्माण करता है जिनके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय प्रयोक्ता–जनित सामग्री का संप्रेषण एवं सह–सृजन कर सकते है, उस पर विचार–विमर्श कर सकते है और उसका परिष्कार कर सकते है।

आज हम जिस परिवेश में रह रहे हैं। हमारे इर्द–गिर्द सोशल मीडिया रूपी तरंगे कहीं ना कहीं हमें प्रभावित या प्रदर्शित कर रही है। अतः माध्यमिक शिक्षा हो या उच्च शिक्षा दोनों ही अछूता नहीं है। सोशल मीडिया का प्रभाव हमारे जीवन पर इस कदर है कि संपर्क, मनोरंजन के साधन या व्यवसाय कोई क्षेत्र छूटा नहीं है। अर्थात हम कह सकते हैं कि जीवन का सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। सोशल मीडिया एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम हैं जिसके द्वारा हम सूचनाओं का आदान–प्रदान एक वेबसाइट या एप्स के माध्यम से करते हैं। यह एक ऑनलाइन मंच है।

मुख्य शब्द = सोशल मीडिया, माध्यम, मनोरंजन, ऑनलाइन, माध्यमिक शिक्षा, नेटवर्किंग, शैक्षिक कार्य।

प्रस्तावना

मानव जीवन का आधार शिक्षा है। मानव की उन्नति और विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा व्यक्तित्व को गढ़ती और मजबूत करती है। जब कोई बच्चा पैदा होता है, तो उसका व्यवहार एक जानवर जैसा होता है क्योंकि उसके कार्य उसके प्रारभिक आवेगों से प्रेरित होता हैं। इन प्रवृत्तियों को सही ढंग से निर्देशित करके, शिक्षा परिपक्वता को बढ़ावा देती है। शिक्षा में जनसंचार साधनों के उपयोग से शिक्षा से जुड़े अनेक प्रकार के उद्देश्यों अथवा शैक्षिक कार्यों के पूरा करने की कोशिश की जाती है।

सोशल मीडिया सामाजिक नेटवर्किंग वेब साइटों जैसे– फेसबुक, ट्विटर, लिंकर ,यू–टयूब, लिंक्डइन, माइस्पेस, साइडक्लाउड और ऐसे अन्य साइटों पर इस्तेमाल कर्त्ताओं को विचार–विमर्श, सृजन, सहयोग करने तथा टेक्स्ट इमेज, ऑड़ियो और विडियो रूपों में जानकारी एवं हिस्सेदारी करने और उसे परिष्कृत करने की योग्यता और सुविधा प्रदान करता है। यह सच है कि सोशल मीडिया ने इंटरनेट का लोकतंत्रीकरण किया है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने भाषण और अभिव्यक्ति के आदर्शों को संरक्षित किया है किंतु इसके साथ ही यह भी उतना ही सही है कि इसने ऐसे दैत्यों को जन्म दिया है जो घात लगाए रहते है और लगता है कि उनकी संख्या बढ़ रही है। हाथ में रखे जाने वाले मोबाइल

उपकरणों जैसे–स्मार्टफोन और टेबलेट्स की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है और इन उपकरणों पर इंटरनेट की उपलब्धता से वास्तविक समाजीकरण में तात्कालिता की भावना कई गुना बढ़ गई है।

सोशल मीडिया मानव जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है उसमें माध्यमिक शिक्षा भी है जो सोशल मीडिया के प्रभाव से अछूता नहीं रहा हैं। सचमुच सोशल मीडिया के आने से माध्यमिक शिक्षा में नयी क्रांति आई। किसी भी चीज के दो पहलू होते हैं। एक सकारात्मक तथा दूसरा नकारात्मक, ठीक उसी प्रकार सोशल मीडिया ने माध्यमिक शिक्षा के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभावों से ग्रसित किया हैं।

सोशल मीडिया

- फेसबुक अन्तरजाल पर स्थित एक निःशुल्क सामाजिक नेटवर्किंग सेवा है जिसके माध्यम से इसके सदस्य अपने मित्रों, परिवार और परिचितों के साथ संपर्क रख सकते हैं। यह मेटा प्लैटफ़ॉर्म्स नामक निजी कंपनी द्वारा संचालित है। इंटरनेट पर स्थित एक निःशुल्क सामाजिक नेटवर्किंग सेवा, जिसके माध्यम से इसके सदस्य अपने परिजनों, मित्रों और परिचितों के साथ संपर्क रख सकते हैं।
- टिक टॉक एक मुफ्त सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म है जो आपको छोटी क्लिप बनाने, साझा करने और देखने की सुविधा देता है। ऐप वायरल डांस और सेलिब्रिटी कर्मियों के लिए लोकप्रिय है और किशोरों के आनंद लेने के लिए एक रचनात्मक और मजेदार मंच है। टिक टॉक एक मुफ़्त वीडियो शेयरिंग एप्लीकेशन है, जहाँ पर छोटी छोटी वीडियो बनाकर इस पर अपलोड की जाती है।
- यूट्यूब का पूरा नाम "आप से लिया गया" है, यूट्यूब शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, "यू + ट्यूब", यू का अर्थ होता है "आप" और ट्यूब टेलीविजन से लिया गया है। यूट्यूब अमेरिका की एक वीडियो देखने वाला प्लेटफॉर्म है, जिसमें पंजीकृत सदस्य वीडियो क्लिप देखने के साथ ही अपना वीडियो अपलोड भी कर सकते हैं। इसे पेपैल के तीन पूर्व कर्मचारियों, चाड हर्ले, स्टीव चौन और जावेद करीम ने मिल कर फरवरी 2005 में बनाया था
- व्हाट्सएप मोबाईल पर संदेश भेजने का एप है। वर्तमान में व्हाट्सएप की मालिक फेसबुक (अब मेटा) कंपनी है। इसमें लोग अपने मोबाइल के जरिए टेक्स्ट मैसेज के साथ–साथ वॉयस नोट्स, इमेज और लोकेशन भी भेज सकते हैं। इंटरनेट डेटा का उपयोग कर इसके जरिए वॉयस और वीडियो कॉल भी की जा सकती हैं।
- ट्विटर एक मुक्त सामाजिक संजाल व सूक्ष्म चिट्ठाकारी सेवा है जो अपने उपयोगकर्ताओं को अपनी अद्यतन जानकारियां, जिन्हें ट्वीट्स के माध्यम से एक दूसरे को भेजने और पढ़ने की सुविधा देता है। पोस्ट किया गया संदेश, जिसमें टेक्स्ट, फ़ोटो या वीडियो होता हैं।
- इंस्टाग्राम एक मोबाइल, डेस्कटॉप और इंटरनेट–आधारित फोटो–साझाकरण एप्लिकेशन है जो उपयोगकर्ताओं को फोटो या वीडियो को सार्वजनिक रूप से या निजी तौर पर साझा करने की अनुमति देता है। पर आप चौट में अन्य लोगों को गायब हो जाने वाली फ़ोटो या वीडियो भेज सकते हैं. जब कोई व्यक्ति आपके द्वारा भेजी गई गायब हो जाने वाली फ़ोटो या वीडियो को खोलता है, तो उसके बाद चौट में उन्हें तब तक वह मैसेज दिखाई नहीं देगा, जब तक कि आपने अपने मैसेज को फिर से चलाने की अनुमति नहीं दी हो, इंस्टाग्राम उपयोगकर्ताओं को मोबाइल ऐप के माध्यम से फ़ोटो और शॉर्ट वीडियो को अपलोड करने की अनुमति देता है। उपयोगकर्ता अपने प्रत्येक पोस्ट में एक कैप्शन जोड़ सकते हैं। और इन पोस्टों को अनुक्रमित करने के लिए हैशटैग और स्थान–आधारित जियोटैग का उपयोग कर सकते हैं। जिसे ऐप के भीतर अन्य उपयोगकर्ताओं द्वारा खोजा जा सकता है।

सोशल मीडिया के सकारात्मक पक्ष

सोशल नेटवर्किंग साइट, एप्स और सोशल मीडिया के बिना माध्यमिक शिक्षा अधूरा है। माध्यमिक शिक्षा में आज विद्यार्थी निष्ठा की पाठशाला, ज्ञान गंगा, दर्पण एवं दीक्षा एप्स के माध्यम से घर बैठे आज का किशोर अपने विषय की तैयारी बड़ी आसानी से कर सकता है और परीक्षा में अच्छा नंबर अर्जित कर सकता है। आज सोशल मीडिया साइटों ने छात्रों को भी एक ऑनलाइन मंच उपलब्ध कराया है, जिससे छात्र अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर समूह और पेज बना सकते हैं। चर्चा के लिए विभिन्न विषयों को अपडेट करके छात्र सोशल मीडिया का लाभ उठा सकते हैं। सोशल मीडिया छात्रों की जीवन शैली का हिस्सा बन गई है। और यह उनकी जिंदगी को आसान और कुशल बनाती दिख रही है।

सोशल मीडिया के माध्यम से ऑनलाइन क्लासेस चलती है जिसके कारण बच्चों को आसानी होती है कहीं भी रहकर अपने कोर्स को पूरा कर लेते हैं। इसका लाभ उस समय देखने को मिला जब 2020 में कोरोना बड़े पैमाने पर फैला हुआ था। सारी गतिविधियां बंद हो गई थी, लेकिन फिर भी ऑनलाइन पढ़ाई चल रही थी ऐसी विषम परिस्थितियों में ऑनलाइन क्लासेस का महत्व बहुत ज्यादा है।

सोशल मीडिया पर ऑनलाइन कक्षाएं जो प्रसारित होती हैं वह काफी अनुशासित होती है क्योंकि लोग सोचते हैं कि बैठे–बैठे दूर से लोग मुझे देख रहे हैं।

- सोशल मीडिया सिस्टम को मजबूत करने में एक अहम योगदान देने वाला प्लेटफार्म है। जहां दूर.–दूर व्यक्ति रहते हुए भी एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। और सूचनाओं का आदान–प्रदान अल्प समय के अंदर कर देते हैं अर्थात सोशल मीडिया के माध्यम से हम एक दूसरे से कितना भी दूर हो उसे आसानी से जुड़ जाते हैं।
- छात्रों की भलाई के लिए अभी सोशल नेटवर्क साइट पर हम आसानी से एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और उसकी सहायता करते हैं।
- सोशल मीडिया ज्ञान साझा करने का एक अति उत्तम माध्यम है। जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान को चाहे किसी तरह का ज्ञान हो राजनीतिक या सामाजिक सबके लिए एक प्लेटफार्म उपलब्ध करता है। जहां बच्चे यू–ट्यूब पर नाना प्रकार की गतिविधियां करते दिख जाते हैं।
- ग्रामीण इलाकों से भी लोग वीडियो बनाकर वहां के मुख्य प्रसिद्ध स्थान का दिखाने का प्रयास करते हैं

सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव

साइबर बुलिंग सोशल मीडिया के माध्यम से एक छात्र दूसरे छात्र को परेशान और धमकाने का उपयोग करते हैं ऐसी बहुत सी घटनाएं समाज में देखने को मिलती है, गोपनीय सूचनाओं को सार्वजनिक करने का डर दिखाकर मानसिक शारीरिक उत्पीड़न किया जा रहा है जिसकी वजह से आत्महत्या, भावनात्मक तनाव आत्म सम्मान को ठेस आदि की घटनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वास्तविक धरातल पर संबंधों में कमी आए दिन देखने को मिलता है। सोशल मीडिया पर छात्रों के संबंध वास्तविक ना होकर आभासी होते हैं।

आज सच में सबसे बड़ी चिंता है कि माध्यमिक शिक्षा से जुड़े हुए छात्रों को किस तरह से उनको मोटिवेट कर उनकी खुद की अच्छाइयां और रचनात्मक कार्यों से रूबरू कराया जाए, विचारों का आदान–प्रदान और जनमत तैयार करके विभिन्न क्षेत्रों के संस्कृति के लोगों को आपस में जोड़कर भागीदार बनाया जा सकें।

अकेलापन – जब छात्र मानसिक स्तर की कोई समस्या से गुजर रहे हैं तो उनके दोस्तों की कमी नहीं होती है पर वास्तविक समस्या निवारण पर कोई भी साथ नहीं देता है।

समय की बर्बादी – माध्यमिक शिक्षा के छात्र ऑनलाइन गेम के माध्यम से घंटों समय गुजारा करते हैं जो समय की बर्बादी है।

छात्रों में प्रेरणा की कमी– सचमुच अपने भविष्य का सुनहरा समय आभासी दुनिया में बिना आउटपुट के बर्बाद कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर आकर्षक दुनिया अर्थात रंगीन दुनिया तो दिखती है लेकिन छात्रों को उचित दिशा में मार्गदर्शन नहीं करती है जिसके कारण छात्र अपने जीवन के स्वर्णिम भविष्य के रूप में सचेत नहीं हो पाते हैं और भटकाव की स्थिति में रहते है।

स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव– आज का युवा वर्ग सुबह से देर रात तक मोबाइल के स्क्रीन पर समय गुजारता है चाहे गेम हो या पढ़ाई का कंटेंट को लेकर इंटरनेट पर समय गुजारता है। जिसके कारण आंख से लेकर मानसिक स्तर की तमाम बीमारियों से घिर जाता है। एक स्थान पर बैठकर कार्य करने से मोटापा व मधुमेह की बीमारी आम बात है।

आमने–सामने के संचार में गिरावट– आज बच्चे माता–पिता के सामने बातचीत नहीं करते बल्कि समय मिलते ही सूचनाओं के संग्रह या सोशल मीडिया पर व्यस्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में माध्यमिक शिक्षा अच्छे समाजीकरण के लिए अनुकूल नहीं है।

भ्रामक सूचनाएं– सोशल नेटवर्किंग साइट पर सूचना या विचार तेजी से फैलते हैं लेकिन अधिकांश सूचनायें भ्रामक होती हैं। और जनता के बीच गलतफहमी हो जाती है।

अन्य समस्याएं– समय और धन की बर्बादी के साथ छात्रों में नफरत हिंसा, वैमनस्य की समस्यायें भी बढ़ने लगी है जिससे छात्रों में सामाजिक स्वास्थ्य बिगड़ रहा है।

अतः सोशल मीडिया परस्पर संवाद के लिए वेब आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील का मंच कहा जा सकता है, जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं,अपनी जानकारी का आदान–प्रदान करते हैं और उपयोगकर्ता जनित सामग्री को सृजन की सहयोगात्मक प्रक्रिया के एक अंश के रूप में संशोधित करते हैं सोशल मीडिया के प्रभाव को देखते हुए प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े लोगों ने अपने–अपने जरूरत के मुताबिक समय–समय पर जन समुदाय को एकत्रित करने के लिए इन माध्यमों का बखूबी प्रयोग किया। खास बात यह है कि समाचार पत्रों में समाचार तलाशने के लिए, बाजार से विज्ञापन प्राप्त करने, फिल्म के प्रोमो से लेकर पैसे बटोरने तक सोशल मीडिया का प्रयोग शामिल है। विद्यार्थी से लेकर साहित्य, पत्रकार, चित्रकार, राजनीतिज्ञ, फिल्मी सितारे या कोई आम आदमी सभी ने सोशल मीडिया पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराया है। ज्ञान की प्राप्ति और किसी विषय में गहराई से अध्ययन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षा के पारंपरिक और औपचारिक संसाधनों का ही शरण लिया जाए, आज ऑनलाइन स्रोतों से सकारात्मक रूप से सीखने का प्रयास किया जाए तो कोई भी विद्यार्थी किसी भी विषय में महारत हासिल कर सकता है।

हमारे देश की युवा आबादी की तुलना में शिक्षण संस्थाओं की पर्याप्त कमी है। शिक्षा के अन्य संसाधन भी पर्याप्त नहीं है। अतः यह माना जा सकता है कि आज शिक्षण संस्थानों एवं संशाधनों की कमी को कुछ हद तक सोशल मीडिया एवं ऑनलाइन माध्यमों के जरिये पूरा करने का प्रयास किया जा सकता है। भारत सरकार एवं राज्य सरकारें इस दिशा में डिजिटल इण्डिया के माध्यम से लगातार प्रयास कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ –

- सरीन एवं सरीन, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, नई दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि 2005
- राय उमेश कुमार, ''सोशल मीडिया का बढता दायरा, वरदान भी अभिशाप भी'' 16 अप्रैल, 2015
- Bhattacharya Vivek Communication in Global Village, chetana Publication, New Delhi, 1976
- Benarjee Subrata Culture and Communication, Parriot Publication, New Delhi, 1985.
- Carter, R. Applied Linguistic Perspectives .Vocabulary: Vocabulary. 3rd. Ed. London: Taylor and Franci 2002
- Eveland Jr, W. P., & Scheufele, D. A. (2000). Connecting news media use with gaps in knowledge and participation. Political Communication, 17(3),
- Http://www.linkeelin.com/pulse/,10-negative-effects-social-media-society-somiya-roy